Registration No. V-36244/2008-09 **ISSN :- 2350-0611**

The journal has been listed in 'UGC Approved List of Journals' with Journal No. – 48441 in previous list of UGC

JIFE Impact Factor – 5.23

Research Highlights

A Multidisciplinary Quarterly International Peer Reviewed Referred Research Journal

Special Issue Editor
Dr. Satyapal Yadav
Assistant Professor
Department of History, Faculty of Social Sciences
Banaras Hindu University
Varanasi-221005

Volume - XII **No. - 2** **(April – June 2025)**

(Special Issue)

Published by
Future Fact Society
Varanasi (U.P.) India

Research Highlights - *A Referred Journal, Published by : Quarterly*

Correspondence Address :
C 4/270, Chetganj
Varanasi, (U.P.)
Pin. - 221 010
Mobile No. :- 09336924396
Email- researchhighlights1@gmail.com

Note :-

The views expressed in the journal "Research Highlights" are not necessarily the views of editorial board or publisher. Neither any member of the editorial board nor publisher can in anyway be held responsible for the views and authenticity of the articles, reports or research findings. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Managing Editor
Avinash Kumar Gupta

©Publisher

ISSN : 2350-0611

Printed by
Interface Computer, B 31/13-6, Malviya Kunj, Lanka, Varanasi-221005 (U.P.)

संपादकीय मंडल

- प्रो. घनश्याम, अध्यक्ष, इतिहास विभाग, बीएचयू, वाराणसी
- प्रो. प्रवेश भारद्वाज, प्रोफेसर, इतिहास विभाग, बीएचयू, वाराणसी
- प्रो. ए. गंगाथरन, प्रोफेसर, इतिहास विभाग, बीएचयू, वाराणसी
- प्रो. ताबीर कलाम, प्रोफेसर, इतिहास विभाग, बीएचयू, वाराणसी
- डा. सीमा मिश्रा, असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, बीएचयू, वाराणसी
- डा. सत्यपाल यादव, असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, बीएचयू, वाराणसी
- डा. अर्चना श्रीवास्तव पाण्डेय, पोस्ट डाक्टरल फेलो, इतिहास विभाग, बीएचयू
- डा. अनीता कुमारी, असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, राम जयपाल कालेज, छपरा, बिहार
- डा. पौनामी बसु, असिस्टेंट प्रोफेसर, ब्रेनवेयर यूनिवर्सिटी, कोलकाता
- डा. सीमा शर्मा, असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, डीएवी कॉलेज, अमृतसर
- डा. जितेंद्र सिंह, जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, चंदौली
- डॉ. विकास कुमार, असिस्टेंट प्रोफेसर, सच्चिदानन्द कॉलेज, रोहतास, बिहार

EDITOR'S NOTE

It is a great honour to me to extend my warm greetings and welcome you all to the journal, **Research Highlights,** a refereed journal of multi disciplinary research. The journal, which is a peer-reviewed, will devote to the promotion of multi-disciplinary research and explorations to the South Asian and global community. It is our objective to provide a platform for the publication of new scholarly articles in the rapidly growing field of various disciplines. We are trying to encourage new research scholars and post graduate students by publishing their papers so that they may learn and participate in literary publishing through a professional internship. Scholarly and unpublished research articles, essays and interviews are invited from scholars, faculty researchers, writers, professors from all over the world.

Note: All outlook and perspectives articulated and revealed in our peer refereed journal are individual responsibility of the author concerned. Neither the editors nor publisher can be held responsible for them anyhow. Plagiarism will not be allowed at any level. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Hoping all of you shall enjoy our endeavors and those of our contributors.

Editor

Three Days International Seminar on
"Kashi Vaibhav: A Historical Discourse"
8th, 9th & 10th November
Organized by
Department of History
Faculty of Social Sciences,
Three Days International S
"Kashi Vaibhav: A Historical Dis
Kashi Vaibhav
A Historical Discourse

CONTENTS

"Research Highlights"

➲	काशी के स्थानीय कष्टहरि मेले का सांस्कृतिक अध्ययन ***डॉ. सीमा मिश्रा***	01-04
➲	काशी में आयुर्वेद का विकास : सुश्रुत के विशेष संदर्भ में ***मोनू कुमार*** ***डॉ. सत्यपाल यादव***	05-10
➲	सिनेमा में काशी के शूटिंग स्थल, कला संस्कृति एवं वैभव का फिल्मांकन–उ0प्र0 फिल्म नीति के संदर्भ में ***डॉ. जितेन्द्र सिंह***	11-16
➲	हिंदी की जगत जननीः रत्नगर्भाकाशी ***डॉ. सीमा शर्मा***	17-25
➲	काशी की भित्ति चित्रकलाः 18वी से 20वी सदी तक ***डॉ0 मंजु कुमारी***	26-30
➲	काशी के कला एवं संस्कृति में यक्षों का अद्भुत दिग्दर्शन ***कु० आदिती जायसवाल***	31-33
➲	भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम और काशी की 'रणभेरी' ***अनामिका मौर्या***	34-37
➲	प्राचीन काशी एवं अंगकोर के पवित्र स्थलों में धार्मिक एवं सांस्कृतिक समानताः ऐतिहासिक विश्लेषण ***अनुराग वर्मा***	38-41
➲	काशी का आधुनिकता की ओर परिवर्तनः एक शोध अध्ययन ***दीपक कुमार कन्नौजिया*** ***डॉ. सनत कुमार शर्मा***	42-46
➲	वाराणसी में हथकरघा बुनाई परम्पराओं का ऐतिहासिक अध्ययन ***जेबा मुमताज***	47-51
➲	काशीः भारतीय संस्कृति और ज्ञान का शाश्वत केन्द्र ***ज्योति मौर्या***	52-53
➲	काशी के घाटों की आर्थिक संरचना तथा भारतीय सिनेमा में उसका चित्रण ***मनीष कुमार यादव***	54-59
➲	काशी की काष्ठ कला में झारखंड के वनों की भूमिका ***नमिता कुमारी***	60-63
➲	विद्यालयों में उपस्थित विद्यार्थियों के मध्य शैक्षिक प्रेरणा और शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययनः काशी शहर के संदर्भ में ***दीपिका प्रजापति***	64-71
➲	अयोध्या और काशी में पर्यटन विकासः एक तुलनात्मक अध्ययन ***कु.राधिका***	72-77
➲	काशी एक सांस्कृतिक नगरी के रूप मेंः मेले, त्यौहार, लोक कलाएँ, खान–पान, समारोह, रंगमंच के विशेष संदर्भ में ***राकेश कुमार यादव*** ***प्रो. डॉ. भूकन सिंह***	78-83

➲	बनारस की जरदोजी कला व कलाकार ***राकेश कुमार***	84-90
➲	ऐतिहासिक ग्रंथों में काशीः सन्दर्भों और महत्त्व का विश्लेषण ***ऋषभ त्रिपाठी***	91-93
➲	प्राचीन नगरी काशी का वैभव–विकास एवं ऐतिहासिक शहर राजमहल के मध्य व्यापारिक संबंध ***संदीप कुमार***	94-98
➲	काशी का ऐतिहासिक वैभव ***सानु जायसवाल*** ***संध्या यादव***	99-103
➲	जल आधारित अनुष्ठान, लोकोपयोगी जलाशय एवं मंदिरः काशी में धर्मार्थ निर्माण की परंपरा ***सर्वजीत कुमार पाल***	104-109
➲	महात्मा गाँधी का बनारस से सम्बन्धः एक ऐतिहासिक अध्ययन ***मो० शादान उस्मानी***	110-114
➲	काशी की शिक्षा–परंपरा और सामाजिक समन्वय ***शिवम पाण्डेय***	115-117
➲	प्राचीन भारत में काशी की शिक्षा प्रणाली का अध्ययन ***डॉ० श्रीकान्त तिवारी***	118-122
➲	काशी में शिक्षा पर मैकाले मिनट्स का प्रभावः एक अध्ययन ***श्वेता पुरी*** ***डॉ मीरा त्रिपाठी***	123-129
➲	राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम में बनारस की भूमिका ***सुधीर कुमार***	130-135
➲	काशी की दैनिक धार्मिक प्रथाएँः सामाजिक समरसता का ऐतिहासिक अध्ययन ***सूरज नाथ***	136-140
➲	काशी की सांस्कृतिक धरोहर के संवर्धन में अहिल्याबाई होलकर का योगदानः एक ऐतिहासिक अध्ययन ***टि्वंकल सिंह*** ***डॉ० मीरा त्रिपाठी***	141-147
➲	वर्तमान समय में काशी का धार्मिक पर्यटनः विकास, चुनौतियाँ और सम्भावनाएं ***वत्सल श्रीवस्तव***	148-153
➲	मध्यकालीन विदेशी यात्रियों के वृत्तांतों में काशी का चित्रण ***विकास कुमार***	154-159

काशी के स्थानीय कष्टहरि मेले का सांस्कृतिक अध्ययन

डॉ. सीमा मिश्रा*

Keyword :– मेला, काशी, कष्टहरि, कटहरिया, शंकुलधारा।

भारत की सांस्कृतिक नगरी काशी प्राचीन काल से ही विभिन्न धर्मो, जातियों, निवासियों तथा समुदायों की संगम स्थली रही है। एक ओर आदिदेव भगवान शिव का निवास एवं माता गंगा का जीवनदायी कल–कल करता जल तो दूसरी ओर माँ अन्नपूर्णा का अक्षय अन्नदान का आशीर्वाद काशी के धार्मिक महात्म्य की वृद्धि करता है। धार्मिक महत्ता के अतिरिक्त यह नगरी विभिन्न प्रकार के अद्भुत सांस्कृतिक गतिविधियों यथा मेला, पर्व, त्योहार, संगीत, नाटक आदि के लिये भी विख्यात है। काशी का जनमानस स्वभाव से मनमौजी तथा आनंदमयी है और इसीलिये यहाँ के लोक जीवन में मेलों एवं त्योहारों की प्रधानता रही है। काशी के मेलों में राष्ट्रीय, अर्न्तराष्ट्रीय स्तर के मेले तो हैं ही साथ ही यहाँ के लक्खी मेला तथा अनेक स्थानीय मेले भी लोगों के आकर्षण का केन्द्र रहे हैं। रथयात्रा मेला, सोरहिया मेला, लोटा भंटा मेला, कुछ ऐसे ही प्रसिद्ध यहाँ के मेले है।

ऐसे ही मेलों में एक प्रसिद्ध स्थानीय मेला है ''कटहरिया मेला'' अथवा ''कष्टहरि मेला'' जो वाराणसी के भेलूपुर के समीप खोजवाँ क्षेत्र में स्थित शंकुलधारा पोखरा (तालाब) के समीप लगता है। ''कटहरिया मेला'' जिसका वास्तविक नाम ''कष्टहरि मेला'' है जुलाई में कर्कसंक्रांति (जब सूर्य कर्क राशि में प्रवेश करता है) को लगता है। यह बनारस अथवा वाराणसी के अद्भुत मेलों में से एक है और ऐसा मेला पूरे विश्व में कहीं भी देखने को नही मिलता। ''कष्टहरि'' शब्द ''कष्ट'' तथा ''हरि'' शब्द से मिलकर बना है जिसका तात्पर्य है कष्ट को दूर (हरने) करने वाला। ऐसी लोक मान्यता है कि शंकुलधारा पोखरे के समीप स्थित द्वारिकाधीश मंदिर में स्थापित द्वारिकाधीश भगवान के दर्शन से सभी कष्ट समाप्त हो जाते हैं इसीलिये इसे ''कष्टहरि'' कहा गया और कर्कसंक्रान्ति को इस दिन मेला लगता है। शंकुलधारा तालाब के समीप लगने वाला यह मेला स्थानीय लोगों में ''कटहरिया मेला'' के नाम से लोकप्रिय हैं। एक अन्य मान्यता के अनुसार ऐसा माना जाता है कि शंकुलधारा कुंड में स्नान करके उसी के समीप स्थित द्वारिकाधीश मंदिर में स्थित भगवान द्वारिकाधीश जी को कटहल का भोग लगाने की परंपरा थी। कहा जाता है कि ऐसा करने से सभी कष्ट दूर हो जाते थे इसीलिये इस मेले के साथ स्थानीय लोगों द्वारा कटहल भी इसे मेले में बेचा जाने लगा तथा स्थानीय लोग इस मेले से कटहल को जोड़कर इसका नाम कटहरिया ज्यादा प्रयोग करने लगे और इसका प्राचीन नाम ''कष्टहरि'' विस्मृत सा हो गया।

इस मेले के प्रारंभ होने के पीछे कई लोक मान्यतायें प्रचलित है। एक लोकमान्यता के अनुसार 200 वर्ष पहले यहाँ किसी राजा के शरीर पर छोटे–छोटे फोड़े हो गये थे। किसी ने उन्हें शंकुलधारा तालाब में स्नान करने की बात बतायी। उनके द्वारा इसमें स्नान करने से उनके कष्ट दूर हो गये और यह ''कष्टहरि'' कहा जाने लगा। इसी प्रकार एक अन्य मान्यता के अनुसार शंकुलधारा तालाब में कोई शंकासुर (शंकु) नामक राक्षस रहता था जो लोगों को तंग करता था अतः लोगों ने वासुदेव की आराधना की और फिर वासुदेव ने उसे मार कर लोगो को उससे मुक्ति दिलायी और ''कष्टहर'' कहलाये। वासुदेव (द्वारिकाधीश) द्वारा उनके कष्ट को दूर करने से प्रसन्न भक्तगणों ने उनका दर्शन पूजन करना प्रारंभ कर दिया और धीरे–धीरे यह मेले के रूप में विकसित होता गया। मेले के प्रारंभ होने की ऐसी कई मान्यतायें जनमानस में प्रचलित है।

शंकुलधारा तालाब के समीप स्थित द्वारकाधीश मंदिर के महंत श्री रामदासाचार्य जी का इस स्थल के धार्मिक महात्म्य के बारे में कहना है कि उत्तर भारत के दिव्य संत रामानंदाचार्य जी ने 15वीं शताब्दी में इस स्थान पर सांख्य और योग की शिक्षा भी दी थी। जिसकी जीवित परंपरा आज भी समीप स्थित रामानंद संस्कृत विद्यालय में देखी जा सकती है।

* सहायक प्रवक्ता, इतिहास विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
मोबाइल नं0 – 8601135666, 9452403111, ईमेल – mishrasima03@gmail.com

मंदिर महंत श्री रामदासाचार्य जी के अनुसार ऐसा माना जाता है कि काशी के दक्षिण क्षेत्र में स्थित द्वारिकाधीश मंदिर का प्रार्दुभाव द्वापर युग के समाप्त होने के पश्चात हुआ। भगवान द्वारिकाधीश यहाँ स्थित द्वारिकाधीश्वर (शिव) के आमंत्रण पर यहाँ विराजमान हुए[1] उनका कहना है कि श्रीकृष्ण भगवान के गुरू गर्ग द्वारा रचित ''गर्गसंहिता'' में भी इस स्थल का उल्लेख है। वह यह भी बताते है कि पंचक्रोशी यात्रा में यहाँ भी एक दिन रूकने का विधान है। इस मंदिर की प्राचीनता ब्रहमवैवर्त पुराण, तीर्थ स्थलीसेतु तथा केदारखंड में वर्णित है। ब्रहमवैवर्त पुराण में वर्णित है कि द्वारिकाधीश के दर्शन मात्र से ही सारे कष्ट दूर हो जाते है। तथा कुण्ड में स्नान से शारीरिक कष्ट से निजात मिलती है। श्री रामदासाचार्य के अनुसार द्वारकाधीश मंदिर की प्रतिमा स्वयंभू है तथा इसकी मूर्ति हजारों साल पुरानी है। यद्यपि मंदिर का जीर्णोद्वार कई बार किया जा चुका है।[2] द्वारिकाधीश मंदिर में श्री शलिग्राम राधाकृष्ण, रामानंद जी, दक्षिणेश्वर हनुमान की प्रतिमा देखी जा सकती है। साथ ही भगवान कृष्ण (द्वारकाधीश) के मित्र सुदामा जी के नाम पर सुदामापुर क्षेत्र भी वर्तमान में स्थित है।[3]

उपरोक्त कारणों की ऐतिहासिकता बहुत सिद्ध नही हो पाती लेकिन इन मेलों के पीछ कुछ यथार्थवादी कारण अवश्य रहे होंगे। ऐसा लगता है कि उन्नीसवीं सदी तक सांस्कृतिक उत्सव अथवा मनोरंजन के लिए कोई संगठित भवन जैसे – सिनेमा घर अथवा इस प्रकार की अन्य संस्था न होने के कारण मेला अथवा पर्व ही लोगो के मनोरंजन का मुख्य आधार था। इसी के फलस्वरूप लोगों ने गंगा घाट के अतिरिक्त किसी न किसी तालाब के समीप या शहर के बीच मुख्य बगीचे अथवा चौराहों, मन्दिरों के समीप विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रम जैसे मेला लोकगीत, नाटक आदि का आयोजन प्रारंभ किया जिससे लोग अपना मनोरंजन कर सके।[4]

कष्टहरि मेले के महत्व में शंकुलधारा तालाब का बहुत बड़ा योगदान है। इस स्थान का वर्णन काशी के प्राचीन ग्रंथो में भी मिलता है। काशी के सामाजिक एवं धार्मिक जीवन में अनेक मेला, पर्व त्योहर तो है ही साथ अनेक धार्मिक यात्राओं का भी प्रावधान किया गया था। ऐसी ही धार्मिक यात्रा में काशी में नित्य सप्तपुरी यात्रा का विधान किया गया। पुराणों के अनुसार ये सभी सप्तपुरियाँ काशी में विद्यमान हैं तथा जिन स्थानों पर उनकी संस्थिति है वहाँ उन पुरियों की यात्रा होती है।[5] ब्रहमवैवर्त पुराण[6] में इन सभी सप्तपुरियों की स्थान स्थिति का वर्णन है तथा यह भी उल्लिखित है कि किन स्थानों की यात्रा कब करनी चाहिये ।इन सप्तपुरियों में शंकुलधारा का भी उल्लेख है जिसका नाम ब्रहमवैवर्तपुराण में शंखोद्वार (शंकुलधारा) मिलता है। ब्रहमवैवर्त पुराण[7] के अनुसार शंखुधारा के पास द्वारका था जिसकी यात्रा वर्षा ऋतु में की जानी चाहिये। इसी प्रकार विन्धुमाधव के पास विष्णुकांची था जिसकी यात्रा शरद ऋतु में करना चाहिए। इसी क्रम में सोमेश्वर के समीप रामकुण्ड संगम पर गंगा द्वार (हरद्वार) यात्रा शिशिर ऋतु में ,वृद्धकाल से कृतिवासेश्वर तक उज्जियिनी (अवंतिका) की यात्रा हेमंत ऋतु में, बकरिया कुण्ड से वरूणा नदी तक मथुरा जिसकी यात्रा बसंत ऋतु में, काशी और शिवकाशी काशी में सर्वत्र थी जिसकी यात्रा सदैव किये जाने का प्रावधान किया गया था। सप्तपुरियों की यात्रा प्रायः मोक्ष प्राप्ति, फलप्राप्ति तथा मोक्ष प्राप्ति के निमित्त था।[8]

उपरोक्त उदाहरण से शंखुधारा की ऐतिहासिकता का पता चलता है। संभवतः इसके धार्मिक महात्म्य के कारण ही इसके समीप मेले का आयोजन प्रारंभ किया गया होगा। ऐतिहासिक स्त्रोतों से पता चलता है कि रईस बाबू संगम लाल ने खोजवाँ में शंकुलधारा तालाब का पुर्ननिर्माण 1839–184 के बीच करवाया था।[9] काशी में यहाँ के राजा के अतिरिक्त धनी सेठ, साहूकार तथा व्यापारियों द्वारा भी जनसामान्य के लिये विभिन्न प्रकार के भवन, तालाब, अथवा मंदिर बनवाने की परंपरा रही है। उनके ये कार्य कहीं न कहीं धार्मिक कारणों से भी किये गये थे इस विषय में धर्मशास्त्रों में वर्णित है कि जो मनुष्य जहाँ कहीं भी काशी में मंदिर, धर्मशाला, सत्संग भवन, कुँआ, तड़ाग आदि का जीर्णोद्वार कराता है या प्रेरणावश अन्य के द्वारा भी करवाता है तो उसके अन्य क्षेत्र और काशी क्षेत्र में किये गये पापों का प्रायश्चित हो जाता है।[10] तालाब के पास ही द्वारिकाधीश जी का मंदिर था जिसके कारण यहाँ आयोजित 'कटहरिया' मेलो का महात्म्य और बढ़ जाता था। इस मेले में संगीत, नृत्य, कजरी, ठुमरी, आदि का भी आयोजन किया जाता है। जिसमें काशी के राजा, रईस तथा सामान्य लोग सभी उपस्थित हो मनोरंजन करते थे। कजरी, ठुमरी, श्लोकगीत आदि से सुशोभित यह स्थानीय मेला 1940 तक लोगों के आकर्षण का केन्द्र बना रहा। यद्यपि वर्तमान में भी इसका आयोजन होता आ रहा है लेकिन आधुनिकता के अभाव में इसके प्रति लोगों के उत्साह में कमी दिखाई देती है।

''कटहरिया'' अथवा कष्टहरिया मेले में एक अति विशिष्ट तत्व था दंगल अथवा कुश्ती। काशी के सामाजिक उत्सवों में दंगल अथवा कुश्ती के आयोजन की भी प्राचीन परंपरा रही है। ऐसा माना जाता है कि उस नगरी के प्रधान देव भगवान शिव के महज व्यायाम तथा मल्लयुद्ध के प्रेमी थे। इसी विश्वास के कारण प्रायः विभिन्न आयोजनों पर दंगल अथवा कुश्ती प्रतियोगिता भी की जाती थी।[11] संभवतः इस प्रकार का आयोजन या गृह उत्सव का आयोजन काशी वासियों के दुःख या अवसाद दूर करने का एक महत्वपूर्ण साधन होता था। कटहरिया मेले में भी काशी की इस परंपरा का निर्वहन किया जाता है। काशी के प्रत्येक अखाड़े के पहलवान अपने–अपने अखाड़े का प्रतिनिधित्व करते हैं।

इण्टरनेट के माध्यम से लिया गया फोटो

जीतने वाले को पुरस्कार दिया जाता है। वर्तमान में भी दंगल आयोजन कटहरिया मेले में देखा जा सकता है। दंगल के साथ–साथ विभिन्न प्रकार के झूले तथा विभिन्न प्रकार की लाइटों से पूरा परिसर सुसज्जित किया जाता है। इस अवसर पर कटहल के साथ–साथ नानखटाई भी बाजारो में बेचते हुए देखा जा सकता है।

इस मेले का एक अन्य आकर्षण द्वारकाधीश मंदिर के दायी ओर स्थित शिव मंदिर भी है। द्वारिकाधीश मंदिर के कुछ ही दूर तथा कुण्ड के पूर्व में यह शिव मंदिर जिसका नाम ऐतिहासिक स्त्रोतों में शंकुकर्णेश्वर मंदिर मिलता है, शिवगढ़ (शंकुगढ़) द्वारा स्थापित बताया जाता है। लक्ष्मीधर द्वारा उद्धृत लिंग पुराण[12] में वाराणसी के मंदिरो की एक बड़ी तालिका का वर्णन है। आगे उन्होने लिंगो, कूपों तथा सरोवरों (तालाबों) के साथ–साथ उनके स्थापकों का भी नामोल्लेख किया है।[13] इनमें से अधिकांश की स्थापना देवों, सिद्धो तथा ऋषियों द्वारा करने का उल्लेख है। ये सभी लिंग, कूप अथवा कुंड नगर के किन भागों में अवस्थित है उनका भी उल्लेख मिलता है।[14] इनके द्वारा उद्धृत नामों में यद्यपि शंकुलधारा के समीप शंकुकर्णेश्वर का वर्णन लिंगो की तालिका में नही किया गया है लेकिन दुर्गामंदिर के पश्चिम में शुष्केश्वर मंदिर का उल्लेख करते हुए उन्होने इसके पश्चिम में जनकेश्वर तथा उत्तर में शंकुकर्णेश्वर मंदिर का वर्णन किया गया है।[15] शंकुकर्णेश्वर के वायव्य कोण में मांडलेश्वर मंदिर की स्थिति बताया गया हैं। लिंग पुराण के उपरोक्त उल्लेख से शंकुलधारा के समीप स्थित शंकुकर्णेश्वर मंदिर की ऐतिहासिकता प्रमाणित होती है। डॉ0 मोतीचंद जी ने भी शंकुधारा तथा ईश्वरगंगी पर कजरी तीजमेला का वर्णन किया है जो भादो की तीज को बड़े ठाठ से लगता था। इसमें महिलायें एकत्र होकर स्नान तथा दर्शनादि करती थी।[16] श्रावण शुक्ल पक्ष एकादशी के दिन शंकुधारा में स्नान करके उसी के समीप स्थित विष्णु भगवान (द्वारिकाधीश) के दर्शन पूजन एवं वार्षिक यात्रा का भी वर्णन मिलता है।[17] प्राचीन समय में जब मनोरंजन के अधिक साधन नही थे तब काशी के लोकवासियों के धार्मिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों का मुख्य आधार उपरोक्त मेला अथवा त्योहार ही रहे। कष्टहरि अथवा कटहरिया मेला भी इसी प्रकार काशीवासियों के जीवन का महत्वपूर्ण अंग बना।

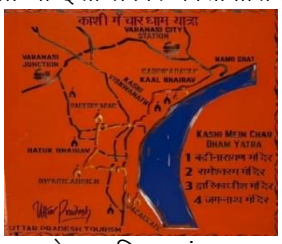

कटहरिया मेले का आयोजन जिस शंकुलधारा तालाब के समीप लगता था और जिसका आयोजन आज भी किया जाता है वह क्षेत्र के काशी के चार धाम के अन्तर्गत आता है। ऐसी मान्यता है कि भारत के चार धाम श्रीबदरीनाथधाम, श्रीजगन्नाथपुरी धाम, श्री रामेश्वर धाम तथा द्वारिकापुरी काशी में भी विद्यमान है।[18] श्री द्वारिकाधाम की स्थिति शंकुधारा तालाब जिसका प्राचीन नाम शंखोद्वारतीर्थ था के समीप बताया जाता है अथवा शंकुधारा तालाब, श्री द्वारिकापुरी धाम के अन्तर्गत आता है।[19] अन्य धामों में श्री बदरीनाथधाम मेहता घाट पर नर–नारायण तीर्थ के ऊपर, श्री जगन्नाथपुरी धाम वर्तमान अस्सी घाट के पास जगन्नाथ मंदिर में, श्री रामेश्वर धाम मान मंदिर घाट के ऊपर तथा पंचक्रोशी मार्ग पर रामेश्वर ग्राम में स्थित बताया गया है।[20]

काशी के चार धाम तथा काशी के सप्तपुरी यात्रा के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्र शंकुधारा तालाब तथा द्वारकाधीश मंदिर के समीप आयोजित कटहरिया मेला' यहाँ के स्थानीय निवासियों के लिये धार्मिक महात्म्य वाला मेला है।

मेले के सांस्कृतिक पक्ष का अध्ययन करे तो स्पष्ट है कि यह स्थानीय लोगो में प्रेम, सौहार्द का प्रतीक है। विभिन्न जातियों, वर्गों एवं समुदाय के लोग यहाँ उपस्थित होते हैं तथा अपना मनोरंजन करते हैं। शंकुलधारा तालाब यद्यपि वर्तमान में काफी प्रदूषित हो गया है तथा स्नान के लायक नही रह गया है लेकिन पूर्ववर्ती कालों में यह स्थानीय लोगों के जलप्राप्ति के तथा विभिन्न धार्मिक कृत्य का महत्वपूर्ण साधन रहा होगा। तालाब के समीप स्थित द्वारिकाधीश मंदिर में विद्यमान विभिन्न देव विग्रह हिन्दू धर्म के समन्वयवादी दृष्टिकोण का प्रतीक है। मेले में विभिन्न प्रकार के दुकानों झूलों आदि का आयोजन अनेक लोगों के रोजगार या आर्थिक लाभ की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इस प्रकार के मेले पूर्ववर्ती कालों में जब सिनेमा या अन्य प्रकार के तकनीकी मनोरंजन के साधन नही थे, उस समय उनके दुःखो चिंताओ तथा अवसादो को दूर करने का महत्वपूर्ण साधन था। धार्मिक दृष्टि से भी काशीवासी सप्तपुरी तथा पंचक्रोशी यात्रा के दौरान यहाँ विभिन्न धार्मिक कृत्य करके पुण्य के भागी बनते है।

उपरोक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि काशी के स्थानीय मेलों में कष्टहरि अथवा कटहरिया मेला विशिष्ट है। यद्यपि वर्तमान में भी इसका आयोजन हर वर्ष जुलाई में किया जाता है लेकिन अधिकांश लोग इसके प्राचीन धार्मिक महात्म्य से परिचित न होने के कारण इसे केवल कटहल के पर्व के रूप में ही इसे देखते एवं समझते हैं। आधुनिक युग के तकनीकी उपकरणों यथा टी.वी. मोबाइल इत्यादि ने भी इस मेले की लोकप्रियता को प्रभावित किया है यद्यपि सकारात्मक पक्ष यह है कि काशीवासी विशेषतः इस खोजवाँ क्षेत्र के स्थानीय निवासियो द्वारा इस परंपरा को अभी भी सुरक्षित रखते हुए इस मेले का आयोजन प्रतिवर्ष किया जाता है। साथ ही काशी की दंगल या कुश्ती की परंपरा भी इस मेले का आज भी अभिन्न अंग है।

वर्तमान समय में काशी के कुण्डो एवं प्राचीन तालाबों के संरक्षण की दिशा में सकारात्मक कार्य किये जा रहे हैं। इसी के फलस्वरूप शंकुधारा तालाब के भी संरक्षण एवं स्वच्छीकरण की प्रक्रिया प्रशासनिक अधिकारियों के सहयोग से किया जा रहा है तथा अनेक भव्य सांस्कृतिक कार्यक्रम का भी आयोजन किया जा रहा है। निश्चित रूप से इस प्रकार का सरकारी प्रयास काशी की प्राचीन सांस्कृतिक धरोहरों को संरक्षित करने में महत्वपूर्ण सिद्ध होगा। उपरोक्त प्रकार के स्थानीय मेलों के संरक्षण के स्थानीय जनों का भी उत्साहवर्धक प्रयास आवश्यक है जिससे ऐसे अद्भुत मेलों को सुरक्षित किया जा सके और इसके उद्देश्यों को जनमानस तक प्रेषित किया जा सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. दिनांक 07.05.2025 किये गये साक्षात्कार पर आधारित।
2. ETV published on 24 june 202 at 11:30 am
3. वहीं
4. डॉ. भानुशंकर मेहता, सो काशी सेइस कसन,बुक फेथ इण्डिया 1999, पृष्ठ 38
5. द्रष्टव्य–वाराणसी वैभव–कुबेरनाथ सुकुल, प्रकाशक–बिहार राष्ट्र–भाषा परिषद प्रथम संस्करण 2000, पृष्ठ 210–211
6. ब्रहमवैवर्त पुराण, काशी रहस्य 13.26.39
7. ब्रहमवैवर्त पुराण – वहीं
8. वहीं
9. आनंदकानन काशी – के. चंद्रमौलि, प्रकाशक, पिलग्रिम्स प्रकाशक 2012, पृष्ठ 229
10. काशी रहस्य श्लोक – 72
11. डॉ. देवी प्रसाद सिंह, काशी की जीवनशैली, प्रकाशक– भारतीय इतिहास संकलन समिति, काशी प्रांत प्रथम संस्करण–2006, पृ0–148
12. दृष्टव्य–काशी का इतिहास–डॉ. मोतीचंद प्रकाशक–विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, तृतीय संस्करण 2003, पृ.134–135
13. वहीं – पृष्ठ
14. वही – पृष्ठ 134
15. वही – पृष्ठ 143
16. वही – पृष्ठ 308
17. काशी दिव्य दर्शन – प्रकाशक दण्डी स्वामी शिवानंद सरस्वती, धर्म संघ, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी, प्रथम आवृत्ति – आषाढ़ शुक्ल पक्ष, गुरू पूर्णिमा, गुरूवार, पृष्ठ 111
18. काशी दर्शन – गीता प्रेस गोरखपुर, संवत 2080, तृतीय पुर्नमुद्रण पृष्ठ 179
19. वहीं
20. वहीं

काशी में आयुर्वेद का विकास : सुश्रुत के विशेष संदर्भ में

मोनू कुमार*
डॉ. सत्यपाल यादव**

सारांश :–

आयुर्वेद एक स्वदेशी चिकित्सा प्रणाली है जो वैदिक काल से भारत में प्रचलित एवं व्यापक रूप से लोकप्रिय रही है। आयुर्वेद का प्रारंभ मुख्य रूप से अथर्ववेद से माना जाता है। आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपवेद भी कहा जाता है। 600 ई0पू0 से 700 ई0 के मध्य भारत में मुख्य रूप से आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली का व्यवस्थित विकास एवं प्रचार प्रसार हुआ। इस काल में आयुर्वेद से संबंधित अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथों की रचना हुई तथा आयुर्वेदाचार्यों की एक परंपरा अस्तित्व में आयी। आयुर्वेद प्रणाली को चरक और सुश्रुत ने व्यवस्थित रूप से लिपिबद्ध कर इसका प्रचार–प्रसार किया। प्राचीन काल में भारत के विभिन्न भाग आयुर्वेद चिकित्सा केंद्र के रूप में उभरे जिनमें से एक स्थान था–काशी। प्राचीन काशी में आयुर्वेद की शिक्षा गुरूकुल प्रणाली के माध्यम से दी जाती थी। काशी में अनेक वैद्य रहते थे जो आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रदान करते थे।

काशी में ही जन्में प्रसिद्ध आयुर्वेदाचार्य सुश्रुत ने काशी को आयुर्वेद चिकित्सा केंद्र के रूप में विकसित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। आचार्य सुश्रुत ने आयुर्वेद पर सुश्रुत संहिता नाम से एक प्रसिद्ध पुस्तक की रचना की। आचार्य सुश्रुत ने काशी में आयुर्वेद चिकित्सा के शिक्षक के रूप में अपने शिष्यों को चिकित्सकीय शिक्षा देने के साथ ही चिकित्सकीय नैतिकता की मूल संहिता भी स्थापित किया। आचार्य सुश्रुत के चिकित्सकीय अन्वेषण कार्यों को उनके शिष्यों ने आगे बढ़ाया जिसके फलस्वरूप प्राचीन काल में काशी आयुर्वेद चिकित्सा का लोकप्रिय केंद्र बना रहा जिसका प्रभाव आज भी देखने को मिलता है कि काशी में आज भी आयुर्वेद चिकित्सा व्यापक रूप से लोकप्रिय है।

प्रस्तुत अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य काशी में आयुर्वेद के विकास के संदर्भ में आचार्य सुश्रुत के आयुर्वेद चिकित्सकीय प्रणाली विशेषतया शल्य चिकित्सा के क्षेत्र में योगदानों का वर्णन करना है तथा आचार्य सुश्रुत द्वारा विकसित विभिन्न चिकित्सा अन्वेषणों का आधुनिक शल्य चिकित्सा पद्धतियों पर स्थायी प्रभाव का विश्लेषण करना है।

बीज शब्द– आयुर्वेद, स्वदेशी, काशी, आयुर्वेदाचार्य, सुश्रुत संहिता, शल्य चिकित्सा, चिकित्सा अन्वेषण।

आलेख :–

काशी प्राचीन काल से ही आयुर्वेद चिकित्सा का प्रमुख केंद्र रहा है तथा इसे इस रूप में स्थापित करने में आचार्य सुश्रुत का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। प्रसिद्ध शल्य चिकित्सक सुश्रुत का जन्म काशी में हुआ था। आचार्य सुश्रुत का काल निर्धारण एक विचारणीय विषय है परन्तु विभिन्न आचार्यों एवं इतिहासकारों ने इनका काल 1000–1500ई0 पू0 माना है। इनके पिता का नाम विश्वामित्र था जो वैदिक कालीन ऋषि से अलग थे(लोकास, 2010)। उन्होंने हिंदू परंपरानुसार चिकित्सा के पौराणिक देवता धन्वंतरि से चिकित्सा की कला सीखा था। एक अन्य स्थान पर काशीपति दिवोदास को आचार्य सुश्रुत का गुरू बताया गया है(सिंह, 2022)। आचार्य सुश्रुत ने आयुर्वेद पर सुश्रुत संहिता नामक ग्रंथ की रचना की थी जिसमें उन्होंने दिवोदास धन्वंतरि द्वारा दिये गये उपदेशों को निबद्ध किया(गांधी, 2024)। सुश्रुत नामक दो आचार्यों का उल्लेख प्राप्त होता है– एक आद्य या वृद्ध सुश्रुत और दूसरा सुश्रुत कुछ स्थानों पर सुश्रुत और वृद्ध सुश्रुत एक ही प्रतीत होते हैं। अतः प्रतीत होता है कि दिवोदास का शिष्य आद्य या वृदध सुश्रुत थे, जिन्होंने मूल सुश्रुत तंत्र की रचना की(सिंह, 2022)। सुश्रुत संहिता की मूल तिथि ज्ञात नहीं है लेकिन कुछ विद्वानों का मत है कि इसकी रचना चौथी शताब्दी ई0पू0 के प्रारंभ से हुई थी(लोकास, 2010)। उसके बाद सुश्रुत द्वितीय या सुश्रुत ने इसे प्रति संस्कृत किया परंतु यह ग्रंथ तब भी अपूर्ण था। इनके द्वारा रचित सुश्रुत संहिता की प्रथम प्रति संस्कार नागार्जुन द्वारा किया गया एवं अंतिम पाठ शुदिध 10वीं सदी में चन्द्रट द्वारा की गयी। वर्तमान सुश्रुत संहिता 10वीं सदी के बाद की है(सिंह, 2022)। सुश्रुत संहिता निम्न चार स्तरों पर रचित हुई(सिंह, 2022)।

वृदध सुश्रुत (1000–1500 ई0पू0)
सुश्रुत (द्वितीय शताब्दी)

* शोध छात्र, इतिहास विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
** असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

नागार्जुन (पाँचवीं शताब्दी)
चन्द्रट (दसवीं शताब्दी)

सुश्रुत संहिता के अध्याय एवं विषय :–

सुश्रुत संहिता दो भागों में विभक्त है। पूर्व तंत्र और उत्तर तंत्र। पूर्व तंत्र 5 भागों में विभक्त था और मूल सुश्रुत संहिता में कुल 120 अध्याय थे परंतु बाद में उत्तर तंत्र के 66 अध्यायों का समावेश कर दिया गया(मुखोपाध्याय, 1929)। इस प्रकार वर्तमान में उपलब्ध सुश्रुत संहिता में कुल 186 अध्याय है। इसमें कुल 6 स्थान है, जिनमें अध्यायों का विभाजन इस प्रकार है(सिंह, 2022)।

1. सूत्र स्थान– 46 अध्याय– इसमें आयुर्वेद के मौलिक सिद्धांत, शल्य कर्म में प्रयुक्त होने वाले यंत्र– शस्त्र, क्षार–अग्नि–जलौंका अरिष्ट विज्ञान एव्र द्रव्य गुण विज्ञान का वर्णन किया गया है।
2. निदान स्थान– 16 अध्याय– इसमें प्रमुख बीमारियों के निदान (कारण) का उल्लेख है।
3. शरीर स्थान– 10 अध्याय– इसमें शरीर रचना एवं शरीर क्रिया का वर्णन है।
4. चिकित्सा स्थान– 40 अध्याय– इसमें मूल रूप से शल्य कर्म की विभिन्न विधियों (शल्य चिकित्सा), रसायन बाजीकरण एवं पंचकर्म का विस्तृत वर्णन है। इसमें शल्य क्रिया के प्रबंधन पर 34 अध्याय हैं(लोकास, 2010)।
5. कल्प स्थान– 8 अध्याय– इसमें आयुर्वेद चिकित्सा संबंधी विभिन्न विषयों का उल्लेख है।
6. उत्तर तंत्र– 66 अध्याय– इसमें शलाक्य तंत्र (नेत्र– कर्ण–नासा'–शिरो रोग), कौमार भृत्य (बाल रोग एवं स्त्री प्रसूति रोग), काय चिकित्सा और भूत विद्या का वर्णन है।

सुश्रुत संहिता शल्य चिकित्सा पर रचित सबसे पुराना ग्रंथ है, जो उस समय की चिकित्सा पद्धतियों का व्यापक जानकारी प्रदान करता है। इस ग्रंथ के सभी प्रमुख 6 खंड आयुर्वेद चिकित्सा के आवश्यक सिद्धांतों, विकृति विज्ञान, मानव शरीर रचना, शल्य चिकित्सा प्रबंधन, विषय विज्ञान आदि विषयों को समाहित करता है(कुमार, 2018)। सुश्रुत संहिता में 1120 बीमारियों, 700 औषधीय पौधों और खनिज एवं पशु स्रोतों से प्राप्त औषधों का विस्तृत वर्णन है(गांधी, 2024)। सुश्रुत संहिता में लगभग 300 प्रकार की शल्य क्रियाओं, संधान विधियों, नेत्र में होने वाले मोतियाबिंद रोग की शल्य क्रिया, प्रसव विधि, संज्ञाहरण आदि का वर्णन किया गया है(लोकास, 2010)।

सुश्रुत संहिता में भाल्य चिकित्सा :–

भारत में शल्य चिकित्सा लगभग 2600 वर्ष पूर्व ही प्रचलन में आ चुकी थी जिसका विस्तृत वर्णन आचार्य सुश्रुत द्वारा रचित सुश्रुत संहिता में मिलता है(कुमार, 2018)। सुश्रुत संहिता के अनुसार, आचार्य सुश्रुत द्वारा अपने साथियों सहित लगभग 3000 शल्य क्रियाएँ की गयी थी (होर्नले, 1907)। जिसके परिणामस्वरूप आचार्य सुश्रुत को भारत का पहला शल्य चिकित्सक माना जाता है(कुमार, 2018)। आचार्य सुश्रुत को राइनोप्लास्टी या प्लास्टिक सर्जरी का जनक भी कहा जाता है। सुश्रुत ने 300 प्रकार के शल्य प्रक्रियाओं की खोज की (भट्टाचार्य, 2009)।

सुश्रुत कॉस्मेटिक सर्जरी में विशेष निपुण थे। वे नेत्र शल्य चिकित्सा भी करते थे तथा मोतियाबिंद का ऑपरेशन करने की विधि का विस्तृत वर्णन सुश्रुत संहिता में मिलता है। सुश्रुत को टूटी हड्डियों का पता लगाने और उनको जोड़ने में विशेषता प्राप्त थी(कुमार, 2018)।

सुश्रुत संहिता में शल्य चिकित्सा की 8 विधियों का वर्णन हैं(कुमार, 2018), जो निम्न है–

छेद्य– छेदन हेतु।
भेद्य– भेदन हेतु।
लेख्य– अलग करने हेतु।
वेध्य– शारीरिक द्रव्य निकालने हेतु।
ऐश्य – नाड़ी में घाव ढूंढ़ने हेतु।
अहार्य– हानिकारक उत्पत्तियों को निकालने हेतु।
विश्रव्य– द्रव्य निकालने हेतु।
सीव्य– घाव सिलने हेतु।

सुश्रुत संहिता में भाल्य चिकित्सा में प्रयुक्त उपकरण :–

आचार्य सुश्रुत द्वारा सर्वप्रथम नेत्र रचना विज्ञान, नजर की कमजोरी, मोतियाबिंद की सर्जरी, कान, नाक एवं गले से जुड़ी सभी बीमारियों, क्षत्रिग्रस्त नाक को पुनः ठीक करना, कान की लोब को ठीक करना, पथरी, जले घाव को ठीक करना, टूटी हड्डियों को जोड़ना, आंत में होने वाले छिद्रों का उपचार, प्रोस्टेट नियंत्रण से संबंधित

विभिन्न उपकरणों का इजाद किया, जिन्हें शल्य चिकित्सा में काफी महत्त्वपूर्ण माना गया है(कुमार, 2018)। सुश्रुत संहिता में शल्य चिकित्सा में प्रयुक्त होने वाले 101 उपकरणों का उल्लेख मिलता है, जिनमें से 24 यंत्र स्वास्तिक, 2 संदेश, 2 ताल, 20 नाड़ी, 28 श्लाका, एवं 25 उपयंत्र थे। आचार्य सुश्रुत ने शल्य चिकित्सा प्रक्रियाएँ करते समय बांझ और उच्च गुणवत्ता वाले उपकरणों का उपयोग करने के महत्त्व पर भी जोर दिया है। आचार्य सुश्रुत ने 101 कुंद और 20 तीक्ष्ण उपकरणों का विवरण दिया है, जो शल्य क्रिया में प्रयुक्त किए जाते थे।दवे, 2024)। उनके अनुसार, शल्य चिकित्सा उपकरणों को ताँबे, लोहे या सोने जैसी धातुओं से बनाया जाना चाहिये और उन्हें अच्छी तरह से साफ किया जाना चाहिये, उपकरण सही आकार से बनाया जाना चाहिये, नुकीले होने चाहिये, मजबूत सामग्री से बने होने चाहिए तथा उनमें ऐसे हैंडल होने चाहिए जिससे उपयोग में आसानी हो(शाये, 2021)। आचार्य सुश्रुत ने पदार्थों का उपयोग करके शल्य चिकित्सा उपकरणों को तड़का लगाने पर जोर दिया। तड़का लगाने की प्रक्रिया का उद्देश्य उपकरणों को अच्छी स्थिति में बनाये रखना, उनकी कार्यक्षमता को बनाये रखना और शल्य क्रिया के दौरान संदूषण के जोखिम को कम करना था(शाये, 2021)।

सुश्रुत संहिता में सन्धान शल्य (Plastic Surgery) :–

आचार्य सुश्रुत का शल्य चिकित्सा के क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण योगदान था– नाक का पुनर्निर्माण, जिसे वर्तमान में राइनोप्लास्टी के नाम से जाना जाता है। आचार्य सुश्रुत ने राइनोप्लास्टी की शल्य प्रक्रिया का जटिल वर्णन किया है(शाये, 2021)।

सुश्रुत संहिता में नाक के पुनर्निर्माण की प्रक्रिया का वर्णन करते हुए कहा गया है कि सबसे पहले एक बेल का पत्ता जो इतना लंबा और चौड़ा हो कि कटे हुये हिस्से को पूरी तरह ढक सके, इकट्ठा किया जाना चाहिये और पीछे हटने वाले पत्ते के बराबर आकार का जीवित माँस का एक टुकड़ा गाल के क्षेत्र से (नीचे से उपर की ओर) काटा जाना चाहिए और चाकू से उसे खुरचने के बाद कटे हुये नाक पर तेजी से चिपका दिया जाना चाहिये। फिर शांत दिमाग वाले चिकित्सक को इसे देखने में अच्छी और जिस उद्देश्य के लिये इसे लगाया गया है उसके लिए पूरी तरह से उपयुक्त पट्टी से बांधना चाहिए। चिकित्सक को सुनिश्चित करना चाहिये कि कटे हुये हिस्सों का आसंजन पूरी तरह से प्रभावित हुआ है और फिर सांस लेने में आसानी के लिये चिपके हुये माँस की नीचे लटकने से रोकने के लिये नाक में दो छोटी पाइप डालनी चाहिये। उसके बाद चिपके हुये हिस्से को पाउडर से धूलना चाहिये और नाक को करपासा रूई में लपेटना चाहिये और कई बार शुद्ध सीसम के परिष्कृत तेल छिड़कना चाहिए(महावीर, 2001)।

सुश्रुत संहिता में कान के पुनर्निर्माण के बारे में कहा गया है कि शल्य चिकित्सा के ज्ञान में पारंगत एक शल्य चिकित्सक को व्यक्ति के गाल से जीवित मांस का एक टुकड़ा इस तरह से काटना चाहिये कि उसके सिरे उसके पिछले स्थान (गाल) से जुड़ जाये। फिर जिस भाग पर कृत्रिम कान की लोब बनाई जानी है, उसे थोड़ा सा खुरचकर काटना चाहिये और रक्त से भरा हुआ तथा पहले बताये अनुसार काटा हुआ जीवित माँस उसके साथ चिपका देना चाहिये। फिर उस फ्लैप को शहद और मक्खन से ढक देना चाहिये तथा कपास और लिनन से पट्टी बाँध देनी चाहिये और उस पर बेकिंग क्ले की पाउडर छिड़क देनी चाहिये। ऐसी प्रक्रिया के लिये रक्त की आपूर्ति सहित चेहरे के क्षेत्र की मानव शरीर रचना का अच्छा ज्ञान होना आवश्यक है(महावीर, 2001)।

सुश्रुत संहिता में मोतियाबिंद ऑपरेशन का वर्णन करते हुये बताया गया है कि ''यह प्रक्रिया मुख्य रूप से गर्म मौसम में की जाती है। सर्वप्रथम त्वचा को तैलीय दवा में भिगोये गये रूई के फाहे से रगड़ा जाता है। रोगी को हल्का जलपान कराया जाता है। रोगी के कमरे को सफेद सरसों, गुदगुदी, नीम के पत्तों और शाल वृक्षों के रालयुक्त गोंद के वाष्प से धुँआ दिया जाता है। शराब के अलावा भांग की धूप का उपयोग बेहोशी के लिये किया जाता है.....। रोगी एक ऊँचे स्टूल पर बैठता है और सर्जन उसके सामने होता है। हाथों को उचित बंधन के साथ सुरक्षित किया जाता है। रोगी को अपनी नाक देखने के लिये कहा जाता है जबकि सर्जन अपनी छोटी उंगली को कक्षा को बाहरी कोण के बोनी मार्जिन पर रखता है, अपने अंगूठे, तर्जनी और मध्यमा उंगलियों के बीच एक यव वक्रा शाल्का को पकड़े हुये। बाई आंख के दाहिने हाथ से छेदना चाहिये और इसके विपरीत आँख को श्वेतपटल के बाहरी हिस्से के मध्य और पार्श्व दो–तिहाई के जंक्शन पर प्रवेश कराया जाता है। यदि पानी जैसे तरल पदार्थ के निकलने पर आवाज आती है तो सुई गलत जगह पर लगी है। फिर आंख में स्तन का दूध छिड़का जाता है। इस क्षेत्र में रक्त वाहिकाओं से बचने के लिये सावधानी बरती जाती है। फिर सुई की नोंक का उपयोग लेंग के पूर्ववर्ती कैप्सूल को काटने के लिये किया जाता है। सुई की इस स्थिति में रखते हुये रोगी के विपरीत नाड़ियों को बंद करते हुये, नथुने से फूंकने के लिये कहा जाता है। इसके बाद लेंस पदार्थ (कफ) को सुई के साथ आते देखा

जाता है। जब रोगी वस्तुओं को देखने में सक्षम हो जाता है तो सुई निकाल ली जाती है..... देशी जड़ों, पत्तों और घी को पत्ती के साथ लगाया जाता है, फिर रोगी सीधा लेट जाता है और उसे छींकने, खाँसने या हिलने डुलने से मना किया जाता है(राजू, 2003)।

सुश्रुत ने चेहरे की असामान्यताओं के लिए त्वचा प्रत्यारोपण और फ्लैप प्रक्रियाओं के कई उपयोगों का वर्णन किया है। इनमें स्लाइडिंग फ्लैप, रोटेशन फ्लैप व पेडीकल ग्राफ्ट उल्लेखनीय है। सुश्रुत ने गाल के फ्लैप का उपयोग करके नाक का पुननिर्माण, कटे हुये कानों की लोब का मरम्मत, कानों की लोब में छेद करना, कटे हुये होठों की मरम्मत और त्वचा ग्राफ्टिंग तकनीकों का उपयोग किया(दास, 2007)। सुश्रुत द्वारा विकसित गाल फ्लैप और अन्य तकनीकों का उपयोग करके जटिल नाक पुनर्निर्माण ने आधुनिक प्लास्टिक सर्जरी की नींव रखी(लोकास, 2010)।

सुश्रुत संहिता में संज्ञाहरण :–

आचार्य सुश्रुत शल्य प्रक्रिया के दौरान मरीज को दर्द से राहत देने के लिये मद्य (शराब) और भांग का प्रयोग एनेस्थेटिक्स के रूप में करते थे जो संज्ञाहरण का कार्य करता था, इसलिये सुश्रुत को संज्ञाहरण का पिता भी कहा जाता है(गांधी, 2024)।

सुश्रुत संहिता में धूमन विधि :–

आचार्य सुश्रुत ने ऑपरेटिंग रूम और रिकवरी क्षेत्रों के लिये सड़न रोकने संबंधी प्रक्रियाओं का भी वर्णन किया है। इसके लिये धूपना या धूमन पर बल दिया गया है जो एक आयुर्वेदिक अभ्यास है जिसमें जीवाणुरोधी गुण वाले पौधों का प्रयोग किया जाता है। सुश्रुत ने धुम करने के लिये मुग्कल, वच, सफेद सरसों, सैंधव (सेंधा नमक) और नींबू के पेड़ के पत्तों जैसे जड़ी–बूटियों का उपयोग का निर्देश दिया है(शाये, 2021)। सुश्रुत ने नमक, सरसों, और घी जैसे पदार्थों का उपयोग करके नसबंदी की सिफारिश की जिसे एंटीसेप्सिस के प्रारंभिक रूपों में से एक माना जा सकता है। सुश्रुत की घूमन विधियों ने हवा में मौजूद कीटाणुओं को नष्ट करने और निर्जीव वस्तुओं को कीटाणु रहित करने में लाभकारी प्रभाव प्रदर्शित किया है(प्रसाड, 1984)।

सुश्रुत संहिता में मानव शरीर रचना :–

आचार्य सुश्रुत शल्य चिकित्सा के साथ ही शरीर शास्त्र के भी जनक माने जाते हैं। सुश्रुत संहिता में सर्वप्रथम शवच्छेद का वर्णन प्राप्त होता है(लोकास, 2010)। आचार्य सुश्रुत का मानना था कि कुशल और विद्वान सर्जन बनने के लिए सबसे पहले शरीर रचना शास्त्री होना आवश्यक है(शाये, 2021)। सुश्रुत संहिता में कहा गया है कि ''शरीर के विभिन्न अंगों का, जैसा कि पहले बताया गया है, जिसमें त्वचा शामिल नहीं है, सही ढंग से वर्णन नहीं किया जा सकता है, वह व्यक्ति जो शरीर रचना में पारंगत नहीं है। इसलिए, शरीर रचना विज्ञान का गहन ज्ञान प्राप्त करने के इच्छुक किसी भी व्यक्ति को एक मृत शरीर तैयार करना चाहिये और ध्यान से उसका निरीक्षण करना चाहिये, उसे चीर–फाड़ कर उसके विभिन्न अंगों की जाँच करनी चाहिये(चट्टोपाध्याय, 1933)।

हिंदू धार्मिक मान्यताओं में मृतक के पार्थिव देह को पवित्र माना जाता है तथा शव का विच्छेदन करना वर्णित माना गया है किंतु इन मान्यताओं के विपरीत, सुश्रुत ने शरीर रचना को समझने और उनका व्यवस्थित रूप से अध्ययन करने के लिये शवों के विच्छेदन पर बल दिया(चटोपाध्याय, 1933)। शव विच्छेदन के लिये सुश्रुत का दृष्टिकोण अद्वितीय था। उन्होंने मुख्य रूप से दो वर्ष से कम आयु के शिशुओं के शवों के विच्छेदन पर ध्यान केंद्रित किया क्योंकि व्यस्कों के शवों का अंतिम संस्कार कर दिया जाता था जबकि नवजातों को या तो दफनाया जाता था या नदी में प्रवाहित कर दिया जाता था(रूथकोव, 1961)।

सुश्रुत ने शव विच्छेदन के बारे में लिखा है कि विच्छेदन के लिये उस शव का चयन करना चाहिये। जिसके शरीर के सभी अंग मौजूद हैं, जो विष के कारण न मरा हो तथा किसी दीर्घकालिक रोग से ग्रस्त न हो, जिसकी आयु सौ वर्ष से कम हो तथा जिसके आँतों का मल निकाल दिया गया हो। एसे शव को, जिसे सभी अंगों का मुंज (घास), छाल, कुसा और सन आदि में से किसी एक से लपेटकर पिंजरे में रखकर धीमी गति से बहने वाली नदी में डाल देना चाहिये तथा उसे अंधेरे स्थान पर सड़ने देना चाहिये। सात रातों तक ठीक से सड़ने के बाद शव को पिंजरे से निकाल लेना चाहिये तथा फिर उस पर उसिरा (सुगंधित जड़, बाल, बाँस या बलवजा) (मोरी घास) में से किसी एक से बने बुरा से धीरे–धीरे रगड़कर विच्छेदन करना चाहिये। इस तरह, जैसे कि पहले वर्णित किया गया है, त्वचा आदि और उनके उपविभागों के साथ सभी आंतरिक और बाहरी भागों की दृष्टि से जाँच की जानी चाहिये(सिंघल और गुरू, 1973)।

आचार्य सुश्रुत और चिकित्सकीय शिक्षा विधि :–

आचार्य सुश्रुत एक निपुण शल्य चिकित्सक के साथ ही एक कुशल एवं व्यावहारिक शिक्षक थी थे। उन्होंने चिकित्सकीय तकनीकों को घरेलू वस्तुओं और सामग्रियों का प्रयोग करके अपने शिष्यों को चिकित्सकीय शिक्षा एवं प्रशिक्षण दिया जो व्यावहारिक परिवेश में आचार्य सुश्रुत की कुशलता को प्रदर्शित करता है। प्रारंभिक अवस्था में शल्य क्रिया के अभ्यास के लिये फलों, सब्जियों और मोम के पुतलों का उपयोग किया जाता था(चटोपाध्याय, 1933)। सुश्रुत ने जल लिली के डंठलों, पर शिराच्छेदन का अभ्यास करवाया, बाँस की नरकरीं का उपयोग करके भराई और जाँच करने की कला सिखाया, फलों का उपयोग करके ठोस वस्तुओं को निकालने का प्रदर्शन किया, शल्मली की लकड़ी से बने तख्ते पर फैले टैक्स पर खुरचने की तकनीक पर अभ्यास करवाया, कपड़े एवं जानवारों की खाल पर टांके लगाने का अभ्यास करवाया, माँस के टुकड़े पर वास्तविक और संभावित दागने की तकनीकों का प्रदर्शन किया गया। पानी से भरे कच्चे मिट्टी के बर्तनों का उपयोग करके कैथीटेराइजेशन प्रक्रियाओं का अभ्यास किया जाता था(कैम्भवी, 2022)। इस प्रकार, आचार्य सुश्रुत ने व्यावहारिक तरीकों द्वारा प्रशिक्षु चिकित्सकों का शल्य चिकित्सा ज्ञान एवं प्रशिक्षण दिया। प्रशिक्षु चिकित्सकों को किसी मरीज को छुने से पूर्व छठ साल का चिकित्सा प्रशिक्षण पूर्ण करना पड़ता तथा एक गंभीर शपथ लेना पड़ता था(शाये, 2021)।

सुश्रुत की चिकित्सा पद्धतियाँ एवं विरासत :–

सुश्रुत ने अनेकों चिकित्सा पद्धतियों का अन्वेषण किया जो उस काल में क्रांतिकारी थे। उनके अन्वेषण मात्र भारत तक सीमित नहीं रहे तथा मध्य एशिया और यूरोप तक उसका प्रचार–प्रसार हुआ। 8वीं शताब्दी में खलीफा मंसूर ने सुश्रुत संहिता को अरबी भाषा में अनुवाद करने का आदेश दिया जिसके परिणामस्वरूप सुश्रुत संहिता को किताब–ए–सुसुरूह नाम से संस्कृत से अरबी भाषा में अनुवाद किया गया। इब्न अरबी उसैबिया (1203 ई0–1269 ई0) ने अरबी भाषा में सुश्रुत संहिता का एक और अनुवाद किया(मुखोपाध्याय, 1929)। इन अरबी अनुवादों ने सुश्रुत के राइनोप्लास्टी तकनीक को पश्चिम के चिकित्सकों तक पहुँचाया। 1440 के दशक में सुश्रुत की राइनोप्लास्टी तकनीक इटली के सिसली पहुँची जहाँ एक संशोधित पेडीकन आर्म फ्लैप जिसे इटैलियन विधि के रूप में जाना जाता है कि नींव ब्रांका. डी. ब्रांका ने की। 1597 ई. में प्रकाशित गैसपेरे टैगलियाकोजी द्वारा 'डै कार्टोरम चिरूर्गिया' में इसका विस्तृत वर्णन किया गया था(शाये, 2021)। 18वीं शताब्दी के अंत तक पश्चिम के चिकित्सक सुश्रुत के राइनोप्लास्टी तकनीक से परिचित हुये तथा सुश्रुत संहिता को विभिन्न यूरोपीय भाषाओं में अनुवादित किया गया। 1793 ई0 से पूर्व ईस्ट इंडिया कंपनी के अधीन कार्यरत अंग्रेज चिकित्सकों को सुश्रुत के राइनोप्लास्टी की जानकारी नहीं थी। 1792 ई0 में टीपू सुल्तान के साथ युद्ध के दौरान श्रीरंगपट्टनम में भारतीय शल्य चिकित्सकों द्वारा अंग्रेजी सेना में कार्यरत काबासजी की गई राइनोप्लाट को देख कर सर्वप्रथम पूना के अंग्रेज चिकित्सक जेम्स फाइंडले और वॉमस क्रूसों इस तकनीक से परिचित हुये तथा 'मद्रास गजट' नामक समाचारपत्र में इसका वर्णन किया गया। इस प्रक्रिया से संबंधित जानकारी अक्टूबर 1794 ई0 में लंदन ''द जैंटलमैंन मैगजीन'' में भी प्रकाशित हुआ। लंदन के शल्य चिकित्सक जोसेफ कॉन्स्टेंटाइन सुश्रुत के राइनोप्लास्टी तकनीक का उपयोग करने वाले पहले अंग्रेज शल्य चिकित्सक थे जिन्होंने सितंबर 1814 और जनवरी 1815 ई0 में राइनोप्लास्ट को सफलतापूर्वक अंजाम दिया(शाये, 2021)। 18वीं शताब्दी के प्रारंभ में हेस्लर ने लैटिन भाषा में तथा मूलर ने जर्मन भाषा में सुश्रुत संहिता का अनुवाद प्रकाशित करवाया(शाये, 2021)। 1907 ई. में कविराज के.एल. भिषाग्रत्न ने कलकत्ता से तीन खण्डों में सुश्रुत संहिता का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद प्रकाशित करवाया तथा बाद का संस्करण 1963 में प्रकाशित हुआ(भिषाग्रत्न, 1963)।

सुश्रुत संहिता पर अनेकों संस्कृत टीकाएँ लिखी गई है, जो निम्न है(सिंह, 2022)।

गयदास कृत वृहत पंचिका या न्याय चंद्रिका
चक्रपाणि दत्त कृत भानुमति
डलहण कृत निबंध संग्रह
हारणाचंद्र कृत सुश्रुतार्थसंदीपन

काशी के निवासी प्रसिद्ध आयुर्वेदाचार्य सुश्रुत ने आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति के क्षेत्र. में अनेक अन्वेषण किया तथा अपने सफल शल्य चिकित्साओं द्वारा उन तकनीकों का भारत के विभिन्न भागों में प्रचार–प्रसार किया। आचार्य सुश्रुत ने भारत में शल्य चिकित्सा को प्रारंभ किया तथा शल्य प्रक्रिया में प्रयुक्त अनेक उपकरणों का भी अन्वेषण किया। आचार्य सुश्रुत ने न केवल अपने आयुर्वेद ज्ञान को सुश्रुत संहिता नामक ग्रंथ में लिपिबद्ध किया

बल्कि उस ज्ञान से अपने व्यावहारिक तरीकों द्वारा अपने शिष्यों को प्रशिक्षित भी किया। आचार्य सुश्रुत का कार्य मात्र राइनोप्लास्टी तक सीमित नहीं था बल्कि उन्होंने मोतियाबिंद, दाँतों की समस्याओं और विभिन्न प्रकार के फ्रैक्चर का इलाज भी किया। सुश्रुत द्वारा अन्वेषित राइनोप्लास्ट तकनीक का अध्ययन आज भी दुनिया के विभिन भागों में किया जाता है। यह तकनीक कम निशान और प्राकृतिक दिखने वाले परिणामों पर आधारित प्लास्टिक सर्जरी का आधारशिला बना हुआ है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. सिंह, डॉ. रामनरेश, (2022) शल्य तंत्र : आयुर्वेदिक सर्जरी शाखा, वर्ल्ड जर्नल ऑफ फार्मासुटिकल रिसर्च, II (13), 2262–2275, http://www.wjpmr.com
2. गाँधी, मथुरा, भाग्य श्री के. पाटिल (2024, सितम्बर 30), सुश्रुत : शल्य चिकित्सा और प्राचीन चिकित्सा विचारों के जनक, क्यूरियस, 11 (9) : 70577, htttp:/ doi : 10.7759/cureus 70577.
3. सिंह, शैलेन्द्र, (2022), आयुर्वेद अवंतरण और प्रमुख आचार्य, Retrived on 25 April 2025 from http://Egyankosh.ac.in/bitstrean123456789/89438/1/ unit1
4. लोकास, मारिओस, एलेक्सिस लैनेटरी, जूली फेराओइला, आर. शेन. टयूब्स, गोजी महाराजा, मोहम्मद मोहजेल शोजा, अभिषेक यादव, विष्णु चेल्लादिल्ला राव, (2010, सितम्बर 30), प्राचीन भारत में शरीर रचना : सुश्रुत संहिता पर ध्यान केंद्रित, जर्नल ऑफ एनाटॉमी, खंड 217 (6) : 646–50, http://doi:10.1111/J.1469-7580.2010.01294.X,
5. मुखोपाध्याय, जी (1929), भारतीय चिकित्सा का इतिहास, कलकत्ता : कलकत्ता यूनिवर्सिटी प्रेस, http://archive.org
6. कुमार, डॉ. धनंजय (2018), भारतीय चिकित्सा क्षेत्र में आयुर्वेद के स्वरूप का ऐतिहासिक विश्लेषण, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एप्लाइट रिसर्च, 2018; 4(3) : 545–548, http://www.allresearchjournal.com
7. होनेर्ल, ए.एफ. (1907), प्राचीन भारत की चिकित्सा में अध्ययन, भाग 1, मानव शरीर की हड्डियों का अस्थि विज्ञान, ऑक्सफोर्ड : क्लेरेडन प्रेस, http://scholar.google.com.
8. भट्टाचार्य, एस. (2009), सुश्रुत : हमारी गौरवशाली विरासत, इंडियन जर्नल ऑफ सर्जरी, 42 (2) : 223–225, http://pmc.ncbi.nlm.nih.gov/articles.
9. दवे, तीर्थ, अलेक्जेंडर हब्ते, विधि वोरा, माहिन कुदीर शेख, विवेक शंकर, श्री वेंगादेश गोपाल, (2024, अप्रैल 5), सुश्रुत : भारतीय शल्य चिकित्सा के जनक, प्लास्ट रीकॉन्स्दू सर्जन्स ग्लोबल ओपन जर्नल, 12 (4), http://e5715.doi:10.1097/gox.0000000000005715.
10. शाये, डी.ए. (2021), नाक के पुनर्निमाण का इतिहास, कर्र ओपिनियन ओटोलरिंगोल हेड नेक सर्ज, 29 : 259–264, http://doi:10.1097/moo. 000000000000730
11. महावीर, आर.सी. (2001, जनवरी–फरवरी), प्राचीन भारतीय सभ्यता : नाक से आगे, जे इन्वेस्ट सर्ज, 14, 3–5, http:// pmc.ncbi.nlm.nih.gov/articles.
12. राजू, वी.के. (2003), प्राचीन भारत के सुश्रुत, इंडियन जे ऑफ्थलमोल, 51, पृ0 119–122, http://journals.lww.com.
13. पर्साड, टी.वी. एन. (1984), मानव शरीर रचना का प्रारंभिक इतिहास, स्प्रिंग फील्ड, आई0 एल. : चार्ल्स सी थॉमस, http:// scholar.google.com.
14. चट्टोपाध्याय, डी.पी. (1933), प्राचीन भारत में विज्ञान और समाज, कलकत्ता : रिसर्च इंडिया पब्लिकेशन्स, http:// scholar.google.com.
15. रूथकोव, आई. एम. (1961), सर्जरी के इतिहास में महान विचार, बाल्टीमोर : द विलियम्स एंड विल्किंस कंपनी, http:// scholar.google.com.
16. सिंघल, जी.डी., गुरू, एल.वी. (1977), प्राचीन भारतीय शल्य चिकित्सा में शारीरिक और प्रसूति संबंधी विचार, बनारस : बनारस हिंदू विश्वविद्यालय प्रेस, http:// scholar.google.com.
17. केम्भवी, एस.ए., तोशिखाने एच. शर्मा ए. (2022), सुश्रुत संहिता में विकसित शल्य चिकित्सा : इमेजिंग इन मेडिसिन, 2022; 14:01–08. http:// scholar.google.com.
18. भिषाग्रत्न, के.एल. (1963), सुश्रुत संहिता का अंग्रेजी अनुवाद, वाराणसी : चौखंबा प्रकाशन, http:// archive.org.

सिनेमा में काशी के शूटिंग स्थल, कला संस्कृति एवं वैभव का फिल्मांकन–उ0प्र0 फिल्म नीति के संदर्भ में

डॉ. जितेन्द्र सिंह*

सारांश:

काशी (वाराणसी) प्राचीन नगरी है जिसके महत्वपूर्ण स्थल वैभव एवं कला संस्कृति को सिनेमा के पर्दे पर उतारा गया है। मुख्य धारा के हिन्दी सिनेमा के साथ ही भोजपुरी फिल्मों में यहां की धरोहर, स्थापत्य, अखाड़े, गंगा नदी के शांत जल, घाट पर जलती चिताओं और प्रकाशित घाट, गंगा आरती एवं फक्कड़ जीवन शैली का फिल्मांकन किया गया है। फिल्मों को गीत संगीत से संवारने में काशी की तवायफों का बड़ा योगदान रहा है कथक, ठुमरी की विरासत तवायफों से ही मिली है। इनके मुजरो ने भारतीय संगीत में प्राण फूंका है। कोठों पर प्रचलित ठुमरी, दादरी को फिल्मों में फिल्माया गया है। मैदानी भाग में बसे काशी में फिल्म निर्माण के अनुकूल विपुल सांस्कृतिक धरोहर, वैभवपूर्ण वास्तुकला, सांस्कृतिक विविधता एवं ग्रामीण- नगरीय परिवेश विद्यमान है जो फिल्म निर्माण के लिये आवश्यक तत्व उपलब्ध कराते हैं। वाराणसी में निर्मित कोठी, हवेली, गांवों की पुरातन संस्कृति, ऐतिहासिक दुर्ग, धार्मिक स्थल प्रमुख हैं जहां शूटिंग स्थल के विकास की अपार संभावनाएं हैं। उत्तर प्रदेश फिल्म नीति (2023) राज्य में सिनेमा के लिए आदर्श दशाओं के विकास पर बल देती है। ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित यह शोधपत्र प्राचीन काशी में फिल्म निर्माण एवं विकास को तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक दशाओं के आधार पर विश्लेषण करता है। अध्ययन के लिए ऐतिहासिक शोध प्रविधि और फिल्म अर्काइव को आधार बनाया गया है। समय- समय पर प्रकाशित सरकारी/गैर सरकारी रिपोर्ट, पत्र- पत्रिका से तथ्यों की पुष्टि की गयी है।

मुख्य शब्द- शूटिंग स्थल, कला संस्कृति, तवायफ, बनारस घराना, फिल्म नीति।

प्रस्तावना

सिनेमा ने काशी की संस्कृति को सशक्त एवं प्रभावी रूप में उभारा है साथ ही आम जनमानस के मनोरंजन एवं लोगों के सामाजिक व्यवहार को प्रभावित किया है। आज सिनेमा एक महत्वपूर्ण आर्थिक गतिविधि का रूप धारण कर चुका है। काशी पर आधारित फिल्मों में आध्यात्म एवं धार्मिक पक्षों पर जोर रहा है। सिनेमा तेजी से बदल रहा है। आर्थिक उदारीकरण (1991) के बाद से देश में एक नये मध्यम वर्ग का उदय हुआ है जिसकी आर्थिक स्थिति पहले से कहीं बेहतर है यह अपनी भाषा में अच्छा कंटेंट चाहता है। अर्थव्यवस्था के उदारीकरण के कारण सिनेमा क्षेत्र के आर्थिक निवेश में भारी वृद्वि हुई है जिसके फलस्वरूप सिनेमाई स्वरूप व इसके प्लेटफार्म में व्यापक बदलाव आये हैं। टेक्नालाजी, पिक्चर क्वालिटी, एनीमेशन जैसे हर छोटे पहलू पर वैश्विक स्तर पर काम हुआ है जिससे फिल्में परम्परागत शूटिंग स्थल के साथ-साथ छोटे कस्बों एवं नयी जगहों पर भी बनायी जा रही हैं।

उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र लेखन का उद्देश्य वाराणसी के प्रमुख फिल्म शूटिंग स्थल की पहचान, शूटिंग स्थलों के विकास में भौगौलिक कारकों के प्रभाव का विश्लेषण, बनारस घराना का फिल्म निर्माण के क्षेत्र में योगदान, नई फिल्म नीति के परिप्रेक्ष्य में वाराणसी में फिल्म निर्माण के अवसर एवं संभावनाओं की तलाश करना है।

पूर्व साहित्य की समीक्षा

काशी (वाराणसी) के फिल्म शूटिंग स्थलों पर लेखन का अभाव रहा है। वर्ष 1960-70 के दशक में सिनेमा पर गंभीर लेखन के विविध प्रयोग किए जाने लगे लेकिन शूटिंग स्थलों पर फिल्म लेखन का कार्य नगण्य रहा है। इसका प्रथम कारण फिल्मों का खंड- खंड में शूट होना, दूसरे चलचित्रों के पृष्ठभूमि के दृश्य की पहचान श्रम साध्य, थकानयुक्त कार्य, तीसरे समय के साथ शूटिंग स्थलों के स्वरूप में परिवर्तन का होना जिसके कारण इनकी पहचान करना मुश्किल रहता है। काशी के शूटिंग स्थल पर साहित्यिक स्रोत की नितांत कमी है जो भी स्रोत उपलब्ध हैं वे पत्र-पत्रिका, समाचार पत्र, ब्लॉग के रूप में उपलब्ध एवं बिखरे पड़े है जिनकी प्रमाणिकता को लेकर संदेह है। ए0 के0 सिंह (2009) ने *भोजपुरी सिनेमा में काशी का योगदान*[1] द्वारा काशी के

* **प्रवक्ता**, **जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, चन्दौली**, **उ0प्र0**, **232109।**, **ईमेल**: singhj378@gmail.com

प्रमुख शूटिंग स्थलों का चित्रण किया है। अविजीत घोष (2010) ने भोजपुरी फिल्मों का *Cinema Bhojpuri*[2] के नाम से संकलन कर एक प्रामाणिक ग्रंथ उपलब्ध कराया है जिससे भोजपुरी बोली के क्षेत्र में फिल्म निर्माण, वितरण एवं आर्थिक संभावनाओं का पता चलता है। संजीव श्रीवास्तव (2014) की पुस्तक *समय, सिनेमा और इतिहास - हिन्दी सिनेमा के सौ साल*[3] से भारत सहित पूर्वी उत्तर प्रदेश के शूटिंग स्थल, विषयवस्तु एवं तत्कालीन परिस्थितियों में सिनेमा की भूमिका का पता चलता है। रवि एस0 सिंह एवं श्वेता सिंह (2019) ने *Landscape Culture and Cinema: A Study in Film Geography*[4] के माध्यम से बिहार एवं पूर्वी उत्तर प्रदेश के शूटिंग स्थलों का उल्लेख किया है एवं फिल्मांकन के रूप में बैलगाड़ी, ग्रामीण परिवेश पर अध्ययन किया है। पत्र- पत्रिकाओं में समय- समय पर सिनेमा से संबंधित अंक प्रकाशित हुए हैं जिनसे थोड़ी बहुत जानकारी काशी व इसके आसपास के शूटिंग स्थलों की प्राप्त होती है। प्रस्तुत शोध पत्र इस संदर्भ में एक नवीन प्रयास है जिससे काशी के विभिन्न शूटिंग स्थलों एवं संभावित स्थलों पर प्रकाश पड़ता है।

शूटिंग स्थल एवं फिल्मांकन के क्षेत्र

विभिन्न धर्मों और संस्कृतियों का संगम स्थल बन जाने पर वाराणसी, भारत के कोने- कोने बसने वालों के लिए पवित्र स्थल बन गयी।[5] इस नगरी के स्थल, वैभव, गीत-संगीत, कला संस्कृति एव गंगा जमुनी तहजीब को फिल्मकारों ने सिनेमा के पर्दे पर उतारा है। काशी हिंदी फिल्मों में पर्याप्त उपस्थिति दर्ज करने में सफल रही है यह उपस्थिति दो रूपों में दिखाई पड़ती है। काशी के रूप में उसका चित्र धार्मिक, पारंपरिक, अध्यात्मिक नगर के रूप में हुआ है। बनारस के रूप में यह मस्ती भरी पहचान के चलते जगह बनाने में कामयाब रही है ।[6] दादा साहब फाल्के निर्देशित मूक फिल्म *राजा हरिश्चंद्र (1913)* सत्यवादी राजा हरिश्चंद्र के जीवन के महत्वपूर्ण भागों जिसमें डोम राजा के पास हरिश्चंद्र का बंधक होना, शमशान कार्यकर्ता का कार्य इत्यादि प्रसंग काशी के चित्रों के बिना उपस्थित नहीं हो सकते हैं, फिर आप सजीव चित्रण करें या सेट लगाकर करें। मुंबई के दादर क्षेत्र में इस फिल्म की शूटिंग आरंभ हुई थी।[7] *द लाइट आफ एशिया* उपन्यास पर आधारित फ्रांज ओस्टेन और हिमांशु राय निर्देशित मूक फिल्म *प्रेम सन्यास (1925)* में हाथियों के करतब, बनारस का पवित्र नगर एवं गंगा के घाट दिखाये गये हैं। सारनाथ बुद्ध स्थली रही है अतः फिल्म में काशी का चित्रण स्वाभाविक ही है।

हिन्दी सिनेमा में काशी ने बॉलीवुड में फिल्म *गूज उठी शहनाई (1959), जिस देश में गंगा बहती है (1960), संघर्ष (1968)* इत्यादि फिल्मों के जरिये दस्तक दी। क्षेत्रीय सिनेमा के रूप में प्रथम भोजपुरी फिल्म *गंगा मैया तोहे पियरी चढ़ाइबो (GMTPC 1962), दंगल (1977), गंगा किनारे मोरा गांव (1983), बैरी कंगना (1992),* में यहां की संस्कृति, स्थल एवं ग्रामीण परिवेश को दिखाया गया है। सत्यजीत रे निर्देशित बांग्ला फिल्म *अपुर संसार (1959)* एवं *जोय बाबा फेलूनाथ* (1979) में वाराणसी के कई दृश्य शूट किये गये। जोय बाबा फेलूनाथ में सन्यासी, साध्वी, सांड के साथ ही केदार घाट, दशाश्वमेध घाट व गलियों को देखा जा सकता है । फिल्मों में यहां की समृद्ध धरोहर, स्थापत्य, तवायफ एवं मुजरा संस्कृति, अखाड़े, गंगा नदी के घाट पर जलती चिताओं और प्रकाशित घाट, गंगा आरती एवं फक्कड़ बनारसी जीवन शैली का फिल्मांकन किया गया है। शंकर बाड़ा, बृजरामा पैलेस, आलमगीर मस्जिद, रामनगर का किला, चेत सिंह का किला, मोती झील महल, बनारस के घाट, तंग गलियां, गंगा नौकायन के दृश्य फिल्मकार के लिये प्रमुख पसंदीदा स्थल रहे हैं।

वाराणसी का शंकर बाड़ा (1641) फिल्मों हेतु प्राइम लोकेशन देता है जहां फिल्म यूनिट स्थाई रूप से ठहराव करती है। शांत एवं विस्तृत स्थल, अवसंरचना दशा, जल परिवहन की सुविधा एवं गम्यता के कारण शंकर बाड़ा फिल्म हेतु बेस स्थान है दो तल वाले बाड़े में प्रस्तर युक्त स्तंभ एवं गलियारे बने हैं इसकी वास्तुकला बृजरामा पैलेस की अपेक्षा साधारण है। कम खर्च के कारण यह फिल्म यूनिट हेतु उपयुक्त स्थल है। फिल्म *इश्क, रांझणा, जॉली एलएलबी 2,* भोजपुरी फिल्म *बेटा, भईया जी सुपर हिट, चोखेर बाली,* कई एड, डाक्युमेंट्री फिल्में शूट हो चुकी हैं। बृजरामा पैलेस (1812) को हेरिटेज होटल का दर्जा है । बलुआ प्रस्तर से बने पैलेस में कांच का प्रयोग है। बुर्ज के ऊपर तराशे प्रस्तर की जालीनुमा बालकनी है। डिजाइन युक्त प्रस्तर स्तंभ इसे शाही महल के रूप में पहचान देते हैं।

एक तरफ काशी अपने फिल्मों में बनारसी पान, गंगा, घाट, मंदिरों के शहर के रूप में उपस्थित है ।[8] दूसरी तरफ तवायफों के कोठे, मुजरा संस्कृति व संगीत के कलात्मक पक्ष एवं विधवाओं के जीवन, बनारसी ठगों का फिल्मकारों ने चित्रण किया है। काशी कुछ गलियां ऐसी हैं जिनसे बाहर निकालने के लिए किसी दरवाजे या मेहराबदार फाटक के भीतर से गुजरना पड़ता है ।[9] काशी में *जिस देश में गंगा बहती है (1960), गंगा की लहरें (1964), धर्म कांटा (1982), संघर्ष (1968), राम तेरी गंगा मैली (1985), घातक (1996)* के साथ ही नयी *इंद्रा (2002), वाटर (2005), बनारस (2006), रांझणा (2013), इशक (2013), मोहल्ला अस्सी (2016), मसान (2015), मुक्ति भवन (2016), द लास्ट कलर (2019), शुभ मंगलम ज्यादा सावधान (2020),*

ब्रह्मास्त्र (2022) सहित फिल्मों की लम्बी कतार है जिनमें काशी की जीवंत संस्कृति को पर्दे पर उतारा गया है। *जिस देश में गंगा बहती है (1960)* फिल्म के कुछ अंश सिंधिया घाट, संकटा घाट, गंगा महल घाट, भोसले घाट के रूप में दिखते हैं। इस फिल्म का निर्माण आचार्य विनोबा भावे और जय प्रकाश नारायण के दर्शन, समर्पण के विचारों से प्रेरणा पाकर किया गया था। फिल्म में अभिनय के बाद अभिनेत्री पद्मिनी ने हिंदी फिल्मों से संन्यास ले लिया ।[10] *गंगा की लहरें (1964)* का *जमाने से कहो, अकेले नहीं हम..* गीत गंगा की बहती धारा के साथ वाराणसी सहित ऋषिकेश से कोलकाता तक के दृश्य लिये गये हैं। *राम तेरी गंगा मैली (1985)* में बनारस की राजेश्वरी बाई के कोठे पर गंगा (मंदाकिनी) को बेच दिया जाता है। गंगा महल घाट, सिंधिया घाट, वाराणसी स्टेशन के साथ ही फिल्म में काशी एवं कलकत्ता के तवायफ कोठों पर प्रचलित सांस्कृतिक आदान- प्रदान को दिखाया गया है। अस्सी के दशक में सिनेमा कठिनाई भरा था टेलीविजन और वीडियो जैसे मध्यम तेजी से अपनी जगह बना रहे थे फिल्म इंडस्ट्री में दहशत का माहौल था राम तेरी गंगा मैली ने सिनेमाघर की जगमग लौटा दी। फिर एक बार साबित हुआ कि सिनेमा की भव्यता और सम्मोहन का कोई जवाब नहीं है ।[11]

बनारसी पान की अपनी पहचान है। अनजान के गीत *खाइके पान बनारस वाला..* (डॉन, 1978) शैलेंद्र के गीत *पान खायो सैयां हमारो, सांवली सुरतिया होठ लाल लाल.. हमने मंगाई सुरमेदानी, ले आया जालिम बनारस का जर्दा...* (तीसरी कसम, 1966) में बनारसी जर्दे की खुशबू महसूस की जा सकती है। *बनारसी ठग (1962)* ठगी के फैले नेटवर्क की कहानी है। आधुनिक युग में सबसे बड़ी ठगी रेशमी रुमाल ठगी को माना जाता है यह ठगी मध्य भारत में होती थी उस ठगी का संचालन और देश में रुमाल का निर्माण बनारस में ही होता था। बनारस धार्मिक नगर होने के कारण लोग यहां धर्म के नाम पर मठ, मंदिर बनवाने के लिए अपने साथ काफी रकम लाते थे उस रकम को यहां के ठग तीर्थ पुरोहित बनकर उड़ा लेते थे ।[12] *संघर्ष (1968)* महाश्वेता देवी की कथा पर ऐतिहासिक ड्रामा है जो बनारस के उन ठाकुरों को दर्शाती है जो 19वीं सदी में उत्तर भारत का आतंक का कारण थे वे ज्यादातर पुरोहित परिवारों से थे लेकिन अनायास तीर्थ यात्रियों को लूट लेते थे। फिल्म दर्शाती है कि कैसे बलि की रस्म को निजी लाभ के लिए दुरुपयोग किया जाता है।[13] रितुपर्णो घोष निर्देशित बांग्ला फिल्म *चोखेर बाली (2003), धर्म कांटा (1982)* के कुछ अंश वाराणसी में शूट किये गये। *ये गोटेदार लहंगा निकलूं मैं डाल के.. (धर्म कांटा, 1982)* गीत बनारसी महफिलों की शान बन गया। मुन्नीबाई के कोठे का सीन हैं।

बनारस के घाटों पर कई बॉलीवुड फिल्मों की शूटिंग हुई है। राजकुमार संतोषी निर्देशित *घातक (1996)* में काशी विश्वनाथ मंदिर, अस्सी घाट, गंगा महल घाट, रीवा घाट, वाराणसी स्टेशन एवं अखाड़े के दृश्य लिये गये हैं। *इंद्रा (2002)* में चिरंजीवी को गगा नदी में स्नान करते हुए दिखाया गया है। दीपा मेहता निर्देशित *वाटर (2005)* की कहानी 1940 के दशक में वाराणसी के आश्रम, गंगा नदी के किनारे विधवाओं के बहिष्कृत जीवन के दर्द को बयां करती है।[14] उर्मिला मातोंडकर, नसीरूद्दीन शाह अभिनीत *बनारस (2006)* में अस्सी घाट, गंगा महल घाट, सारनाथ, बिड़ला निर्मित काशी विश्वनाथ मंदिर, सयाजी राव गायकवाड़ लाईब्रेरी, बीएचयू, विश्व सुंदरी पुल एवं बृजरामा पैलेस के दृश्य लिये गये हैं। बाबाजी (नसीरूद्दीन शाह) जो आध्यात्म का गूढ़ ज्ञान व जीवन का रहस्य सोहेम को देते हैं वह विरल एवं किताबी भाषा से हटकर है। *रांझणा (2013)* में नंदेश्वर घाट, मुंशी घाट, अस्सी घाट, गोदौलिया, रामनगर, आलमगीर मस्जिद और मोती झील के दृश्य लिए गये हैं। रेत माफिया की कहानी पर आधारित *इसक (2013)* में अस्सी घाट, राजा घाट, लखनिया दरी (मिर्जापुर) के दृश्य लिए गये हैं। जीवन और मोक्ष पर केन्द्रित फिल्म *मसान (2015)* में गोलाघाट, राजघाट, शूल टंकेश्वर और नंदेश्वर घाट के दृश्य लिये गये हैं। फिल्म *पीकू (2015)* में अस्सी घाट, तुलसी घाट, राजघाट ,गंगा महल घाट एवं सटी गलियां दिखाई देता है। *मुक्ति भवन (2016)* में कर्तव्य निष्ठ बेटे की कहानी है जो अपने पिता को मोक्ष प्राप्ति हेतु पवित्र शहर काशी ले आता है। मणिकर्णिका घाट, ब्रह्मा घाट, नंदेश्वर घाट, हरिश्चंद्र घाट, शंकर बाड़ा के दृश्य लिये गये हैं। *मोहल्ला अस्सी (2016)* में अस्सी घाट की छतरियां, तंग गलियां, तुलसी घाट, पप्पू टी स्टॉल, काशी स्टेशन को सेलुलायड के पर्दे पर लाया गया है। *काशी: इन द सर्च आफ गंगा (2018)* में बीएचयू, मणिकर्णिका, दशाश्वमेध, अस्सी घाट, राजघाट, मालवीय ब्रिज, बृजरामा पैलेस को दिखाया गया है। *मिर्जापुर वेब सीरीज (2018)* में अजमतगढ़ पैलेस (मोतीझील महल), गंगा घाट, रामनगर किला, भदउ डाट पुल, सोनारपुरा, मंगला गौरी मंदिर के दृश्य लिये गये हैं। *द लास्ट कलर (2019)* वाराणसी के आश्रम में रहने वाली महिला की कहानी जो विधवा महिलाओं की दुर्दशा को चित्रित करती है। लाल घाट, अस्सी घाट, लोलार्क कुंड, नंदेश्वर घाट को देखा जा सकता है। *सुपर 30 (2019)* रामनगर किले और खिड़किया घाट पर शूट की गयी है ।[15] *शुभ मंगलम ज्यादा सावधान (2020)* में अजमतगढ़ पैलेस के दृश्य लिये गये हैं। गर्भ निरोधक जागरूकता को लेकर बनी *हेलमेट (2021)* में रामनगर किले के दृश्य लिये गये हैं। *सत्यमेव जयते 2 (2021)* में शिवाला, रामनगर किला दिखाया गया है। *ब्रह्मास्त्र (2022)* में गुलरिया घाट, भोसला घाट, चेत सिंह घाट, शिवाला घाट, अस्सी घाट,

गायघाट के दृश्य लिये गये। *केसरिया तेरा इश्क है पिया..* गाने में मणिकर्णिका, भोंसले घाट सहित पटनी टोला, गली एवं घाट के सीन लिये गये हैं।

भोजपुरी फिल्म *गंगा मैया तोहे पियरी चढ़ाइबो (1962)* काशी की संस्कृति को दिखाती है फिल्म में एक स्त्री की कारूणिक कथा, सीमांत कृषक की व्यथा, नशाखोरी, शूदखोरी का कुचक्र, स्त्री शिक्षा के प्रति जागरूकता, ग्रामोत्थान में युवकों की सक्रिय भागीदारी जैसे संवेदनशील मुद्दे उठाये गये हैं। कुंदन कुमार निर्देशित इस फिल्म की अधिकांश शूटिंग बिहटा (बिहार) एवं बनारस में हुई। शैलेन्द्र ने फिल्म के अधिकतर गीत पहले से आने वाले लोकगीतों के मुखड़ों जैसे- *हे गंगा मइया तोहे पियरी चढ़इबे.., लुक छिप बदरा में चमके जइसे चनवा...* आदि पर लिखे। *दंगल (1977)* का गीत *काशी हिले पटना हिले..* मन्ना डे की आवाज में मालवीय पुल (डफरिंग ब्रिज) पर बनारसी गमछा लटकाये कुंदन (सुजीत कुमार) को इक्का चलाते हुये देखा जा सकता है। इसमें वाराणसी के घाट के दृश्य लिये गये हैं। *मोरे होठवा से नथुनिया..* बनारसी मुजरे से प्रभावित है। दिलीप बोस निर्देशित *गंगा किनारे मोरा गांव (1983)* में मिर्जापुर से हाजीपुर तक गंगा किनारे के दृश्य लिए गये हैं। वाराणसी का आदिकेशव घाट, सराय मोहना, सलारपुर, सारनाथ का ग्रामीण परिवेश को फिल्म में दिखाया गया है। कुणाल, मीरा माधुरी अभिनीत हारर फिल्म *बैरी कंगना (1992)* में लाजो (मीरा माधुरी) की अस्थियों का विसर्जन में राजघाट एवं डफरिन ब्रिज के दृश्य लिये गये हैं। इन फिल्मों की अपार सफलता का कारण भोजपुरी वातावरण में रची बसी ग्रामीण संस्कृति थी जिसे सूक्ष्मता से दर्शाया गया है गीत संगीत, खेत खलिहान, खेल से लेकर मुहावरे लोकोक्तियां, कहावतें भोजपुरी अंचल के जीवन के दस्तावेज की तरह हैं ।[16]

बनारस घराना एवं फिल्म

तवायफों के पारम्परिक मुजरा का केन्द्र अवध, बनारस और मुजफ्फरपुर का चतुर्भुज स्थान रहा है। मुजरा, गीत, गजल, बंदिशों के बोलों को भावपूर्ण नृत्य शैली में अंजाम देने वाली नर्तकियां 'पेशवाज' पहन कर नृत्य करती थीं, जिसमें शरीर के ऊपरी भाग में घेरेदार अंगरखा और पैरों में चूड़ीदार पाजामा पहना जाता है। तवायफों की कला साधना से ही कथक का विकास हुआ और बनारस के पूरब ठुमरी गायन का जन्म हुआ। ऐसे समय में जब महिलाओं को पत्र लिखने से वंचित रखा जाता था, तवायफों को साहित्य और राजनीति का ज्ञान था और उनके कोठे सांस्कृतिक परिष्कार के केंद्र थे।[17] एक समय फिल्मों में जो कोठा दिखाया जाता था, वह बनारस की गलियों से प्रेरित था। राजकपूर निर्देशित *'राम तेरी गंगा मैली'* में राजेश्वरी बाई का कोठा एवं सिंधिया घाट फिल्माया गया है। गायन, वादन और नृत्य के जिन घरानों के लिए बनारस मशहूर रहा, उनमें से कई दालमंडी से फले-फूले। तौकीबाई, हुस्नाबाई, जद्दनबाई, जानकीबाई, गौहरजान, रसूलनबाई, सिद्धेश्वरी देवी, विद्याधरी सहित सभी नाम पूरे देश में मशहूर थे जद्दनबाई की बेटी नरगिस (1929-1981) ने *तमन्ना (1942)* से मुख्य किरदार निभाना शुरू किया।[18]

बिस्मिल्लाह खां के बेटे नाजिम हुसैन मशहूर तबला वादक हैं जिन्होंने *रॉकस्टार (2011) लिंगा (2014) बाहुबली (2015) RRR (2022)* फिल्म में तबला बजाया है। *'गूंज उठी शहनाई'(1959)* में संगीतकार भरत व्यास ने *दिल का खिलौना हाय टूट गया..* गीत में बृजबाला की ही धुन का इस्तेमाल किया। बिस्मिल्लाह खां ने इसमें शहनाई बजाई थी। यह गीत मेनावली घाट, वाई महाराष्ट्र में फिल्माया गया। वाई को दक्षिण काशी भी कहते हैं। पद्मा खन्ना, नरगिस, गोविंदा जैसी हस्तियों का वाराणसी से नाता रहा है। पद्मा खन्ना ने बिरजू महाराज से कथक की शिक्षा लेकर *GMTPC (1962), विदेशिया (1963), बलम परदेशिया (1979), भैयादूज (1984)* सहित अनेकों फिल्मों में काम किया। *पाकीजा (1972)* में इनका गाया गाना *चलो दिलदार चलो..* वर्ष 1970- 80 के दशक में खासा लोकप्रिय रहा। बनारस की गायिका रसूलन बाई के मुजरे पर रईसों और जमींदारों का जमावड़ा लगता था। *'मटुकिया मोरी छिन ले गयो सांवरिया'*, *'फूलगेंदवा न मारो लागत जोबनवा में चोट'* जैसे मुजरे खासे लोकप्रिय थे। रसूलन बाई के *फूलगेंदवा न मारो लागत जोबनवा में चोट'* पर नितिन बोस निर्देशित *दूज का चांद (1964)* में मन्ना डे ने अपनी आवाज में *अजी फूल गेंदवा न मारो, लागत करेजवा में चोट..* बन गया। रसूलन बाई का गाया दादरा *'ठाढे रहियो रे ओ बांके यार'*, फिल्म *पाकीजा (1972)* का हिस्सा बना। यह गीत लता मंगेशकर ने गाया, जिसे मीना कुमारी पर फिल्माया गया था।[19] कमल अमरोही ने पाकीजा के जरिये एक वैश्या की जिंदगी की तकलीफों को बखूबी उभारा है ।[20] बनारस के संगीत योगदान को देखकर इटावा घराने के मशहूर सितारवादक उस्ताद विलायत खान ने कहा है 'बनारस, संगीत की खराद मशीन है जहां फनकार की घिसाई होती है और वह संवरकर, निखरकर निकलता है।'

बनारस घराना ने पूर्वी उ0प्र0 के लोकगीतों को आधार दिया। कजरी गायन में बनारस घराने का दखल है सावन का उल्लास है। पूर्वी उत्तर प्रदेश में ठुमरी में पारंगत सुंदर नामक तवायफ द्वारा रचे गये *मिर्जापुर कइला गुलजार हो, कचौड़ी गली सून.., पिया मेंहदी मंगा दा मोती झील..* रहे। मोती झील महल क्षेत्र में पहले लंगड़ा आम एवं मेहंदी के वृक्ष पाए जाते थे। यहीं पर *पिया मेंहदी मंगा दा मोती झील से* गाना की रचना की गई। सुंदर तवायफ पर भोजपुरी समा्रट महेंद्र मिसिर का प्रभाव था

जिन्होनें *अगुरी में डसले बिया नगिनिया रे..* लोकगीत की रचना की। जल्द ही तवायफों की संगीत संस्कृति को फिल्मों में दिखाने का चलन पड़ गया। *मोहे पनघट पे नंदलाल छेड़ गयो रे.., इन्हीं लोगों ने ले लीना... (मुगले आजम, 1960), आज जाने की जिद न करो.., हमरी अटरिया.. (पाकीजा)* ये सभी गाने मूल रूप से तवायफों के ही रहे हैं। धीरे-धीरे तवायफों के संगीत योगदान को भुला दिया गया। भोजपुरी फिल्मों में तवायफ कोठों पर प्रचलित ठुमरी, दादरी को स्थान दिया गया इनकी अपनी पहचान, अलग मिठास थी। *मोरे होठवा से नथुनिया गुलैल करेला.... (दंगल, 1977), लुक छिप बदरा में चमके जैसे चनवा..., गंगा मइया तोहे पियरी.. (GMTPC, 1962)* सहित अनेकों गीतों में ढोल, मंजीरा, बीन सहित वाद्ययंत्रो की ताल थाप की संगति से ये गीत आम लोगों की जुबान पर आ गये ब्रिटिश हुकूमत ने तवायफों को वेश्याओं की श्रेणी में रखा, उनके कोठों को गैरकानूनी करार दिया। अंग्रेजों का डर हावी हो रहा था। नतीजन महफिलें कम सजने लगीं। राजे-रजवाड़ों और महलों ने तवायफों से तौबा कर ली। अंग्रेजों के दमन का नतीजा यह रहा कि तमाम तवायफें और उनके साजिंदे गांवों में जाकर खानाबदोश की जिंदगी गुजारने लगे। बनारसी तवायफों के कुनबे के लोग अपनी जाति गंधर्व बताते हैं, लेकिन सरकारी रिकार्ड में इनकी उप-जाति भाट के रूप में दर्ज है। बनारस, चंदौली और गाजीपुर के तमाम गांवों में भाट जातियों को लोग अपने पारंपरिक धंधे को छोड़कर दूसरे कामों में जुट गए हैं।

उ0प्र0 फिल्म नीति (2023) एवं फिल्मांकन

काशी के विशाल भूभाग में फिल्म निर्माण की विपुल सांस्कृतिक धरोहर मौजूद हैं। यहां की खान-पान, परिधान, नृत्य, लोकगीत, वाद्ययंत्र, संगीत, लोक कलाएं, ललित कलाएं, शास्त्रीय कलाओं आदि की विशिष्ट प्राचीन स्थापित परम्पराएं रही हैं जिसे पर्दे के माध्यम से विश्व पटल पर लाने का कार्य किया जाना श्रेयस्कर होगा। आजकल स्मार्ट फोन की कम कीमत, डाटा सस्ता होने के कारण मोबाइल पर फिल्में भारी संख्या में देखी जाती है।[21] उत्तर प्रदेश से जुड़े शानदार स्क्रिप्ट, लोकेशन और सरकार की मदद ने फिल्म उद्योग को उत्तर प्रदेश में नई पहचान दी है। भोजपुरी फिल्मों की एक राह में एक बहुत बड़ी बाधा है कि भोजपुरी प्रदेशों में फिल्म शूटिंग की कोई सुविधा नहीं है फिल्में अपने लिए ढांचा का सुविधाएं जुटाने में नाकामयाब रही हैं ।[22] वाराणसी के घाट और गलियों को शूटिंग लोकेशन बनाया जा रहा है। उत्तर प्रदेश राज्य में निर्मित एवं प्रदर्शित होने वाली फिल्मों को राज्य कर में छूट, अनुदान, फिल्म पुरस्कार/सम्मान, क्षेत्रीय भाषाओं में बनने वाली फिल्मों को प्रोत्साहन हेतु एकल खिड़की व्यवस्था (सिंगल विंडो सिस्टम) लागू किया गया है। फिल्म निर्माण हेतु स्टूडियो/लैब्स के खोले जाने पर अनुदान एवं कई प्रकार की सहूलियत दी जा रही है। *नई फिल्म नीति (2023)* प्रदेश में बन्द पड़े सिनेमाघरों को पुनः संचालित कराने, पुनर्निर्माण/रिमाडलिंग करवाने, मल्टीप्लेक्स खुलवाने, एकल सिनेमाघरों के निर्माण एवं संचालित सिनेमाघरों के उच्चीकरण का प्रावधान करती है।[23] क्षेत्रीय भाषाओं में फिल्म निर्माण को सक्रिय रूप से प्रोत्साहित करने से एक सशक्त क्षेत्रीय एवं आंचलिक फिल्म उद्योग का विकास होगा तथा स्थानीय स्तर पर पर्याप्त संख्या में रोजगार के अवसर सृजित होंगे और प्रदेश की स्थानीय संस्कृतियों की छवि आम जनमानस में प्रक्षेपित होगी।

निष्कर्ष

देश की फिल्म संस्कृति ऐसी है जिससे दर्शक किरदार से खुद को जोड़कर देखता है। मध्यम वर्ग के उभार के कारण दक्षिण सिनेमा के विपरीत उत्तर भारतीय सिनेमा की प्रगति हाल ही में बढ़ी है। उत्तर प्रदेश की फिल्म नीति के विविध प्रावधान एवं हाल के कारेबारी माहौल में वाराणसी में फिल्म निर्माण के अनुकूल दशाएं हैं। *ग्लोबल इन्वेटर्स समिट (2023)* द्वारा 40 लाख करोड़ रूपये के निवेश का प्रस्ताव मिला है। जीरो टालरेंस, कानून व्यवस्था, संचार, अवसंरचनात्मक क्षेत्र में तेजी से विकास हुआ है ।[24] फिल्म निर्माण कर अपनी संस्कृति, भाषा, साहित्य को समृद्ध कर सकते हैं। फिल्म हेतु शूटिंग स्थलों की पहचान कर अवसंरचनात्मक विकास किया जा सकता है। वाराणसी की कोठी एवं हवेलियों में देवकीनंदन की हवेली, कश्मीरी मल की हवेली, कंगन की हवेली और काठ की हवेली सहित छोटी हवेलियों को मूल ढांचे में विकसित (हेरिटेज पैलेस) कर फिल्मकारों को शूटिंग के अनुकूल अवसर उपलब्ध कराये जा सकते हैं। गंगा घाटों के संरक्षित सौंदर्यीकरण कर इसके साथ गंगा नदी के सांस्कृतिक, आध्यात्मिक महत्व आधारित प्रतिनिधि विषयवस्तु, किरदार गढ़े जायें इस पर व्यापक एवं गहन शोध की आवश्यकता है। भारतीय मूल्यों के अनुरूप सेंसरबोर्ड को नये मानक स्थापित करने होंगे।

सन्दर्भ सूची

1. ए0 के0 सिंह, *भोजपुरी सिनेमा में काशी को योगदान*, डिपा0 आफ जर्नलिज्म, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, 2009, पृ0 6
2. A. Ghosh, *Cinema Bhojpuri*, Penguin Books, New Delhi, 2010, P.5

3. एस0 श्रीवास्तव, *समय, सिनेमा और इतिहास- हिन्दी सिनेमा के सौ साल*, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली, 2014, पृ0 4
4. R. S. Singh, & S. Singh, *Landscape Culture and Cinema: A Study in Film Geography*, Ind. J. of Landscape Systems and Ecological Studies 42, 2 Dec. 2019, P. 89- 101.
5. डी0 मोतीचंद्र, *काशी का इतिहास*, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1962, पृ0 9
6. ए0 के0 सिंह, *पूर्वोद्धृत*, पृ0 115
7. एस0 श्रीवास्तव, *पूर्वोद्धृत,* पृ0 08
8. ए0 के0 सिंह, *पूर्वोद्धृत*, पृ0 115
9. वी0 मुखर्जी, *बना रहे बनारस*, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी , 2021, पृ016
10. एस0 माथुर, *सिने पत्रकारिता*, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर , 2008, पृ0 98
11. वही 104
12. वी0 मुखर्जी, *पूर्वोद्धृत*, पृ0 86
13. एस0 चटर्जी, *सेलुलायड पर महाश्वेता देवी*, द स्टेटमैन, कोलकाता , 2019, 3 अगस्त।
14. वी0 मुखर्जी, *पूर्वोद्धृत*, पृ0 44
15. *सुपर 30 की शूटिंग लोकेशन आपको भी कर देंगी वाराणसी घूमने पर मजबूर*, नवभारत टाइम्स, 2018, सितम्बर 5
16. एन0 सिंह, *भोजपुरी सिनेमा का बढ़ता संसार*, बहुवचन- अन्तर्राष्ट्रीय त्रैमासिक, महात्मा गांधी अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा ,2013, पृ0 256
17. S.Dewan, *Tawaifnama*, (Review By Anna Morcom) Westland publications limited. 2019, P.2
18. एस0 श्रीवास्तव, *पूर्वोद्धृत*,पृ0 138
19. एच0 शर्मा, *दालमंडी में चंपाबाई की सुर-ताल और अदब की वो महफिल जहां जाने को बेचैन था पूरा बनारस*, टीवी नाइन हिन्दी, 2021, 24 जुलाई।
20. एस0 श्रीवास्तव, *पूर्वोद्धृत*, पृ0 57
21. पी0 कुमार, एवं पी0 के0 पाण्डेय, *भारत में क्षेत्रीय सिनेमा*, जर्नल आफ इमर्जिंग टेक्नोलाजी एंड इनोवेटिव रिसर्च, 2020, पृ0 89-96
22. एन0 सिंह, *पूर्वोद्धृत*, पृ0 259
23. *उत्तर प्रदेश फिल्म नीति* , प्रमुख सचिव, पत्र सूचना अनुभाग-2, लखनऊ, दिनांक 09 मार्च, 2023, संख्या-04/2023/136/उन्नीस-2-2023-22/2013।
24. *India's GDP UP 2nd largest Economy: Report*, Times of India, December 18, 2013

हिंदी की जगत जननीः रत्नगर्भाकाशी

डॉ. सीमा शर्मा*

"अयोध्या मथुरा माया काशी काँचि अवन्तिका
पुरी द्वारावाती चैव सतैता मोक्षदायका
प्रयांग पाटली पुत्र विजयानगर पुरीम्
इंद्र प्रस्थ गया चैव पत्यूषे प्रत्यहं स्मरेत"

संसार के सबसे पुराने नगरों में से एक जिसकी गणना सात पवित्र पुरियों में होती है। कहा जाता है कि यह शंकर के त्रिशूल पर बसी है और प्रलय में भी इसका नाश नहीं होता। वरुणा और असि नामक नदियों के बीच में बसी होने के कारण इसे वाराणसी भी कहते है।

संसार के इतिहास में जितनी अधिक लोकप्रियता काशी को प्राप्त है। उतनी किसी भी नगर को नहीं अपने अस्तित्वकाल से ही सनातनियों को पवित्र तीर्थ स्थान तथा उसकी सम्पूर्ण धार्मिक भावनाओं का केन्द्र रही है।
बौद्धो और जैनो के लिए भी बड़े महत्वपूर्ण स्थान है। भगवान बुद्ध ने बोधगया में ज्ञान प्राप्त होने पर सर्वप्रथम यही उसका उपदेश किया। जैनियों के तीन तीर्थकरों का जन्म यही हुआ था।
मानक हिंदीकोश के अनुसार, " उत्तर भारत की एक प्रसिद्ध नगरी जो भारतीय संस्कृति का प्रधान केन्द्र है और जिसे आज काल बनारस या वाराणसी कहते है।"[1]
काशी का विश्वनाथ मंदिर उत्तर भारत के शैव मन्दिरों में सर्वोच्च स्थान रखता है। काशी आध्यात्मिक दृष्टि से भारतीय जनमानस की सदैव पथ प्रदर्शक रही है। वही गौरव इसे राष्ट्र भाषा हिन्दी के संदर्भ में भी मिला।

हिंदी जिसके सम्पूर्ण साहित्य में न कभी सांप्रदायिकता और न कभी प्रादेशिक क्षद्रुताओं को प्रश्रय मिला। अपितु अपने जन्म से ही हिंदी साहित्य राष्ट्रीय चेतना का सवांहक रहा है वैसे तो देश के आधे से अधिक भूभाग में आच्छादित सभी प्रदेशों से हिंदी के साहित्यकार होते रहे है। किंतु इसी दृष्टि से मूल्यांकन करे तो हम पाते है कि काशी एक मात्र ऐसी रत्नगर्भा वसुंधरा है। जहाँ एक से बढ़ कर एक हिन्दी के सशक्त हस्ताक्षर जन्मे। जिन्होनें हिन्दी को एक नई दिशा व दशा प्रदान की।

इस दृष्टि से देखे तो सर्वप्रथम नाम कबीर का आता है। सन् 1398 ई. में काशी की धरती पर जन्में कबीरदास सन्त मत के प्रवर्तक और सर्वश्रेष्ठ कवि है। कबीर का मुख्य विषय ज्ञानपूर्ण भक्ति है। यह भक्ति निर्गुण सत्ता के प्रति है, जिन्हें कबीर साहब राम, सत्य, पुरुष, अलख निरंजन, स्वामी और शून्य आदि नामों से पुकारते है।

भक्ति भाव के आन्दोलन द्वारा भगवान के सामने सम भाव का आदेश तो रामानन्द ने दिया था, पर जाति विभाग और ऊँच-नीच के एकीकरण का साहस कबीर से पूर्व किसी ने नहीं दिया। कबीर स्वाधीन विचार के व्यक्ति थे। कबीर के सिवा काशी के हिन्द क्षेत्र में कौन साहस कर सकता था कि यह पूछे कि जो तुम ब्राह्मननि –ज्याये, और राह तुम काहे न आये" उनका कथन था कि जब काली और सफेद गाय के दूध में कोई अन्तर नहीं तो फिर उस परमात्मा की सृष्टि के जीवों में क्या अंतर है। कबीरदास की यह समदृष्टि उनको सार्वभौमिक बना देती है।

"आचार्य डॉ. हजारी प्रसाद के शब्दों में कह सकते है'कबीरदास ऐसे ही मिलनबिन्दु पर खड़े थे जहाँ से एक ओर हिन्दुत्व निकल जाता है और दूसरी ओर मुसलमानत्व जहाँ एक और ज्ञान निकल जाता है, दूसरी ओर अशिक्षा, जहाँ पर एक ओर योग मार्ग निकल जाता है, दूसरी ओर भक्तिमार्ग, जहाँ से एक तरफ निर्गुण भावना निकल जाती है दूसरी ओर सगुणसाधना उसी प्रशस्त चौरास्ते पर वे खड़े थे। वे दोनों ओर देख सकते थे और परस्पर विरुद्ध दिशा में गए हुए मार्गों के दोष गुण उन्हें स्पष्ट दिखाई दे जाते थे। यह कबीरदास का भगवद्ध सौभाग्य था। उन्होंने इसका खूब उपयोग भी किया।"[2]

* हिन्दी प्रवक्ता, डी.ए.वी कालेज, अमृतसर।

कबीर के समकालीन रामानन्द के शिष्यों में से एक कबीर के गुरु भाई **संत रविदास** भी काशी के समीप मंडूर ग्राम में जन्मे थे, जिसका प्राचीन नाम मंडुवा हीह है और जो काशी छावनी से पश्चिम की ओर लगभग तीन चार किलोमीटर की दूरी पर जी.टी. रोड पर स्थित है।

भगवद् भक्ति के उच्चतम शिखर पर आरुढ होने वाले महान् कर्मयोगी भक्त संत रविदास के हृदय में प्राणिमात्र के प्रति दया और शोषितों के लिए स्नेह था। रविदास जी ने जीवन भर काशी में रहकर धर्म प्रचार एवं समाज सुधार का कार्य किया।

स्वर्गीय बाबू जगजीवन राम ने संत रविदास पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है, आम जनता की वाणी जिन्होंने वर्ण-व्यवस्था के मिथ्यात्व को जन्म पर आधारित जाति प्रथा की असंगति को, जनता में उदघाटित किया। इनमें से अधिकांश सन्त उस समुदाय से उभरे जो समुदाय हिन्दु धर्म और समाज की परिधि के बाहर रखा गया था, या ठीक परिधि पर था या परिधि के भीतरी छोर पर अर्थात बहिष्कृत शूद्र, अतिशूद्र या शूद म्लेच्छ या चाण्डाल, दास सेवक या शिल्पी। इसी काल में काशी में उस चमार के घर में रविदास का प्रादुर्भाव हुआ। चमड़े का काम करते हुए रविदास ने साधना में योग और समाधि की शिक्षा पाई। अन्तर चक्षु खुल गया, वाणी निर्मल हो गई। मनुष्य के ईश्वरत्व की परख पैनी बनी, फिर क्या था। वाणी मुखर हुई, अमरशाश्वत गीत फूट पडे।

कह रैदास मेट आपा पर तब वह ठौर ही पावेगा

काशी परम्परागत वर्ण व्यवस्था का गढ नीच ऊँच, छोटे बड़े का गढ़। भला वहा समता की गंगाबहाने वाले का निर्वाह कैसे होता। रविदास के सामने संकट आए वे ही संकट जो किसी भी प्रचलित संस्थान को चुनौती देने वाले के सामने आया करते है। पर वह झुकने वाला कहां था, वह तो पी चुका था शाश्वत अनुभव का जीवन घूंटी जिसे रसना पर बसा दिया था।
सर्वधर्म समभाव या सभी धर्मों के खोखलेपन पर भी रविदास मौन नहीं रह सके। कह बैठे

रविदास हमारी राम जोई, सोई है रहमान
काबा काशी जानी यही, दोनों एक समान।"[3]

उनकी अमूल्य वाणी, विचार, चिंतन रैदासबानी रैदास जी की साखी तथा पदए रैदास के पद, प्रह्लादलीला में उपलब्ध है।

महाकवि रामभक्त शिरोमणि **तुलसीदास** राजनीति विशारद, धर्मसंस्थापक, समाज सुधारक और युग निर्माता है। तुलसीदास और भारतीयता पर्यायवाची शब्द है। उनकी वाणी में वह ओज वह प्रभाव और वह प्रेरणाशक्ति है कि वे हमारे जीवन के कण कण में व्याप्त है। राजा से रंक तक और झोपड़ी से लेकर प्रसादो तक सर्वत्र राम नाम की शीतल छाया में हिन्दू हृदय अपने जीवन की निराशा, असफलता और सामर्थ्य हीनता खोकर नवजीवन का अभूतपूर्व शक्ति पाता है।

इनका जन्मस्थल सोरो शूकरक्षेत्र जनपदकांसगज माना जाता है। इनकी माता का नाम तुलसी और पिता का आत्माराम दुबे था। कहा जाता है कि मूल नक्षत्र में उत्पन्न होने के कारण माता पिता ने इन्हें त्याग दिया और और बचपन में इन्हें दर दर की ठोकरे खानी पड़ी।

''जाति के, सुजाति के कुजाति के पेटागिबस
खाए टूक सबके बिदित बात दुनी सो
मानस वचन काय किए पाप सति भाय''[4]

रत्नावली द्वारा मिली फटकार विराग में परिवर्तित हो गई। परिणातमः तुलसीदास को नश्वरता का आभास हुआ और उसके बाद ये अविलम्ब काशी चले गये। इनके जीवन का अधिकांश काशी में व्यतीत हुआ काशी की प्रशस्ति में इन्होंने लिखा है।

"मुक्ति जनम माहि जानि ज्ञान खानि अधहानि कर
जहॅबस संभु भवानि, सो कासी सेज्ञय कस न

(मानस, किष्किंधा कांड)

आंरभ में काशी में इनका कड़ा विरोध हुआ। कहा जाता है कि पहले प्रह्लाद घाट पर रहते थे। विनय पत्रिका की रचना इन्होंने गोपाल मंदिर के पिछवाड़े एक छोटे से कमरे में की। वहाँ एक पट अंग्रेजी में लगा हुआ है लेकिन बाद में उन्हें इन स्थानों को छोड़ना पड़ा और अस्सी (तुलसीघाट) पर जमना पड़ा।"[5]

लोकनायक' समन्वयकारी तुलसीदास के लेखन में भारतवर्ष का भूत, वर्तमान और भविष्य झांकता है, उनकी कलम से रामलला नहछू रामचरितमानस, विनयपत्रिका, कवितावली और दोहावली जैसी अमर कृतियों से निकली।

भारतीय विचारों, और आदर्शों के प्रतिष्ठापक गोस्वामी तुलसीदास ने अपने युग के पतन को बड़ी सूक्ष्मता से देखा। ज्ञान और भक्ति के बीच चौड़ी खाई थी। भोग, विलास, चाटुकारिता गरीबी का बोलबाला था। ईश्वर के निर्गुण सगुण रुप पर मतभेद था। उनके युग के समाज के आगे कोई ऊँचा आदर्श नहीं था। यहाँ तक शैव और वैष्णवों के बीच बड़ा विकराल संघर्ष था जिसे तुलसीदास ने स्वंय भोगा। काशी के शैवों ने उनके साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया। सम्भवतः राम भक्त तुलसीदास का बढ़ा हुआ और बढ़ता हुआ सम्मान ही उनके दुःख का मूल कारण था। राजा राम के दास होकर भी वे शिव जी का सुयश सुन कर काशी चले गए थे। पर शिव के भक्तों ने उनको इतना कष्ट दिया कि नम्रता और क्षमा की मूर्ति तुलसीदास की मनोव्यथा असहनीय हो उठी और उन्होंने इसकी शिकायत शिवजी से की

देवसरि सेवौ वामदेव गॉवरावरेही
नाम राम ही के माँपि उपर भरत हौ
दीबै जोग तुलसी न लेत काहू को कछुक
लिखी न भलाई भाल पोच नकरत हौ
एते पर हूँ जो कोऊ रावरो ह्वै जोरकरै
ताको जोर देवे दीन द्वारे गुदरत हौ
पाइकै उराहनों उराहनों न दीजै मोहि
काल कला काशीनाथ कहे निबरत हौ (कवितावली)[6]

तुलसीदास ने आत्मकल्याण की साधना भी केवल अपने तक ही सीमित नहीं रखी । संसार को उस सहज पथ का पता भी बताया रामचरितमानस के रूप में। शैव वैष्णव शाक्त का समन्वय, ज्ञानकर्म भक्ति का समन्वय, वैराग्य और गृहस्थ का समन्वय, निर्गुण और सगुण का समन्वय एवं लोकनायक, युगांतकारी, युगस्रष्टा बनकर इतनी कुशलता से बुना है कि युगों युगों तक भारतीय विशेष कर सनातन संस्कृति का जीविंत दस्तावेज बनकर सदैव भारतीय को प्रेरित करेगा। पारिवारिक जीवन की ऐसी आदर्श प्रतिष्ठा तुलसीदास ने कि भारत का अन्य कोई साहित्यकार नहीं कर सका।

मानस की रचना तुलसीदास ने काशी में की। गोस्वामी तुलसीदास ने काशी के रोम रोम में राम को बसा दिया है। यहाँ तक काशी की धरती पर हनुमान जी ने तुलसीदास को दर्शन दिये है। आज वहाँ भव्य मंदिर है। जीवन के अंतिम दिनों में अपनी भाजुओं के असहनीय दर्द की अवस्था में संकटमोचन महाराज के समक्ष हनुमान बाहुक की रचना की। यहाँ तक कि सं. 1680 ई. में काशी में उन्होंने अंतिम सांस ली।

संवत सोरह सो असी, असीगंग के तीर
सावन कृस्ना तजि सनि तुलसी तज्यो शरीर"

3 फरवरी 1824 को काशी की धरती पर जन्में **राजाशिवप्रसाद्धसितारेहिन्द** एक ऐसी विभूति का नाम हैं। जिनके प्रयत्नों से स्कूलों में हिन्दी को प्रवेश मिला। उस समय हिन्दी की पाठ्य पुस्तकों का बहुत अभाव था। उन्होंने स्वयं इस दिशा में प्रयत्न किया और दूसरे से भी लिखवाया। 1845 ई. में आपने 'बनारस अखबार, नामक एक हिन्दी पत्र निकाला।

राजशाही वातावरण में राजाओं तक सीमित कलम व कलमकार अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् जब शाही दरबारों से बाहर निकले तो कविता आम आदमी के सुख दुःख से जुड़ने लगी। विदेशी पराधीनता के प्रतिकूल भारत वासियों ने 1857 ई. में क्रांति का बिगुल अवश्य बजाया। लेकिन कई कारणों से वह असफल रहा, अंग्रेजी पराधीनता के आगे खड़ग भले ही पराजित हो गयी लेकिन कलम कदापि नहीं।

ऐसी विकट परिस्थितियों में देशवासियों को भारत की दुर्दशा की ओर तथा अपने प्राचीन गौरव की ओर सचेत करने का महान् कार्य काशी की धरती पर 9 सितंबर 1850 को बाबू गोपाल चन्द्र के घर जन्में **भारतेन्दुहरिश्चन्द्र** ने किया।

आधुनिक हिंदी के जनक **भारतेन्दुहरिश्चन्द्र** ने अपनी कलम के बल पर भारतीयता का अमर राग गया। गुलामी की जंजीरों में जकड़े भारत में जन्में हरिश्चन्द्र ने केवल लिखने के नाम पर मोटी मोटी पोथियाँ नहीं रची।

अपितु एक युग द्रष्टा की भांति अपने समय का सूक्ष्मता से निरीक्षण करते हुये पायाकि अंग्रेजी सता के कारण भारत का अस्तित्त्व समाप्त हो रहा है और इडिया जन्म ले रहा है। भाषाई दृष्टि से शासन तंत्र में अंग्रेजी की प्रयोग हो रहा है। पद लोलुपता और उपाधियों की भूख बड़ी तेजी से समाज में पनप रही है। रायबहादुर सर की उपाधि पाये बुद्धिजीवियों का समाज में काफी बोलबाला हो रहा था। ऐसी भयावह परिस्थितियों में भारत को पुनः जीवित करने हेतु हरिश्चन्द्र ने कलम को अपनाया। उनके लेखन ने उन्हें इतना, प्रसिद्ध कर दिया कि 1880 ई. में काशी के विद्वानों ने इन्हें भारतेन्दु" की उपाधि दी।

भारतेन्दु युग का साहित्यजनवादी साहित्य है क्योंकि वह पुराने स्थापित ढांचे में सुधार करना चाहते थे। भारतेन्दु स्वदेशी आन्दोलन के ही अग्रदूत नहीं थे, वह समाज सुधारकों में भी प्रमुख थे। स्त्री शिक्षा, विधवा विवाह, विदेश यात्रा आदि के वह समर्थक थे। उनकी रचनाओं में अंग्रेजीशासन का विरोध, स्वतंत्रता के लिए उद्दाम आकाक्षा और जातीय भावबोध की झलक मिलती है।

उन्होंने स्वयं लिखा और अनेक लेखकों को प्रेरणा दी, प्रश्रय दिया और व्यावहारिक रुप से उन्हें प्रोत्साहित किया।

इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि काशी की धरती की उपज भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आधुनिक युग के प्रथम हिन्दी साहित्यिक थे, जिनकी निजी कृतियों और प्रेरणा से हिन्दी साहित्य की सभी बिधाएँ मुखरित हो उठी। वह पत्रकार, नाटककार, कवि, आलोचक निबंधकार सभी कुछ थे। उन्ही के रचनाओं और विचारों के फलस्वरुप साहित्य में नवयुग का उदय हुआ और हिन्दी साहित्य सृजन के मार्ग को अपना सकी।

ग्यारह वर्ष की आयु में ब्रज में कविता लिखने वो **"अंबिकादत्तव्यास"** प्रतिभा और प्रकाण्ड पांडित्य की दृष्टि से अपने समकालीन साहित्यकारों में इतना गौरवमयी स्थान रखते थे जिसकी दूसरी उदाहरण उपलब्ध नहीं। यूँ तो व्यास जी का जन्म जयपुर में हुआ। लेकिन इनके पूवर्ज बनारस में आकर बस गये।

इनकी कविता का स्तर इतना ऊचाँ था कि भारतेन्दु के आग्रह पर बारहं वर्ष की आयु में "सुकवि" की उपाधि प्राप्त हो गयी थी।

हिन्दी पत्रकारिता के प्रांरभिक चरण में "पीयष प्रवाह और वैष्णव पत्रिका" नाम से दो मासिक पत्र निकाले और स्वयं ही उनका संपादन किया। इन्होंने 75 के आसपास ग्रंथ लिखे। छत्रपति शिवाजी के जीवन पर "शिवराज विजयम" नामक गद्य काव्य की रचना की जो उपन्यास की शैली में है। एक रचना जो इन्होंने भारतेन्दु जी के आग्रह पर लिखी थी, नाम था गोसंकट नाटक भारत में गोवध के विरुद्ध हिन्दू समाज में जो अंसतोष था उसे दर्शाने के लिए एक विलक्षण साहित्यिक के रुप में अंबिकादत्त व्यास का स्थान काफी ऊचाँ है।

जगन्नाथ रत्नाकर का जन्म काशी के एक संपन्न घराने में हुआ। आप उर्दू, फारसी, हिंदी और अंग्रेजी, भाषाओं के विशेषज्ञ है। आप अयोध्या नरेश तथा रानी के प्राईवेट सेक्रेटरी भी रहे। रत्नाकर जी ने साहित्य सुधानिधि और सरस्वती पत्रिकाओं के संपादन किया। साथ ही साथ रसिक मंडल प्रयाग की स्थापना एवं काशी नागरी प्रचारिणी सभा के विकास में महत्वपूवर्ण योगयान दिया। रत्नाकर जी चौथी ओरिएंटल कांफ्रेस के हिंदी विभाग के सभापति रहे थे। राजनीतिक दृष्टि से वे सर्वतोमुखी क्रांति के समर्थक थे और राष्ट्रीय गौरव के उन्नायक थे। उनकी राष्ट्रीयता जातीय, भावना से ओत प्रोत है। सामाजिक कुरीतियों का उन्मूलन करके स्वस्थ परंपराओं का पोषण उनका साहित्यक प्रतिमान था।

हिडोला, समालोचनादर्श, हरिश्चंद्र, कलकाशी, श्रृंगार लहरी, प्रकीर्ण पद्यावली, रत्नाष्टक तथा वीराष्टक, गंगावतरण, उद्रव शतक आदि इनकी मौलिक कृतियाँ है। सुधासार, कविकुलकंठाभरण हिततंरगिणी, सुजान सागर, बिहारी रत्नाकर, सूरसागर इनके संपादित ग्रंथ है।

स्वतंत्रता सेनानी, राजनेता, देशप्रेमी, हिन्दी समर्थक तथा हिन्दी लेखक, डॉ. भगवान दास का जन्म 12 जनवरी 1869 ई. की बनारस में हुआ। उत्तर प्रदेश के विभिन्न जिलों में मजिस्ट्रेट के रुप में सरकारी सेवा में कार्यरत रहे। इनके अध्ययन और लेखन की परिधि इतनी व्यापक थी कि समाजशास्त्र दर्शन शास्त्र मनोविज्ञान विषयों पर इनके ग्रन्थ हिन्दी में इन विषयों की सर्वप्रथम रचनाएँ थी। इन्होंने असहयोग कार्यक्रम में सक्रिय भाग लिया। कई वर्ष तक वह कांग्रेस के टिकट पर केन्द्रीय विधान परिषद् के सदस्य रहे।

सन् 1899 से 1914 तक सेट्रंल हिंदू कालेज के संस्थापक सदस्य और अवैतनिक मंत्री रहे। 1914 में यह कालेज काशी के रुप में परिणत कर दिया गया। डॉ. भगवानदास बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के संस्थापक सदस्यों में से एक थे।

भगवान दास जी जीवन भर छात्र, अनुसंधान कर्ता और लेखक रहे। आपने पंतजलि के योग सूत्रों का एक संयोजन शब्दकोश थियोसोफी के बारे में कुछ सत्य, आधुनिक समस्याओं के प्राचीन समाधान, थियोसोफिकल एनी बेसेंट और बदलती दुनिया, सांप्रदायिकता और थियोसोफी द्वारा इसका ईलाज या आध्यात्मिक स्वास्थ्य महिला शिक्षा के भारतीय आदर्श, कृष्ण अवतारों के सिद्धांत पर एक अध्ययन महात्मा गांधी का ऐतिहासिक मुकदमा इत्यादि लिखी। राजनीतिक सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक विषयों पर अपने जमकर लिखा।

भगवानदास जी काशी में जन्मा वो गौरव है जो भारत रत्न प्राप्त करने वाले दूसरे व्यक्ति थे।

यूँ तो रामनारायण मिश्र का जन्म 1873 में अमृतसर में हुआ। लेकिन इनके माता-पिता बनारस आ गये और आकर यहीं के हो गये। बनारस के क्वींस कॉलेज में शिक्षा के दौरान ही श्यामसुन्दर दास और ठाकुर शिवकुमार सिंह के साथ मिलकर नागरी प्रचारिणी सभा स्थापना की। शिक्षा पूरी करने के बाद उन्होंने शिक्षा विभाग में सब डिप्टी इंस्पैक्टर तथा डिप्टी इंसपेक्टर के पद पर काम किया। आपने महादेव गोविन्द रानाडे की जीवनी, जापान का इतिहास, भारतीय शिष्टाचार शीर्षक से पुस्तके लिखी। डिप्टी इंसपेक्टर के पद पर काम करते हुए स्कूलों में प्रार्थनाए शुरु की।

14 जुलाई 1875 ई को काशी की धरती पर एक ऐसी दिग्गज विभूति ने जन्म लिया जिसने विश्वविद्यालयों में हिन्दी की पढ़ाई के लिए पुस्तके तैयार करने में, काशी नागरी प्रचारिणी सभा के संस्थापक के रूप में, हिन्दी की महान पत्रिकाएं नागरी प्रचारिणी पत्रिका सरस्वती पत्रिका के सस्थापक रूप में, काशी हिंदू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के संस्थापक के रूप में, हिन्दी वैज्ञानिक कोश के निर्माण में ठोस महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जिनकी हिन्दी सेवा संदर्भ में राष्ट्रीय कवि मैथिली शरण गुप्त ने लिखा है

मातृभाषा के हुए जो विगत वर्ष पचास
नाम उनका एक ही श्यामसुंदर दास

बांग्ला उपन्यासकार शरतचंद्र चट्टोपाध्याय के उपन्यास सम्राट के विशेषण से सम्मानित मुंशीप्रेमचंद का जन्म 31 जुलाई 1880 ई. की बनारस के लमही गांव में हुआ। हिन्दी कहानी तथा उपन्यास के क्षेत्र में 1918 से 1936 ई. तक के कालखण्ड को प्रेमचन्दयुग कहा जाता है। आपने 300 कहानियाँ तथा डेढ दर्जन उपन्यास लिखे। प्रेमचन्द का साहित्य सामाजिक सांस्कृतिक दस्तावेज है। इसमें उस दौर के समाज सुधार आन्दोलनों, स्वाधीनता संग्राम तथा प्रगतिवादी आन्दोलनों के सामाजिक प्रभावों को स्पष्ट चित्रण है। आपके दहेज, अनमेल विवाह, पराधीनता, लगान, छुआछूत, जातिभेद, विधवा विवाह, आधुनिकता, स्त्री पुरुष समानता, आदि उस दौर की सभी प्रमुख समस्याओं को केन्द्र में रख कर लिखा। हिन्दी कहानी तथा उपन्यास विधा को शीर्षस्थ तक ले जाने श्रेय उन्हीं को जाता है।

प्रांरभ में आप नवाब राय के नाम से उर्दू में लिखते थे। 1908 ई. में उनका पहला कहानी संग्रह "सोजे वतन" प्रकाशित हुआ। देश-भक्ति की भावना से ओतप्रोत इस संग्रह को अंग्रेज सरकार ने प्रतिबधित कर दिया और इसकी सभी प्रतियाँ जब्त कर ली और इसके लेखक नवाब राय को भविष्य में लेखन न करने की चेतावनी दी। उनके मित्र दयानारायण निगम की प्रेरणा ने उर्दू भाषी लेखक नवाब राय को हिंदी लेखक मुंशी प्रेमचन्द बना दिया।

इन्होंने अपने निजीजीवन में काफी संघर्ष, निर्धनता देखी। पिता द्वारा कृषक का जीवन त्यागे जाने और मध्यवर्ग का जीवन बिताने पर इनकी रचनाओं में मध्यवर्ग का स्वर काफी प्रमुख है। एक तरह से इसी वर्ग का जीवन इनके उपन्यासों की रीढ़ बना है। तभी इनकी वैचारिक यात्रा आदर्श से यथार्थ की ओर उन्मुख है।

प्रेमचन्द की कलम से सेवासदन प्रेमाश्रम रंगभूमि, निर्मला, गबन, कर्मभूमि, गोदान आदि डेढ़ दर्जन उपन्यास निकले। तीनशतक से अधिक कहानियाँ लिखी जिनका संग्रह मानसरोवर नाम से आँठ भागें में प्रकाशित हो चुका है। कर्बला नाम आपका प्रसिद्ध नाटक है मुंशी जी ने अपने दौर की सभी प्रमुख उर्दू और हिन्दी पत्रिकाओं जमाना, सरस्वती, माधुरी, मर्यादा, चाँद, सुधा आदि में लिखा। हिन्दी समाचार पत्र जागरण तथा साहित्यिक पत्रिका हंस का संपादन और प्रकाशन भी किया।

लमही की धरती पर जन्में प्रेमचंद की तुलना गोर्की, टाल्सटाय, अनातोले जैसे विदेशी साहित्यकारों से होती है।

इसमें कोई दो राय नही है कि क्या किसान क्या मजदूर क्या मिल मालिक, क्या महानगर की बड़ी चिमनियों के धुएँ में सिसकता कारीगर, क्या वकील क्या प्रोफेसर क्या डाक्टर क्या चोरडाकू क्या देशभक्त सभी को प्रेमचन्द ने बड़ी संजीवता, जीवितंता तथा वाणी दी है।

हिंदी के प्रथम चरण के कहानीकारों में **बंगमहिला** का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। 1882 ई. में वाराणसी में जन्मी बंगमहिला उर्फ राजेन्द्र बाला घोष के पूर्वज बंगाल से आकर वाराणसी में बस गए थे। इसके पिता का नाम रामप्रसन्न घोष तथा माता जी का नाम नीदरवासिनी घोष था।

मूलतः हिन्दी भाषी न होते हुए भी आपको हिन्दी से अनुन्य अनुराग था। 1904 ई. से 1917 ई. तक बंग महिला की रचनाएँ आनंद कांदीबिनी, भारतेन्दु, सरस्वती, समालोचक स्वदेश बांधव, स्त्री आदि प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही। इनका विवाह मात्र ग्यारह वर्ष की आयु में हो गया। इन्होंने जीवन भर बाल विवाह, पर्दा प्रथा के विरुद्ध लिखा। स्त्री शिक्षा का समर्थन किया। बंग महिला ने अपने लेखन में हर उस कुरीतिका विरोध किया, जिसने औरत को मानसिक, शरीरिक रुप से पराधीन बना कर रखा। बंगमहिला उन शिक्षित पतियों को भी कटघरे में खड़ा करती है जो अपनी पत्नी को शिक्षा का अवसर प्रदान नहीं करते। स्त्री मुक्ति के प्रश्न को अपने लेखन व चिंतन में ढाल कर बंग महिला ने जितना भी लिखा। उससे पाठक प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता, भले ही यह चिंतन अपने आंरभिक स्तर में था।

नारी मुक्ति के साथ-साथ देश भक्ति भी आपके लेखन में थी। चंद्रदेव से मेरी बाते खत की शैली में लिखी गई इस कहानी में बेहद साहसिक तरीके से लार्ड कर्जन पर उसकी विभाजनकारी नीतियों पर व्यंग्य किया। इनकी प्रमुख कहानी दुलाई वाली है जो 1907 ई. में सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित हुई थीं। चंद्रदेव से मेरी बाते (1904 ई.) कुंभ में छोटी बहु (1906 ई.) दुलाई वाली (1907 ई.) भाई-बहन (1908 ई.) दलिया उनकी कृतियॉ है।

काशी की उपज बंग महिला हिन्दी नवजागरण की पहले प्रचण्ड धार वाली लेखिका थी।

छायावाद के आधार स्तंभ हिन्दी कवि, नाटककार, कहानीकार उपन्यासकार तथा निबंध लेखक जयशंकर भी काशी की देन है। इनके पिता बाबू देवी प्रसाद साहू सुंघनी के व्यापारी थे। यू तो जयशंकर संस्कृत, हिंदी बंगला, अंग्रेजी भाषाओं के ज्ञाता थे। लेकिन हिंदी को इनकी देन अमिट है। प्रसाद जी की प्रांरभिक शिक्षा काशी में कवीस कालेज में हुई थी।

इन्होंने भारत के स्वर्णिमअतीत को इस स्तरतक आत्मसात् कर लिया था कि इनका सम्पूर्ण साहित्य सांस्कृतिक पीठिका पर प्रतिष्ठित है।

प्रसाद जी बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न थे। आसूँ, लहर कामायनी जैसे काव्य स्कंद गुप्त चंद्रगुप्त अजातशत्रु धुरवस्वमिनी आदि नाटक कंकाल और तितली जैसे उपन्यास अनेक श्रेष्ठ कहानियॉ और गंभीर आलोचनामक निंबध इसके प्रमाण है। अपने गद्य साहित्य में इतिहास और कल्पना का अदभुतसमन्वय जयशंकर ने किया। इनके नाटक ऐतिहासिक है। सभी के कथानक भारतीय इतिहास के गौरवकाल से चुने गये है। प्रसाद के समय भारत पर अंग्रेजी सता की हुकूमत थी और लेखन की मुक्त अभिव्यक्ति कठिन थी। ऐसे में जयशंकर ने अपने अतीत की घटनाओं और ऐतिहासिक पात्रों को वर्तमान की समस्याओं को रेखांकित करने के लिए चुना। अपने समय के राष्ट्रीय आंदोलन को उन्होंने ही ऐसे ही बल प्रदान करने का प्रयत्न किया।

उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री के पद पर सुशोभित रहे कुशल राजनीतिक, बहमुखी प्रतिभा सम्पन्न, हिन्दी समर्थक **बाबूसम्पूर्णानन्द** का जन्म भी 1 जनवरी 1891 ई. को काशी को हुआ। एक अध्यापक लेखक, स्वतंत्रता सेनानी, राजनेता के रुप में आपने हिन्दी के प्रचार प्रसार में बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। विज्ञान विषय में स्नातक होते हुए भी उन्हें आंरभ से ही साहित्यिक लेखक और अध्ययन में गहरी दिलचस्पी थी। पत्र पत्रिकाओं आपने जो बहुसंख्यक लेख लिखे वे भी हिंदी साहित्य की अमूल्य निधि है।

काशी विद्यापीठ से उनका वर्षों तक संबंध रहा। काशी नागरी प्रचारिणी सभा और हिन्दी साहित्य सम्मेलन से लगभग तीस वर्ष से इनका घनिष्ठ संबंध रहा।

हिन्दी की जो सेवा संपूर्णनन्द जी ने की है उसका अन्य उदाहरण मिलना दुर्लभ है।

कहानीकार और **गद्यगीत** लेखक **रायकृष्णदास** ने 13 नवंबर 1892 ई. को काशी में ही जन्म लिया। भारतेंदु हरिश्चन्द से पारिवारिक सम्बन्ध होने के कारण रायसाहब का परिवार साहित्य और कला प्रेमी था, जिसका राय साहब पर

गहन प्रभाव पड़ा राय साहब जयशंकर प्रसाद और मैथिलीशरण गुप्ता से निकट सम्पर्क के कारण आठ वर्ष की अवस्था से ही कविता रचने लगे।

इसका उपनाम सनेही था इन्होंने कविता निबंध गद्यगीत, कहानी, कला इतिहास आदि सभी विषयों पर ग्रन्थों की रचना की। उनका बहुत बड़ा योगदान चित्रकला और मूर्तिकला के क्षेत्र में है। राय कृष्णादास बनारस के मान्य परिवारों में सें एक थे। इन्होंने भारती भण्डार (साहित्य प्रकाशन संस्थान) और भारतीय कला भवन के संस्थापक थे।

काशी के पास ताड़ वृक्षों से घिरे ताड़ या तारगॉव नामक गॉव में 18 जनवरी 1909 ई. को हिन्दी नाट्य साहित्य के प्रसिद्ध समीक्षक **दशरथओझा** का जन्म हुआ। हिन्दी नाटक उद्भव और विकास, प्राचीन भाषा नाट्क आज का नाटक प्रगति और प्रभाव इत्यादि इनकी प्रमुख कृतियाँ है।

रामचंद्र तिवारी जिन्होंने रीतिकालीन हिन्दी कविता और सेनापति, हिन्दी का गद्य साहित्य, मध्ययुगीन काव्य साधना, साहित्य का मूल्यांकन, नाथ योग एक परिचय जैसी साहित्य एवं शोध के क्षेत्र में मील को पत्थर जैसी अमर कृतियाँ प्रदान की उनका जन्म स्थान भी काशी है, उनका जन्म 1924 ई. को हुआ।

हिन्दी में नवगीत विद्या के सशक्त हस्ताक्षरों में से एक **ठाकुरप्रसादसिंह** का जन्म 26 अक्तूबर 1924 ई. को काशी के ईश्वर गंगी मुहल्ले में हुआ। हिन्दी साहित्य जगत को इन्होंने महामानव वंशी और मादल, कुब्जा सुन्दरी, आदिम हिन्दी निबंध और निबंधकार, पुराने घर नये लोग, स्वतंत्र आन्दोलन और बनारस परिए, कठपुतली, गहरे सागर के मोती जैसी कृतियाँ प्रदान की और पत्रकारिता के क्षेत्र में इन्होंने कई पत्र-पत्रिकाओं का संपादन किया।

1959 ई. में प्रकाशित तीसरा सप्तक के प्रमुख कवि **विजयदेवनारायणसाही** भी काशी के कबीर चौरा की उपज है। आप का जन्म 7 अक्तूबर सन् 1924 ई. को हुआ। नयी कविता आंदोलन से इनका काफी जुड़ाव रहा। मछलीघर उनके जीवन काल में प्रकाशित एकमात्र प्रस्तक थी।

साही का सर्वाधिक प्रसिद्ध लम्बा निबंध "लघुमानव के बहाने" हिन्दी कविता पर एक बहस (छायावाद से अज्ञेय तक) इलाहाबाद से प्रकाशित होने वाली पत्रिका नयी कविता के संयुक्तांक 5.6 में छपी, इसके अतिरिक्त साखी (काव्य संग्रह) संवाद तुम से (काव्य संग्रह) आवाज हमारी जाएगी (काव्य संग्रह) जायसी, साहित्य और साहित्यकार का दायित्व, छठवा दशक साहित्य क्यों इनकी कृतियाँ है। हिन्दी साहित्य जगत् में इन्हें नयी कविता आंदोलन के प्रसिद्ध कवि एवं आलोचक के रुप में जाना जाता है।

नामवर सिंह मूर्धन्य आलोचक, सम्पादक, वक्ता भी हिन्दी जगत् को काशी की ही देन है। इनका जन्म 28 जुलाई 1926 ई. को काशी के एक गाँव जीयनपुर में हुआ था। बकलमखुद, हिन्दी के विकास में अपभ्रं का योग, पृथ्वी राज रासो की भाषा, आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियों, कहानी: नयी कहानी, कविता के नये प्रतिमान आपकी प्रसिद्ध आलोचनात्मक कृतियाँ है।

2006 ई. में काशी के नाम आपका पत्र संग्रह प्रकाशित हुआ आपने हिन्दी की प्रसिद्ध पत्रिका ''आलोचना का 1967 से 1990 ई. तक संपादक किया।

समकालीन हिन्दी कविता के महत्वपूर्ण एवं प्रतिष्ठित हस्ताक्षर **सुदामा प्रसाद पांडेय धूमिल,** का जन्म 1 नवंबर **1936** ई. को काशी के खेवलीग्राम में हुआ। वैसे आप पेशे से विद्युत विभाग में अनुदेशक के पद पर थेए लेकिन तब भी आपने हिन्दी काव्य लेखन का कार्य किया। आपकी कविता सामाजिक यथार्थ के विषय पक्षों को रेखांकित करती हुई प्रेरक युवा पीढ़ी का आक्रोश है। प्रत्यज्ञ अनुभव और सीधाबयान धूमिलके काव्य की विशेषता है। भारतीय राजनीति की गिरावट, भ्रष्टाचारी पर चोट करने वाला 1972 ई. में प्रकाशित संसद से सड़क तक'काव्य संग्रह सदा सर्वदा प्रांसगिक है।

नामवर सिंह के **अनुज काशीनाथसिंह** भी काशी के जीयनपुर गाँव में 1 जनवरी 1937 ई. को दुनिया में आये। आपने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से स्नातक परास्नातक (1959 ई.) और पी.एच.डी. 1963 ई. में की। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में 1965 ई. में वही उन्होंने आध्यापन कार्य शुरु किया और हिन्दी साहित्य के प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष के पद पर कार्य करते हुए 1997 ई. में सेवानिवृत हुए।

साठोत्तरी पीढ़ी के दिग्गज रचनाकारों में से एक आपको माना जाता है। नामवर सिंह के जीवन पर केद्रित संस्मरण घर का जोगी जोगड़ा, काशी का अस्सी उपन्यास आपकी लोकप्रिय रचनाएँ है। काशी का अस्सी में काशी के घाट

रंगीन मिजाजी केद्रित है। इसी उपन्यास पर चंद्रकाश द्विवेदी द्वारा फीचर फिल्म मोहल्ला अस्सी, का भी निर्माण किया जा चुका है। इसी उपन्यास पर आधारित एक नाटक काशीनामा, देश और विदेश में भी अनेकों बार खोला जा चुका है, आपके 12 कहानी संग्रह, पाँच उपन्यास भी प्रकाशित हो चुके है।

काशी की उपज, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से शिक्षित हिन्दी की आधुनिक उपन्यासकार, महिला कहानीकार **सूर्यबाला** प्रतिष्ठित रचनाकार है अपने समाज, जीवन, परंपरा एवं आधुनिकता को केन्द्र में रख कर आपने लेखन कार्य किया। इनकी 19 से भी ज्यादा प्रसिद्ध कृतियाँ है।

युवा लेखक कवि आलोचक, अनुवादक, निर्देशक **व्योमेश** भी काशी की ही देन है। इराक पर हुई अमेरिकी ज्यादतियों के बारे में मशहूर अमेरिकी पत्रकार इलियट वाइनबर्गर की किताब व्हाट आई हार्ड अबाडट इराक का हिन्दी अनुवाद किया। प्रकाशित किया। अनुवाद के क्षेत्र में आपकी बड़ी महत्वपूर्ण देन है।

रत्नगर्भा काशी की वंसुधरा दिग्गज रचनाकारों के साथ-साथ **काशीनागरीप्रचारिणीसभा** की भी जननी है। जिसने हिंदी को ना केवल संजाया संवारा भी बल्कि उसे एक स्वरूप भी दिया।

क्वीन्स कालेज वाराणसी के नवी कक्षा के तीन छात्र बाबू श्यामसुंदर दास, पं. रामनारायण मिश्र और शिवकुमार सिंह ने कालेज के छात्रावास के बरामदे में बैठकर अंग्रेजी, उर्दू, फारसी के जमाने में हेय समझी जाने वाली हिन्दी के उत्थान, प्रचार, प्रसार पर विचार विमर्श किया और अपने लक्ष्य को साकार करने के लिए 16 जुलाई 1893 ई. को **काशीनागरीप्रचारिणीसभा** की स्थापना की बाबू के घुड़साल में इसकी बैठक होती थी।

प.सुधाकर द्विवेदी, जार्ज ग्रियर्सन, अम्बिकादत व्यास, चौधरी प्रेमधन ख्याति प्राप्त वो विद्वान है जो पहले ही वर्ष इसके सदस्य बने। हिन्दी के लिए प्रतिकूल वातावरण में सभा ने अल्प समय में ही बड़े ठोस और महत्वपूर्ण कार्य किये। जैसेसभा के ही तत्त्वावधान में हिन्दी विश्वकोश, हिन्दी शब्द सागर तथा पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण हुआ। आर्यभाषा पुस्तकालय का श्री गणेश किया। हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज और संरक्षण के लिये सन् 1900 ई. से सभा ने अन्वेषकों को गाँव-गाँव और नगर-नगर में भेजा। सभा के प्रयत्नों का ही सुफल है कि 1900 ई. से उत्तरप्रदेश के सरकारी कर्मचारियों के लिए हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं का ज्ञान अनिवार्य कर दिया। इसके अतिरिक्त सूर, तुलसी, कबीर जायसी, भिखारीदास, पदमाकर, जसवंत सिंह, मतिराम आदि मुख्य कवियों की ग्रंथावलियाँ प्रकाशित की। इसके अतिरिक्त कचहरी हिंदी कोश, द्विवेदी अभिनंदनग्रंथ, संपूर्णानंद अभिनंदनग्रंथ हिन्दी साहित्य का इतिहास और हिन्दी विश्वकोश आदिग्रंथ भी प्रकाशित किये। जो हिन्दी भाषा, साहित्य व शोध के लिये मील का पत्थर प्रमाणित हुये।

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक पंडित **मदनमोहनमालवीय** ने नागरी प्रचारिणी सभा के सहयोग से 1900 ई. में सरकारी कार्यालयों में हिन्दी का प्रवेश करवाया। सन् 1896 ई. में ब्रिटिश सरकार ने सरकारी दफ्तरों और अदालतों में फारसी अक्षरों की जगह रोमन लिपि लिखने का एक आदेश निकाला। सरकार के इस आदेश का विरोध करने हेतु पंडित मदन मोहन मालवीय ने Court Character and Primary Education N.W. Provinees and Oudh बड़े परिश्रम और लगन से तैयार किया। जिसका हिन्दी अनुवाद श्यामबाबू ने किया। इस लेख में नागरी भाषा को अदालतों में लागू करने के पक्ष में तमाम उदाहरण और दलील पेश की गई थी और यह भी कहा गया था कि पश्चिमोत्तर प्रान्त की अदालतों में नागरी भाषा के लागू न होने से जनता को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है।

2 मार्च 1898 को मदनमोहन मालवीय के नेतृत्व में सत्रह व्यक्तियों के प्रतिनिधि मंडल ने पश्चिमोत्तर प्रांत और अवध के लेफ्टीनेट गर्वनर एंटोनी मैकडानेल को कोर्ट कैरेक्टर एण्ड प्राइमरी एजुकेशन इन नार्थ वेस्टर्न प्रोविन्सेज सौंप दिया।

मालवीय जी की मेहनत रंग लाई। पश्चिमोत्तर प्रांत में कचहरियों प्राइमरी स्कूलों में हिन्दी भाषा के लिए द्वार खोल दिये।

देश भर में काशी, धर्म, साहित्य संस्कृति के क्षेत्र में प्रतिनिधि करने वाला ऐसा स्थल है, जो पूरे राष्ट्र के लिए प्रेरणा को स्रोत है काशी को केन्द्र बनाकर नारी चेतना को जाग्रत करते हुये पंजाब की धरती पर जन्में श्रद्धाराम फिल्लौरी ने 1877 ई. में **भाग्यवती** उपन्यास की रचना की। जिसमें उन्होंने काशी के एक पंडित उमादत की बेटी **भाग्यवती** के किरदार

के माध्यम से बाल-विवाह पर जबरदस्त चोट की। विधवा विवाह का पक्ष लिया। नारी शिक्षा का समर्थन किया तथा अन्ध विश्वास पर व्यंग्य किये। इसे पंजाब (स्वतंत्रता पूर्व संयुक्त पंजाब) सहित देश के कई राज्यों के स्कूलों में कई सालों तक पढ़ाया जाता रहा है।

इसी प्रकार **काशी नाथ सिंह** के**'घर का जोगी जोगड़ा** में काशी के घाट गली मुहल्लों का उल्लेख मिलता है।

काशी के इसी महत्व को स्वीकारते हुये युवा कवि गोलेन्द्र पटेल अपनी कविता **कठौती और करबा** में कहते है

रैदास की कठौती और कबीर के करघे के बीच
तुलसी का दुख एक सेतु की तरह है
जिस पर से गुजरने पर
हमें प्रसाद, प्रेमचंद व धूमिल आदि के दर्शन होते है
यह काशी, बेगमपुरा, अमरदेसवा और रामराज्यसी नाभि है।
वंसुधरा के जिस भूभाग को साक्षात बाबा विश्वनाथ का आशीर्वाद प्राप्त हो

वो तो स्वयं ही रत्नगर्भा तो होगी है ऐसी रत्नगर्भा जगत जननी से दिग्गज मील का पत्थर युग प्रवर्तक लेखक उपजे तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं ।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. रामचन्द्र वर्मा - मानक हिंदी कोश, प्रयाग: हिन्दी साहित्य सम्मेलन, पृष्ठ 526
2. डॉ. जयकिशन प्रसाद - हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, खण्डेलवस (आगरा, विनोद प्रस्तक मंदिर, 1967 ई. पृष्ठ 149
3. रोहित शर्मा - संत रवि दास, (दिल्ली: बाल साहित्य सदन, 2016 पृ. 107, 108, 110
4. संपादक सुधाकर पाण्डेय - तुलसीदास कृत कवितावली (इलाहाबादःलोकभारती प्रकाशन,1973 ई.) उन्तराकण्ड-दोहा 72 पृष्ठ 136
5. पूवोक्ति - पृष्ठ 11
6. रामनरेश त्रिपाठी - तुलसीदास और उनका काव्य (दिल्ली: राजपाल एण्ड सन्ज़ 1957 ई. पृष्ठ 20

काशी की भित्ति चित्रकलाः 18वी से 20वी सदी तक

डॉ0 मंजु कुमारी*

सारांश:-

काशी हमेशा से धर्म, कला एवं संस्कृति की केंद्र रही है। यहाँ दीवारों पर बनाएं जाने वाले चित्र काशी की कला परंपरा का एक महत्वपूर्ण अंग है। दीवारों पर बनाएं गए चित्र को भित्ति चित्रकला के रूप में जाना जाता है। काशी के अधिकतर मंदिरों, मठों, हवेलियों, कोठियों एवं पुराने मकानों तथा गलियों की दीवारों पर चित्र बने हुए होते हैं। यह चित्र हमें काशी के परंपरागत जीवन शैली, धार्मिक आस्था, लोक मान्यता को समझने में सहायता प्रदान करती हैं। यहाँ के भित्ति चित्रों को शैली व कलाकार के आधार पर मुख्यता तीन श्रेणीयों में विभाजित किया जा सकता है। काशी की भित्ति चित्रकला में अजंता, राजस्थानी, मुगल, पहाड़ी, कंपनी शैली के साथ-साथ स्थानीय लोक कला का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है।

बीज शब्दः- कला, विषयवस्तु, रंग, माध्यम, शास्त्रीय, स्थानीय, पारम्परिक, लोक शैली, धार्मिक, प्राकृतिक, पौराणिक, दृश्य, दीवार, परंपरा, प्रभाव

उद्देश्यः- मेरे शोध पत्र का उद्देश्य काशी में बने भित्ति चित्रों का शैली एवं विषय वस्तु के आधार पर वर्गीकरण करना है और साथ ही उसका विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करना है। जिससे काशी की भित्ति चित्र परंपरा के महत्व को समझा जा सके और साथ ही काशी में प्राप्त होने वाली भित्ति चित्रों को संरक्षण प्रदान कर उसे धरोहर के रूप में सुरक्षित किया जा सके।

भारत में भित्ति चित्रकला का प्राचीनतम उदाहरण आदि मानव द्वारा चित्रित गुफा चित्र के रूप में मिलता है। कालांतर में कागज पर चित्रण कार्य की सुगमता के कारण भित्ति चित्रकला का पतन होने लगा परन्तु कुछ मुगल सम्राट और हिंदू शासको ने महलों, मंदिरों और हवेलियों की सजावट हेतु भित्ति चित्र की परंपरा को कायम रखा। "इनमें महाराणा कुम्भा के राज्य काल (१४४३-१४६४ ई.) में निर्मित कुंभलगढ़ के भित्ति चित्र, चितौड़ दुर्ग में भामाशाह के हवेली के चित्र, नाथद्वारा, जैसलमेर, जोधपुर, जयपुर तथा उदयपुर के किलों में स्थित भित्ति चित्र एवं अकबर कालीन फतेहपुर सीकरी के राज प्रसादों के दीवारों तथा छतों पर बनाए गए पशु-पक्षी, वृक्ष तथा मनुष्यों की आकृतियों में एक प्रकार की गतिशीलता दिखाई देती है, जो अन्य समय के चित्रों की तुलना में दुर्लभ है।"[1]

काशी में भित्ति चित्र परंपरा का धार्मिक, सामाजिक एवं ऐतिहासिक महत्व रहा है। यहां 18वीं से 20वीं सदी तक के भित्ति चित्र परंपरा के उत्कृष्ट उदाहरण मिलते हैं लेकिन 18 वीं सदी से पहले के बने भित्ति चित्रों का कोई भी अवशेष उपलब्ध नहीं है। इसका मूल कारण चित्रों का अस्थायी सामग्री से निर्मित होना एवं मुगलों के धर्मन्धता के कारण उनके द्वारा चित्रों का नष्ट किया जाना रहा है। "हमारे देश पर मुगलों के आधिपत्य के फलस्वरुप, वाराणसी सदैव अन्य राज्यों के अधीन रहा, अतः इसका सांस्कृतिक उत्थान मुगल राजधानियों की अपेक्षा कम रहा, वैसे यहाँ भित्तिचित्रों का काफी प्राचीनतम प्रमाण मिलना चाहिए था, लेकिन मुगलों की धर्मान्धता का शिकार वाराणसी को भी होना पड़ा। शाहजहाँ ने अपने शासन काल में गुजरात में 3 मंदिरों, वाराणसी 4 मंदिर गिरवाए थे।"[2] इसी प्रकार औरगंजेब ने सन् 1969 ई. में जयपुर और वाराणसी के मंदिरों को गिराने का आदेश दिया था। "वाराणसी में गोपनाथ और जंगमवाड़ी का शिव मंदिर भी नष्ट कर दिया गया।"[3]

वाराणसी की भित्ति चित्रकला परम्परा में 18वीं शती से 20वीं शती तक की अवधि में जो भी भित्ति चित्र प्राप्त हुए हैं उन्हें तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम, मंदिर एवं रईसों के हवेलियों तथा कोठियों से प्राप्त वैभवशाली भित्ति चित्र, जो पूर्णतः पारंपरिक एवं शास्त्रीय शैली जैसे राजस्थानी, मुगल, पहाड़ी एवं कंपनी शैली से

* प्रवक्ता, जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, चन्दौली, उ0प्र0–232109
manju.fineart@gmail.com

प्रभावित हैं और इन पर लोकशैली का प्रभाव नहीं है। ये भित्ति चित्र पारंपरिक एवं पेशेवर कलाकार द्वारा बनाए गए हैं। इन चित्रों में अधिकांशतः प्राकृतिक दृश्य, पौराणिक दृश्य एवं देवी-देवताओं के चित्र बनाए गए हैं। राजस्थानी शैली से प्रभावित स्थानीय शैली के भित्ति चित्रों में सबसे पुराना उदाहरण भोषला घाट स्थित श्री लक्ष्मी नारायण मंदिर के चित्र हैं। उसके बाद देवकी नन्दन हवेली, ईश्वरगंगी स्थित महामाया मंदिर, शीतलदास का मठ, बागेश्वरी देवी का मंदिर, राजा अर्जुन सिंह की हवेली तथा ब्रह्माघाट के आस-पास के भवनों में बने भित्ति चित्र हैं। ये चित्र धार्मिक व सामाजिक विषयों से संबंधित हैं। मुगल शैली की स्थानीय शैली में बनाए गए कुछ भित्ति चित्र निजी भवनों व मंदिरों की भित्तियों पर आज भी उपलब्ध हैं। कम्पनी शैली में बनी भित्ति चित्रों के उदाहरण में रामनगर किले में स्थित काली मंदिर के भित्ति चित्र हैं। इसके अतिरिक्त अमेठी मंदिर के भित्ति, राजा पटनीमल की बारादरी तिल-भाण्डेश्वर महादेव मंदिर, देवी का मंदिर, टेढ़ी नीव महल स्थित शिव मंदिर, बांस फाटक स्थित शाहुपुरी भवन, जंगमबाड़ी मठ, विश्वनाथ गली स्थित अन्नपूर्णा मंदिर तथा राम मंदिर के भित्ति चित्र दर्शनीय हैं। "इन चित्रों के ऊपर स्थानीय राजस्थानी, मुगल तथा कम्पनी शैली का प्रभाव दर्शनीय है। इन चित्रों के चित्रण में तैल रंगों का अधिक प्रयोग किया गया है इसकी रंग योजना आकर्षण एवं चटकीली है तथा रेखांकन स्पष्ट तथा परम्परागत है, जो कंपनी शैली की विशेषता है। ये परवर्ती भित्ति चित्रण परम्परागत विषयों से मिश्रित शैली का अनुपम उदाहरण है जिससे वाराणसी की समृद्ध भित्ति चित्रण परम्परा की पुष्टि होती है।"[4]

वाराणसी की भित्ति चित्रकला परम्परा में विविधता की दृष्टि से दूसरे क्रम में कुम्हारों एवं पेशेवर कलाकारों द्वारा विभिन्न मांगलिक अवसरों पर रईसों एवं सामान्य लोगों के भवन में बनाए जाने वाले भित्ति चित्र आते हैं। ये भित्ति चित्र स्थानीय शैली में बने हैं जिसपर लोक शैली के साथ किंचित शास्त्रीय शैली का भी प्रभाव दिखता है। ये चित्र लोग जीवन से प्रभावित विषयों पर आधारित है। इन भित्ति चित्रों में अधिकांशतः देवी-देवता, द्वारपाल, कलश, केले का वृक्ष, मटकी लिए महिला, चामर लिए महिला, मछली लिए महिला, ग्वालिन, दही वाली, पहलवान, हाथी, घोड़ा, तोता, मोर इत्यादि के चित्र देखने को मिलते हैं। साथ ही यहाँ "लोगों के दरवाजे पर जातिगत व्यवसाय के अनुसार चित्र बनाने की भी परम्परा मिलती है जैसे दूध के व्यापारी के दरवाजे पर गाय, भैंस, कुश्ती करती जोड़ी का चित्रांकन होता है, वहीं धोबी के घर पर कपड़े धोने का चित्रण एवं गधे का चित्रण होता है, ब्राह्मण के आवास पर पूजा पाठ की आकृति एवं क्षत्रिय के आवास पर शिकारी तथा घुड़सवार का अंकन पाया जाता है।"[5]

वाराणसी की भित्ति चित्र परम्परा का तीसरा क्रम या अंतिम सोपान पूर्णतया लोक शैली पर आधारित है। इसके अन्तर्गत ग्रामिण परिवेश की अनपढ़ स्त्रियों द्वारा विभिन्न व्रत, तीज-त्योहार व विवाह के अवसर पर बनाए जाने वाले भित्ति चित्र आते हैं। "अनेक शुभ अवसरों पर जैसे अहोई अष्टमी, करवाचौथ, दीपावली, विवाह, नागपंचमी, भाईदूज आदि अवसरों पर घर की महिलाओं द्वारा दीवारों पर उस त्योहार से संबंधित चित्र अंकित किए जाते रहे हैं।"[6] उदाहरण के लिए करवाचौथ पर स्त्रियों द्वारा दीवारों पर करवाचौथ की कथा से संबंधित चित्र अंकित किए जाते हैं। दीपावली के अवसर पर लक्ष्मी और गणेश की आकृति चित्रित की जाती है और विवाह के अवसर पर घर के अंदर पूर्व दिशा की दीवार पर कोहबर बनाया जाता है जिसमें पालकी में बैठे दूल्हा और दुल्हन एवं आशीर्वाद देते देवतागण आदि को चित्रित किया जाता है। इसके अतिरिक्त विवाह के अवसर पर ही घर के बाहरी दरवाजे को सजाने की परंपरा होती है। दरवाजे पर शुभ प्रतीक चिन्ह जैसे स्वास्तिक, गणेश, हस्त छाप, द्वार के दोनों और मंगल कलश लिए हुए स्त्रियां, तलवार लिए रक्षक, केले के खंबे, मीन युगल, घोड़े-हाथी पर सवार लोग, पालकी, शहनाई बजाते हुए लोग, विभिन्न पंछी जैसे तोता मोर आदि चित्रित किए जाते हैं। साथ ही इसको और आकर्षक बनाने के लिए फूल-पत्ते एवं बेल-बूटों द्वारा बॉर्डर बनाया जाता है जिसमें चटकीले रंगों का प्रयोग होता है। "इन चित्रों को बनाते समय अक्सर औरतें लोकगीत भी गाती हैं जो उन्हीं चित्रों पर पर्व त्यौहार से सम्बन्धित होता है। ऐसा उनका विश्वास है कि अमुक प्रकार का चित्रण अमुक समय पर करने से अमुक प्रकार का कल्याण होता है।"[7] "दूसरे वर्ग के चित्र स्थानीय शैली

और लोग जीवन से प्रभावित है। इनके विषय भी अलग मिलते हैं। संभ्रांत व्यक्तियों के आवास सुंदर प्राकृतिक दृश्य, पौराणिक दृश्य, देवी देवताओं की आकृतियों से सज्जित होते रहे हैं। जबकि मांगलिक अवसर पर चित्रित किए जाने वाले सामान्य भवन देवी देवता आकृतियों के साथ-साथ मछली लिए नारी आकृति, दही वाली (ग्वालिन), हाथी, घोड़े, पहलवान, तोता, मोर इत्यादि आकृतियों से सज्जित होते हैं। इनमें से अधिकांश आकृतियों का अवसर विशेष के अनुरूप महत्व होता है।''[8] बनारस के भित्ति चित्र परंपरा मे देवताओं में सबसे अधिक गणेश भगवान का अंकन देखने को मिलता है। (चित्र सं. 1) "गणेश के बाद देवताओं में हनुमान का चित्रण बहुत होता है और यह चित्र घर तथा मंदिर की दीवारों पर बनाए जाते हैं।''[9] बनारसी के भित्ति चित्रों में घोड़े और घुड़सवार के अंकन की परंपरा रही है। "यहां के भित्ति चित्रों में तोते का अंकन भी खूब किया जाता है।(चित्र सं. 2) ये एक चश्म बनाए जाते हैं।''[10]

काशी के भित्ति चित्रकला परम्परा का सबसे पुराने एवं समृद्ध उदाहरण मंदिरों में प्राप्त होते है। "मंदिरों में पाए जाने वाले भित्ति चित्रों में परंपरागत गेरू, रामरज, नीम, प्यूड़ी, खड़िया, काले एवं कुछ अन्य रंगों का प्रयोग किया जाता है। जबकि आवासों एवं भवनों पर विभिन्न अवसर पर बनाए जाने वाले चित्र में गेरू, चावल का आटा, गोबर, हल्दी, पिसी हुई हरी पत्तियां, सिंदूर, रंगीन गुलाल का प्रयोग किया जाता है। काले रंग के लिए चावल को जलाकर दूध में घिसकर प्रयोग किया जाता है। जबकि हरा रंग की पतियों को पीसकर छानकर बनाया जाता है।''[11] काशी में सन् 1795 ई० में नागपुर के भोषला राजा द्वारा भोषला घाट तथा श्री लक्ष्मी नारायण मंदिर का निर्माण कराया गया। श्री लक्ष्मी नारायण मंदिर के दीवारों पर विभिन्न प्रकार के अलंकरण एवं धार्मिक विषयों से संबंधित चित्र का निर्माण बनारस की चित्र परंपरा के महत्वपूर्ण कड़ियां हैं। (चित्र सं. 3) इस मंदिर के गर्भ गृह में श्री नारायण, श्री देवी और भू देवी की प्रतिमा है। प्रतिमा के पीछे दीवार पर पदम् पुष्प अलंकरण चित्रित है साथ ही प्रतिमा के दोनों ओर उड़ती हुई दो गंधर्व कन्याएं अंकित है जो लाल रंग का वस्त्र पहने हुई हैं। दीवार पर बाएं ओर सूर्य और दाएं ओर चंद्र का अंकन है। गर्भ गृह के मुख्य द्वार के दोनों ओर की दीवार पर कदली वृक्ष तथा सुसज्जित गाय व बछड़े का अंकन है। दाएं दीवार पर हरे रंग के मगरमच्छ पर बैठी गंगा देवी चित्रित हैं। देवी का वस्त्र लाल रंग का और प्रभामंडल हरे का है एवं उनके बाएं हाथ में कलश अंकित है। पृष्ठभूमि में नदी का दृश्य है। इस चित्र के ऊपरी भाग में श्री गजेन्द्र मोक्ष का दृश्य अंकित है। मंदिर के दीवार के एक भाग में कछुए पर बैठी हुई चार भुजाओं वाली गंगा देवी चित्रित हैं जिसके पृष्ठभूमि में नदी एवं प्राकृतिक दृश्य का अंकन किया गया है। मंदिर के गर्भ गृह के प्रांगण के दीवार एवं खंभों पर फूल-पत्ती व बेल-बूटे द्वारा अलंकरण किया गया है जिसमें अधिकांशतः गुलाबी एवं लाल रंग द्वारा कमल, गुलाब व छः पंखुड़ी वाले पुष्प का अंकन किया गया है। प्रांगण के दाहिने दीवार पर गरुड़ पर सवार श्रीनारायण, श्री देवी एवं भूदेवी का एक विशाल चित्र अंकित है। प्रांगण के बाएं दीवार पर सरस्वती देवी का एक विशाल चित्र अंकित है। इस मंदिर के भित्तिचित्रों में खनिज रंगों का प्रयोग है। इन चित्रों में अधिकांश नारंगी, लाल, पीले, नीले, हरे रंग की प्रधानता है। आकृति चित्रण में राजस्थानी शैली का प्रभाव है तथा अलंकरण में कमल, गुलाब, छः पंखुड़ी वाले पुष्प का ज्यादातर अंकन किया गया है। मंदिर के दीवार पर चित्रित देवी-देवता की आकृति के सामने पहचान हेतु उनके नाम लिखे गये हैं।

वाराणसी के ईश्वरगंगी तालाब के पास स्थित महामाया मंदिर में लगभग 1825 ई0 के आस पास में बने भित्तिचित्रों में स्थानीय, अवध, राजस्थानी, नेपाली और लोक शैली का प्रभाव है एवं ये तैल रंग से बने हुए हैं। मंदिर के अंदर वृताकार दीवारों पर अंकित विभिन्न चित्र मिथकों, कथाओं सहित अलग-अलग भाव भंगिमा व्यक्त करती हैं। "वाराणसी में दूसरा कोई ऐसा मंदिर नहीं जिन पर इतने विस्तार के साथ पूरे मंदिर के भीतर की दीवारों पर चित्र बने हो और ये चित्र शक्ति के विभिन्न स्वरूप दुर्गा, काली एवं पार्वती से संबंधित हैं।''[12] मंदिर के दीवार के एक भाग पर महिषासुर मर्दनी को दिखाया गया है।(चित्र सं. 4) इस चित्र में आकाश मार्ग से देवी दुर्गा को महिषासुर के साथ युद्ध करते दिखाया गया। चित्र में महिषासुर जो पहले तो महिष के रूप में आता है देवी द्वारा उसकी गर्दन काटे

जाने पर वह मानव रूप में प्रकट होकर देवी से युद्ध करता चित्रित है। देवी के हाथ में मुख्य रूप से धनुष एवं अन्य आयुध है। चित्र में एक ओर देवसेना और दूसरी ओर विभिन्न पशुमुखों वाले असुर सेना को युद्ध में संलग्न दिखाया गया है। दुर्गा सप्तशती में वर्णित राजा सूरत और समाधि नामक वैश्य की कथा भी यहां अंकित है। यहां एक चित्र में देवी दुर्गा के सामने ब्रह्मा, विष्णु, शिव तीनों देवताओं को हाथ जोड़े हुए दिखाया गया है। महामाया मंदिर में चित्रित देवी-देवताओं के सामने पहचान हेतु उनके नाम लिखे हुए हैं। मंदिर के दीवार के एक भाग पर लेटे हुए शेषशायी विष्णु का अंकन है और उन्हीं के बगल में मधु और कैटभ के साथ विष्णु के युद्ध को दर्शाया गया है। अर्थात् यहां शाक्त प्रसंग के साथ वैष्णव प्रसंग को भी चित्रित किया गया है। "देवी भागवत और महाभागवत पुराण की कथाओं का इतना विस्तृत अंकन का उदाहरण वाराणसी में ही नहीं अपितु संपूर्ण भारत में कहीं और नहीं मिलेगा।"[13]

संकट मोचन के राम मंदिर में भित्तिचित्र के सुंदर उदाहरण मिलते हैं। यहां के पुरोहितों के अनुसार मंदिर और भित्तिचित्र करीब 400 वर्ष पुरानी है। इन भित्तिचित्रों के अधिकांश भाग धुंधल हो जाने के कारण विषय वस्तु की पहचान कर पाना मुश्किल है। राम मंदिर के गर्भगृह के मुख्यद्वार के ऊपरी भाग में दोनों तरफ मयूर का चित्रांकन है। द्वार के दाहिने दीवार पर श्री विष्णु एवं बाएं दीवार पर हाथ जोड़े हुए हनुमान चित्रित हैं। गर्भगृह के प्रांगण के भीतरी दीवारों पर दुर्गा, काली, छिन्नमस्ता, धूमावती, महिषासुर मर्दिनी, षोडषी, लक्ष्मी आदि विविध देवियों के चित्र अंकित हैं। जिसमें मगरमच्छ पर सवार चतुर्भुजी गंगा देवी जिसके पृष्ठभूमि में रामनगर का किला चित्रित है, उल्लेखनीय है। प्रदक्षिणा पथ से गुजरते वक्त राम मंदिर के बाहरी तीन दीवारों पर अंकित भित्तिचित्र दिखाई देते हैं। पहली बाह्य दीवार पर छः मुखी हनुमान और चक्रधारी विष्णु की विशाल आकृति देखने को मिलती है साथ ही एक अन्य विशाल चित्र बहुत धुंधली पड़ चुकी है। इसी दीवार पर गरुड़ व विष्णु के चित्र अंकित है। दूसरी दीवार पर चतुर्मुखी ब्रह्मा, वराह अवतार एवं छः मुखों वाले गौर वर्ण के कार्तिकेय का विशाल चित्र अंकित है। इसी दीवार के ऊपरी भाग में श्वेत हाथी पर सवार विष्णु व उनके साथ नन्दी पर सवार शिव का चित्र तथा नगर का दृश्यचित्र चित्रित है। तीसरी दीवार पर नन्दी पर सवार श्वेत वर्णी त्रिमुखी शिव तथा अर्धनारीश्वर के विशाल चित्र को अंकित किया गया है। इसी दीवार पर शिव परिवार, रिद्धि-सिद्धि सहित गणेश, नगर दृश्य इत्यादि मध्यम आकार में चित्रित हैं एवं दीवार के सबसे ऊपरी भाग में देवी के विभिन्न रूपों को लघु आकार में दर्शाया गया है। साथ ही दीवार के खाली स्थान में लताओं, फूल-पत्तियों, बेल-बूटों तथा विभिन्न पंक्षियांे जैसे मोर, तोता, मैना को निरूपित किया गया है। यहां फूलदान व कुछ अलंकरण में मुगल शैली का किंचित प्रभाव है जबकि देवी-देवता के आकृति में राजस्थानी व पहाड़ी शैली का कुछ प्रभाव दिखता है। "इन चित्रों में स्थानीय शैली का प्रभाव है परंतु इनके ऊपर कलैंडर चित्र शैली का पूर्ण छाप स्पष्ट है। इनका निर्माण बीसवीं सदी के प्रारंभिक वर्षों में हुआ होगा।"[14] बनारस के जैतपुरा मोहल्ले में स्थित बागेश्वरी देवी मंदिर के बाहरी बरामदे में चारों तरफ लगभग डेढ़ फीट की चैड़ी पट्टी में भित्ति चित्र का निर्माण किया गया है। "बरामदे की भित्ति पर निर्मित चित्रों की मुख्य विषयवस्तु दुर्गा सप्तशती, भागवत महापुराण तथा रामायण आदि धार्मिक विषय हैं।"[15]

निष्कर्षः- काशी के भित्ति चित्रकला परंपरा में अनेक विविधता देखने को मिलती है जो इसकी विशेषता को प्रकट करती है। यहां के भित्ति चित्रों में विषयवस्तु, रंग, माध्यम एवं तकनीक संबंधी अनेक प्रयोग किये गये हैं। इन भित्ति चित्रों में अनेक शास्त्रीय, स्थानीय, पारम्परिक व लोक शैली का प्रभाव भी दिखता है साथ ही यहाँ के जीवन शैली की स्वछन्दता व उल्लास का प्रभाव चित्रों में व्यापक दिखता है जो इसे नया रूप प्रदान करता है। यहाँ के भित्ति चित्र ज्यातर धार्मिक विषयों पर आधारित हैं। शैली व कलाकार के आधार पर यहाँ के भित्ति चित्रों को मुख्यता तीन श्रेणीयों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम श्रेणी के बने भित्ति चित्र जहाँ वैभवता को प्रर्दशित करते हैं वहीं

दूसरी एवं तीसरी श्रेणी के भित्ति चित्र धर्म, लोक आस्था एवं परम्परागत जीवन शैली को दर्शाते हैं। काशी के भित्ति चित्रों में अधिकांश देवी-देवताओं के आकृति पास उनके नाम अंकित किये गये हैं जो उन्हें आकृष्ट बनाते हैं।

सन्दर्भ सूचीः-

1. एच. के. शेरवानी, कल्चरल ट्रेन्डस इन मिडिवल इण्डिया, एशिया पब्लिशिंग हाऊस, न्यूयॉर्क, 1968, पृ. 49
2. श्री राम शर्मा, दि रिलीजस पॉलिसी ऑफ दि मुगल एम्परर्स, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1962, पृ. 86
3. वही, पृ.133
4. https://ignca.gov.in/coilnet/kv_0015.htm
5. डॉ. एच. एन. मिश्र, बनारस की चित्रकला, कला प्रकाशन, वाराणसी, 2023 , पृ. 172- 173
6. अलका गिरि, काशी की लोक कला में भित्तिचित्र परम्परा, दृष्टि-2012, अंक 3, भाग 1, पृ. 184
7. डॉ. गुलाबधर, बनारस की कला धर्म एवं संस्कृति, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ क्रिएटिव रिसर्च थॉट, अंक 9, 2 फरवरी 2021 पृ. 318
8. डॉ. संजय कुमार सिंह, वाराणसी की लोक संस्कृति एवं कला, लूमिनस बुक, वाराणसी, 2015, पृ. 171
9. डॉ. एच. एन. मिश्र, बनारस की चित्रकला, कला प्रकाशन, वाराणसी, 2023, पृ. 172- 173
10. डॉ. उत्तमा दीक्षित, काशी लोक संस्कृति एवं लोक चित्रकला, पिलग्रिम्स पब्लिकेशन, वाराणसी, पृ. 62
11. डॉ. प्रेम शंकर द्विवेदी, बनारसी की भित्ति चित्रकला में दुर्गा, कला प्रकाशन, वाराणसी, 2007, पृ. 71
12. https://youtu.be/FyievQm6BaA?feature=shared
13. https://youtu.be/FyievQm6BaA?feature=shared
14. डॉ. प्रेम शंकर द्विवेदी, बनारसी की भित्ति चित्रकला में दुर्गा, कला प्रकाशन, वाराणसी, 2007, पृ. 71
15. वही पृ. 71

चित्र सं. 1, द्वार पर भित्ति चित्र, वाराणसी

चित्र सं. 2, तोता, घर के दीवार पर भित्ति चित्र, वाराणसी

चित्र सं. 3, श्री लक्ष्मी नारायण मंदिर का भित्ति चित्र, भोषला घाट, वाराणसी

चित्र सं. 4, महिषासुर मर्दनी का भित्ति चित्र, महामाया मंदिर, वाराणसी के ईश्वरगंगी तालाब के समीप

काशी के कला एवं संस्कृति में यक्षों का अद्भुत दिग्दर्शन

कु० आदिती जायसवाल*

शोध सार

विश्व की प्राचीन नगरी वाराणसी प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा, कला एवं साहित्य का विशेष केंद्र रही है। भारतवर्ष की आध्यात्मिक ज्योति काशी से होकर गुजरती है। यहाँ के आध्यात्मिक वातावरण मे भक्ति, संगीत, कला, साहित्य, मूर्तिकला एवं संस्कृति इत्यादि का अदभुत संयोग है। काशी में मनाये जाने वाले विभिन्न उत्सवों में यक्षों की पूजा विशेष रुप से स्थानिय समुदाय द्वारा आज भी किया जाता है।

इस नगर के मूर्तिकला में यक्षों का अपना विशेष महत्व है। यक्षों का उल्लेख वेदों, उपनिषदों और पुराणों मे मिलता है। ये प्रकृति के रक्षक होते है और इन्हे अक्सर विभिन्न देवी, देवताओ के सेवक के रुप में चित्रित किया जाता है। काशी में यक्षों की पूजा और उनकी उपासना के कई रूप प्रचलित है जो यहाँ के धार्मिक परम्पराओ को दर्शाता है। जिसमें काशी विश्वनाथ मंदिर प्रमुख है। यहाँ के लोकगीतों, नृत्यों और पर्वों में भी यक्षों की उपस्थिति दिखाई देती है। काशी की मूर्तिकला में यक्षो का अंकन न केवल उनकी शक्ति को दर्शाता है, बल्कि शिल्पकारों की कला–कौशल को भी उजागर करता है।

प्रस्तुत शोध पत्र के द्वारा काशी के लोक जीवन में यक्षों की उपस्थिति के विभिन्न प्रत्यक्ष एवं गौण पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। इसके साथ ही लुप्त होती लोक परंपराओं से भी अवगत कराने का प्रयास किया गया है।

बीज–शब्दः लोक–कला, साहित्य, काशी विश्वनाथ, लोक–गीत, लोक–पर्व

भारत, वैश्विक पटल पर एक ऐसा देश है जिसकी विश्व की विरासत सूची में काशी सबसे प्राचीन पवित्र नगरी है। जो भारतीय ज्ञान परंपरा कला एवं साहित्य का विशेष केंद्र रही है जहां हमें कण–कण में विविधता दिखाई देती है। काशी एक पारलौकिक तथा रहस्यमई अद्भुत नगरी है। इसे देखने जितना आसान है पहचाना उतना ही मुश्किल है। काशी के कला एवं संस्कृति के निर्माण में साहित्यिक एवं पुरातात्विक दोनों ही प्रकार के साक्ष्य की उपलब्धता अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसका धार्मिक आध्यात्मिक सांस्कृतिक स्वरूप प्रारंभ से ही गतिमान रहा है। अपने पुरातन स्वरुप में यह सांस्कृतिक सततता को बनाए रखते हुए काशी आदिकाल से भारतीय संस्कृति, लोक धर्म एवं दर्शन आदि का प्रमुख केंद्र रही है।

अगर काशी को धार्मिक दृष्टि से देखे तो शैव, शाक्त, जैन, बौद्ध से भागवत, सभी धर्मों की केंद्रस्थली रही है। इसी कारण इसे लघु–ब्रह्मांड कहा जाता है। इसी कारण वर्तमान समय में काशी भारत की ही नहीं बल्कि पूरे विश्व की धार्मिक एवं सांस्कृतिक नगरी बन चुकी है।

20वीं सदी में आए प्रसिद्ध साहित्यकार मार्ग ट्वेन ने लिखा है कि 'वाराणसी इतिहास से भी कहीं अधिक प्राचीन है'।

काशी में लोक धर्म का भी अपना विशेष महत्व है। लोक धर्म प्रायः उसे कहा जाता है जिसको जनसाधारण की या लोगों की सामान्य धारणा सतत एवं दृढ़ रूप से हो। काशी के लोग अन्य धर्म में आस्था रखने के साथ उनकी लोक धर्म में भी विशेष आस्था व विश्वास था। जिनमें वे वृक्ष पूजा ,नाग पूजा, बरम व वीर पूजा, यक्ष पूजा एवं अन्य लोक धर्म सामान्यतः काशी में प्रचलित है। जोकि निरंतर वर्तमान समय तक बनी हुई है। इन सभी लोक देवी–देवताओं के अतिरिक्त काशी में यक्ष पूजा काफी प्रचलित था।

''यक्षों की पौराणिक अवधारणा''

यक्ष भारतीय पौराणिक कथाओं में एक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। वे कुबेर के सेवक माने जाते हैं और अक्सर धन, खजाना और प्राकृतिक शक्तियों के संरक्षक के रूप में वर्णित होते हैं। यक्षों का उल्लेख ऋग्वेद, महाभारत और पुराणों में भी मिलता है, जहाँ उन्हें धरती के खजाने की रक्षा करने वाले और प्रकृति के अदृश्य रक्षक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वे न केवल शक्ति और धन का प्रतीक हैं, बल्कि रहस्यमयी और सुंदरता के प्रतीक भी हैं। इसी वजह से काशी की कला और संस्कृति में यक्षों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है।

यक्षों की पूजा बहुत ही प्राचीन कल से चली आ रही है। पुराणों में भी देवताओं के एक विशेष वर्ग के रूप में यक्षों को महत्वपूर्ण भूमिका में दिखाया गया है। काशी में यक्ष पूजन लोक जीवन में इतनी अधिक प्रबल थी कि

* शोध छात्रा, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, संपर्क– 8810754643
Email- aditijais9935@gmail.com

स्वयं शिव को यक्षों को स्वीकार करके अपना पार्षदध्गण बनाना पड़ा। यक्ष लोक हरिकेश की परंपरा में अथवा यक्ष राज कुबेर के आग्रह करने के बाद शिव पूजक हुए और इसी भक्ति के कारण भगवान शिव के पार्षद या गण बनें।

काशी के संदर्भ में मत्स्य पुराण में ऐसे साक्ष्य उपलब्ध हैं, जो यह बताते हैं कि यक्ष पूर्णभद्र यक्षों के राजा थे तथा उनके पुत्र हरिकेश यक्ष थे, जोकि एक शिव भक्त थे। उनकी आस्था भगवान शिव में थी। उनके पिता पूंभद्र क्रोधित हो गए और बोले तुम्हारा व्यवहार यक्ष परंपरा के अनुकूल नहीं है। यक्ष मांस और रक्त के शौकीन होते हैं और हिंसा करने वाले होते हैं। जब हरिकेश ने अपने पिता की बात नहीं मानी, तब उनके पिता ने उनका घर से बाहर निकाल दिया। इसके बाद हरिकेश काशी आए और भगवान शिव की 1000 साल वर्षों तक तपस्या में में लीन रहे। अंततः शिव उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर उनसे एक वरदान मांगने के लिए कहते हैं तब हरिकेश ने काशी में स्थाई निवास का वरदान मांगा। तब भगवान शिव ने उन्हें काशी का क्षेत्रपाल नियुक्त किया और चार अन्य यक्षों को उनके सहायक के रूप में नियुक्त किया गया। जिनके नाम इस प्रकार बताएं गए हैं – त्रयक्ष, दंडपाणि, उद्भ्राम और संभ्राम।

मत्स्य पुराण में ही यक्षों के अन्य नाम भी गिनाएं गए हैं , जिहोने शिव के गणों का दर्जा प्राप्त किया था। जैसे, शविनायक, कूष्माण्डा, गजतुंड, जयंत, नंदी, महाकाल, महेश्वर और घंटाकर्ण आदि।

काशी में आज भी यश पूजा के अनेक अस्तित्व आज भी मौजूद है। जिनमें रूद्रविनायक, रुद्रप्रयाग, कोतवालपुरा के चौक पर स्थित है। यक्ष विनायक भक्तों के जीवन में आने वाली सभी बाधाओं को दूर करते हैं और लोगों के जीवन को सुखमय बनाते हैं। उपरोक्त यक्ष ही काशी के प्रधान यक्ष हैं। इन्हें महाकाल यक्ष कहा गया है।

काशी में यक्षों को अक्सर विभिन्न देवी देवताओं के सेवक के रूप में चित्रित किया गया है काशी में आज भी चौराहे पर या दूर स्थान पर ग्राम देवता की पूजा की जाती है प्रत्येक शुभ अवसर पर इनका विशेष पूजन व अर्चन किया जाता है।

काशी में यक्षों की उपस्थिति न केवल धार्मिक आस्था का प्रतीक है, बल्कि यह सांस्कृतिक, सामाजिक, और ऐतिहासिक धरोहर का भी महत्वपूर्ण हिस्सा है। काशी की समृद्धि और विविधता यक्षों के अद्भुत दिग्दर्शन के माध्यम से सदियों से जीवित है और आगे भी जीवित रहेगी।

आज भी काशी के 'भभुवा' गांव में 'हरसू बरम देव' और 'वीरा' (बीरा) प्राचीन यक्ष पूजा के अवशेष बचे हुए हैं। बरम शब्द संस्कृत के 'ब्रम्हा' का समानार्थी है। काशी के इतिहास के अंतरगर्त ऐसा माना गया है कि इस प्रदेश में यक्ष पूजा इतनी प्रबल थी कि स्वयं शिव को यक्षों को स्वीकार करके अपना पार्षदध्गण बनाना पड़ा। काशी के बहुत से भैरव मंदिर हमें उन प्राचीन यक्षों की याद दिलाते हैं।

बौद्ध साहित्य में शिव की गणना यक्षों में है उदाहरणतः *महामयूरी में बनारस के प्रधान यक्ष को महाकाल कहा गया है, जो शिव का एक नाम है।* जातक कथाओं में जनसाधारण यक्षों से बहुत भयभीत रहते थे , ऐसा उन्हे चित्रित किया गया है। ऐसी मान्यता है कि यक्षों की आंखें निश्चल होती थी तथा उनकी परछाई नहीं होती थी और वह निडर और क्रूर स्वभाव वाले होते थे। प्राचीन किवदंतियों और कथाओं में यक्ष मनुष्य और पशुओं के मांस खाते थे तथा रेगिस्तान और जंगलों में घूमा करते थे। यक्षिणियों का भी स्वभाव यही था। यक्षा मनुष्यों के रूप में भी आम जनमानस के बीच घूमते थे, ऐसी लोककथाएं प्राप्त होतीं हैं। बनारस में कम से कम शुंग काल तक ऐसे यक्षों की पूजा होती थी क्योंकि इस युग की अथवा इसके पहले की यक्षों मूर्तियां प्राप्त हुईं हैं। इन मूर्तियों को हम आज भी भारत कला भवन बनारस तथा सारनाथ संग्रहालय में देख कल उस समय के धार्मिक एवं लोक जीवन मे यक्षों के प्रभाव को समझ सकते हैं।

यक्ष भारतीय पौराणिक कथाओं में प्राकृतिक शक्तियों के रूप में माने जाते हैं। वे देवताओं और असुरों के बीच की कड़ी के रूप में जाने जाते हैं।

काशी की कला में यक्षों का चित्रण विभिन्न रूपों में होता है। कई मंदिरों, स्तूपों और मूर्तियों में यक्षों की आकृतियाँ बनाई गई हैं, जो उनकी शक्तियों और विशेषताओं को प्रकट करती हैं। काशी के विभिन्न मंदिरों में यक्षों की मूर्तियाँ देखी जा सकती हैं। इन मूर्तियों में यक्षों को बहुत ही सजीव और प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है, जिसमें उनकी मुद्राएँ, भंगिमाएँ और शारीरिक विशेषताएँ प्रमुखता से उभर कर आती हैं। उदाहरण के लिए, दशाश्वमेध घाट के निकट एक प्राचीन मंदिर में यक्ष की एक मूर्ति मौजूद है, जो काशी की समृद्ध मूर्तिकला परंपरा को दर्शाती है। उनकी उपस्थिति भारतीय कला और संस्कृति में कई रूपों में देखी जाती है।

बनारस की पेंटिंग्स और भित्ति चित्रों में भी यक्षों का चित्रण मिलता है। ये चित्र काशी की पुरानी गलियों, घाटों और मंदिरों में देखे जा सकते हैं, जहाँ यक्षों को प्रकृति और देवी–देवताओं के बीच कड़ी के रूप में दर्शाया गया है। इन चित्रों में यक्षों का सौंदर्य, आकर्षण और उनका रहस्यमयी स्वरूप दर्शाया गया है, जो काशी की चित्रकला को अद्वितीय बनाता है। काशी विश्वनाथ मंदिर के कुछ हिस्सों में भी यक्षों के प्रतीक देखे जा सकते हैं।

काशी की संस्कृति में यक्षों का प्रभाव अनेक रूपों में दिखाई देता है। यहाँ की लोककथाओं, उत्सवों और धार्मिक अनुष्ठानों में यक्षों का उल्लेख होता है। यक्षों की पूजा या उनके प्रति सम्मान प्रकट करने की प्रथा विशेष अवसरों पर देखी जा सकती है। काशी में कई धार्मिक अनुष्ठानों में यक्षों का आवाहन किया जाता है। माना जाता है कि यक्षों की कृपा से जीवन में समृद्धि और शांति बनी रहती है।

काशी में यक्षों से जुड़ी अनेक लोककथाएँ प्रचलित हैं, जिनमें यक्षों के द्वारा प्राकृतिक आपदाओं से रक्षा करना, खजानों की देखभाल करना और समाज की सहायता करना शामिल है। इन कथाओं में यक्षों को परोपकारी शक्तियों के रूप में दर्शाया गया है, जो मानव जीवन के कल्याण में सहायक माने जाते हैं।

काशी के शास्त्रीय नृत्य और संगीत में भी यक्षों का प्रभाव देखा जा सकता है। कई शास्त्रीय नृत्य शैलियों और लोक संगीत में यक्षों की कहानियों का संदर्भ मिलता है। कुछ संगीत रागों और भजनों में यक्षों का गुणगान किया जाता है, जिसमें उनकी आध्यात्मिक शक्ति और सौंदर्य का वर्णन है।

काशी के लोगों के लिए यक्षों का प्रतीकात्मक महत्व गहरा है। यक्षों को शक्ति, साहस, सौंदर्य और रहस्य का प्रतीक माना जाता है। काशी की संस्कृति में यक्षों की उपस्थिति का मतलब यह भी है कि यह शहर प्राकृतिक शक्तियों के साथ सामंजस्य स्थापित करने का महत्व समझता है। यक्षों के माध्यम से काशी के लोग प्रकृति के साथ अपने जुड़ाव को व्यक्त करते हैं, और यह संदेश देते हैं कि भौतिक संसार में स्थिरता और संतुलन बनाए रखना ही सच्ची समृद्धि का आधार है।

उपसंहार : काशी की कला और संस्कृति में यक्षों का प्रभाव अद्‌भुत और महत्वपूर्ण है। यक्ष न केवल एक पौराणिक चरित्र हैं, बल्कि वे इस शहर के सांस्कृतिक जीवन में गहराई से जुड़े हुए हैं। वे काशी की कला, संगीत, साहित्य और लोककथाओं में एक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। यक्षों के रूप में काशी की संस्कृति ने प्रकृति, शक्ति और सौंदर्य के प्रतीक को अपनाया है, जो इसे अन्य सांस्कृतिक केंद्रों से अलग और विशिष्ट बनाता है। मूर्तिकला, वास्तुकला, चित्रकला और साहित्य के माध्यम से यक्षों की उपासना काशी की सांस्कृतिक धरोहर का अभिन्न अंग बन चुकी है। यक्षों की उपासना न केवल काशी की धार्मिक मान्यताओं को बल प्रदान करती है, बल्कि यह सामाजिक, सांस्कृतिक और पर्यावरणीय दृष्टि से भी महत्वपूर्ण सिद्ध होती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- पांडे, जय नारायण, *भारतीय कला एवं पुरातत्व,* इलाहाबाद, 1990
- अय्यर, के. वी., *इंडियन आर्ट, शॉर्ट इंट्रोडक्शन,* एशिया पब्लिशिंग हाउस, न्यू दिल्ली, 1958
- जायसवाल, डॉ कुसुम, *उत्तर भारत में प्राचीन हिंदू देवी मूर्तियां* 1992
- कुमारस्वामी, ए.के., *हिस्ट्री ऑफ इंडियन एण्ड इंडोनेशियन आर्ट* लंदन, 1927
- *मतस्य पुराण,* अध्याय 180, गीता प्रेस, गोरखपुर
- जैन, जगदीश, *लाइफ इन ऐन्शन्ट इंडिया,* न्यू बुक कंपनी लिमिटेड, बंबई, 1947
- अलतेकर,ए०एस०,*हिस्ट्री ऑफ बनारस रू फ्राम द एरलिएस्ट टाइमस् टू 1937,* कल्चर हाउस पब्लिकेशन, बनारस, 1937
- जायसवाल, विदुला*, आदि काशी से वाराणसी तक,* आर्यन बुक इंटरनेशनल, न्यू दिल्ली, 2011
- शुकुल, पंडित कुबेर नाथ, *वाराणसी वैभव,* बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, पटना, बिहार, 2000
- कुमारस्वामी, आनंद के०, *द यक्षास,* मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1998 पृ–3,4,8,9
- मिश्र, रामनाथ*, भारतीय मूर्ति कला,* ग्रंथ शिल्पी पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2002
- चन्द्र, डा. मोती काशी का इतिहासः प्राचीन साहित्य के आधार पर काशी का इतिहास, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड, बम्बई, 1962, पृ 31, 32
- सुकून पं कुबेर नाथ, *काशी वैभव* बिहार राष्ट्रभाषा परिषद पटना, 2008 पृ 81, 88
- अग्रवाल वासुदेव शरण, *भारतीय कला* पृथिवी प्रकाशन वाराणसी, 1982, पृ 110, 112
- मिश्रा विभा, *कौशांबी की मृण्मूर्तियाँ,* मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स 2005 पृ. 152,153,154
- मार्शल, *द बुद्धिस्ट आर्ट आफ गान्धार,* कैम्ब्रिज, 1960, पृ. 50, 80
- शर्मा, जी.आर, *ऐक्सकेवेसन ऐट कौशांबी,* 1957–59, इलाहाबाद
- जोशी .नी. पु, *प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान,* बिहार राष्ट्रभाषा परिषद पटना पृ. 182

भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम और काशी की 'रणभेरी'

अनामिका मौर्या*

शोध-आलेख सारांश :

उत्तर प्रदेश की सांस्कृतिक और धार्मिक राजधानी काशी का भारतीय स्वतन्त्रता आंदोलन में महत्त्वपूर्ण स्थान है। काशी की हिन्दी पत्रकारिता ने भारत की आजादी की इस लड़ाई में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। काशी, कलम और तलवार दोनों की सिद्धस्थली रही है। इस युग के पत्रों में स्वाधीनता का स्वर मुखरित हुआ। जिनसे 'जब तोप मुकाबिल हो तो अखबार निकालो' की सार्थकता स्वयं सिद्ध है। 1845 ई0 में इस क्षेत्र में हिन्दी का पहला समाचार बनारस अखबार प्रकाशित हुआ जिसके संरक्षक राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द तथा संपादक गोविन्द नाथ थत्ते थे जो मराठी थे। इसी दिशा में आगे भारतेन्दु युग में पत्रकारिता एक नये साँचे में ढली। कविवचन सुधा, हरिश्चन्द, मैगज़ीन, भारत जीवन, स्वार्थ, आज, संसार, हंस, मर्यादा, सनातन धर्म, जागरण, सदृश पत्रों ने भारत, भारती और भारतीयता को गौरवान्वित किया। भूमिगत प्रकाशनों में जिनसे हिन्दी पत्रकारिता की अग्निवर्षा प्रवृत्ति का परिचय मिलता है उनमें रणभेरी, शंखनाद, बवंडर, रंणडका, चण्डिका जैसे साइक्लोस्टाइल अखबार आते हैं। देश की स्वतन्त्रता में हिन्दी समचारपत्रों का ऐतिहासिक योगदान है पर उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण क्रान्तिकारी रूप 'रणभेरी (1930)' पत्रिका का रहा है। वाराणसी के अभिलेखागार, नागरी प्रचारिणी सभा पुस्तकालय, 'आज' प्रेस के संग्रह, पराड़कर संग्रहालय तथा अन्य स्रोतों से इस पत्र की भूमिका और इससे चौका देने वाली जानकारियाँ मिलती है।

मुख्य शब्द : भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन, काशी, पत्रकारिता, साइक्लोस्टाइल, रणभेरी, क्रान्तिकारी, प्रेस, आज, कांग्रेस, गुप्त पत्र, बम, पिस्तौल।

पृष्ठभूमि : पत्रकारिता केवल समाचारों के परस्पर आदान-प्रदान का ही सशक्त माध्यम नहीं, अपितु संस्कृति, परम्परा, रहन-सहन, वेश-भूषा, आचार-व्यवहार, बोलचाल आदि के सम्प्रेषण का भी माध्यम है। इनके माध्यम से सम्पूर्ण विश्व में होने वाली घटनाओं के बारे में जानकारी मिलती है। 'अकबर इलाहाबादी' ने समाचार-पत्रों की इसी विशेषता को देखते हुए कहा था कि 'जब तोप मुकाबिल हो, तो अखबार निकालों तथा अंग्रेजी विचारकों ने इस पर टिप्पणी की है कि- 'पेन इज माइटियर दैन स्वार्ड' यानी कलम तलवारों से भी अधिक शक्तिशाली है।

भारतीय पत्रकारिता का अपना एक गौरवशाली इतिहास रहा है। जिसने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इनमें काशी के हिन्दी पत्रकारिता भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम की इस लड़ाई में अग्रणी रही है। उस समय पत्रकारिता एक 'मिशन' थीं, यानी निःस्वार्थ समर्पण का क्षेत्र। आजादी की इस लड़ाई में भातरीय पत्रकारिता का भारतीय पत्रकारिता का मूल स्वर त्याग, बलिदान और मिशन के प्रति समर्पण का स्वर था। संपादकों का वेतन न के बराबर ही था। संपादक की नियुक्ति के लिए एक विज्ञापन की आवश्यकता है- साप्ताहिक पत्र के लिए संपादक की।

योग्यता- देशाभिमान और जेल जाने के लिए सन्नद्ध।

वेतन- दो रोटी-पानी और पत्र के लिए कोई भी अन्य आवश्यक कार्य-मानदेय अपेक्षित नहीं होगा।

1930 ई0 में महात्मा गांधी द्वारा चलाया गया नमक आंदोलन पूरे भारत में जब अपने चरम शीर्ष पर था तब उस समय समाचार पत्रों ने अपने उग्र लेखनी से इसमें आग में घी डालने वाला काम किया तथा भारतीय जनता में देशप्रेम तथा नवजागरण का भाव पैदा किया। समाचार-पत्रों के ऐसे लेखनी से ब्रिटिश सरकार घबरा गई तथा इनके विरूद्ध प्रेस ऑर्डिनेंस जारी कर दिया, जो भारतीय समाचार-पत्रों के लिए गले का फंदा जैसा साबित हुआ। जिसमें काशी से प्रकाशित 'आज' अखबार को भी बन्द कर देना पड़ा। 'आज' का सम्पादन बाबूराव विष्णु पराड़कर जो हिन्दी के जाने-माने पत्रकार, साहित्यकार एवं हिन्दीसेवी थे उन्होंने 1920ई0 में किया था। भारतीय स्वतन्त्रता की आजादी की लड़ाई में समाचारपत्र को पराकर जी ने एक तलवार की तरह प्रयोग किया।

सन् 1930 ई0 से 1942 ई0 में जब भी समाचार पत्रों पर कुठाराघात किया गया तब-तब भूमिगत पत्रों का प्रकाशन हुआ और सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह था कि इन भूमिगत पत्रों का प्रकाशन बहुत ही गोपनीय तथा क्रान्तिकारी तरीके से किया गया। इन

* इतिहास विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221005
Contact No. : 8115299601, 8808645693

भूमिगत पत्रों ने सरकारी आंतक तथा दमन के काल समय में जनता के मनोबल को बनाये रखकर आजादी की लड़ाई में सतत सहयोग और बलिदान की भावना उत्पन्न की।

'अनऑथराइज्ड न्यूज़ सीट एंड न्यूजपेपर ऑर्डिनेंस' (2 जुलाई, 1930)- इस नए अध्यादेश के अनुसार न्यूज़ पेपर का तात्पर्य किसी प्रकार के नियत कालीन प्रकाशन से था, जिसमें सार्वजनिक समाचार व टिप्पणियाँ हो तथा न्यूज़ सीट से तात्पर्य किसी प्रकार के अन्य कालीन प्रकाशन से था, जिसमें सार्वजनिक समाचार प्रकाशित हो तथा अनऑथराइज्ड न्यूजपेपर ऐसे किसी समाचार पत्र को माना गया, जिससे पूर्ववर्ती अध्यादेश के अनुसार जमानत मांगी गई हो। इसके अनुसार सरकारी अधिकारियों की तलाशी, उपरोक्त प्रकार के वर्णित पत्र-पत्रिकाओं की जब्ती, उन्हें नष्ट करने और अघोषित छापाखानों को जब्त करने का अधिकार प्रदान किया गया।

क्रान्तिकारी पत्रकारिता का विशेष महत्त्व है। 'आज' का प्रकाशन बन्द हो जाने के बाद 'आज के समाचार' नाम से नियमित बुलेटिन साइक्लोस्टाइल पर छापने लगा। किन्तु इसके इस महिने बाद एक दूसरा आडिनेन्स जारी किया गया, जिसके तहत इसको भी बन्द कर देना पड़ा। सन् 1929-30, 1932-34 तथा 1942 के राष्ट्रीय आन्दोलन के अवसरों पर जब ब्रिटिश सरकार ने स्वतन्त्र समाचारों और विचारों के प्रकाशन पर रोक लगा दी थी, तब पराड़कर जी ने अपने अन्य सहयोगियों के साथ 'रणभेरी', शंखनाद', 'तूफान' आदि क्रान्तिकारी पत्र को अभूतपूर्व शक्ति, प्रेरणा एवं प्रोत्साहन दिया। विष्णु पराड़कर लोकमान्य तिलक से पूरी तरह प्रवाहित थे। जब आज का प्रकाशन पूरी तरह बन्द हो गया तो इन्होंने भूमिगत पत्र 'रणभेरी' का श्रीगणेश किया। पत्र का लक्ष्य था- ''रणभेरी बज उठी वीरवर पहनो केसरिया बाना।''

''रणभेरी'' का प्रकाशन कर पराड़कर जी ने क्रान्तिकारी पत्रकारिता का प्रयोग कर स्वतंत्रता संग्राम को उद्देलित किया। 16 अगस्त, 1930 की 'रणभेरी' में पराड़कर जी ने लिखा- 'रणभेरी' उसके (पुलिस के) सर पर बजेगी और तब तक बजती रहेगी जब तक काले कानून रहेंगे और काशी में देशभक्ति रहेगी। 'रणभेरी' की हुंकार थी- ''दमन से द्रोह बढ़ता है, स्वतन्त्रता की विपासा लाठियों-गोलियों से नहीं बुझा करती और नौकरशाही के गोबर भरे गंदे दिमाग में इतनी समझ कहाँ? वह तो शासन का एक ही शस्त्र जानती है- बंदूक।

29 अक्टूबर 1930 से 8 मार्च 1931 तक सरकारी नीति के विरोध में संपादकीय स्थल को खाली रखकर उस पर उनका केवल यह वाक्य होता था- ''देश की दरिद्रता, विदेश जाने वाली लक्ष्मी, सिर पर बरसाने वाली लाठियाँ, देशभक्तों से भरने वाले कारागार- इन सबको देखकर प्रत्येक देशभक्त के हृदय में जो अहिंसामूलक विचार उत्पन्न हों, वही संपादकीय विचार है।''

'रेणभेरी' के ऊपर गांधी जी का स्पष्ट प्रभाव था। इस कारण वह गरम दल को खुलकर समझाने का कार्य करती था। इसके एक लेखांश की कुछ पक्तियाँ इस प्रकार है- 'बम और पिस्तौल लेकर क्रान्ति के रास्ते पर चलने के लिए उतावले दोस्तों। क्यों घबरा रहे हो।'

''बम के फिलासफी पर विश्वास करने वाले भाइयों घबराओं मत, एक बार इस नये कृष्ण और अर्जुन का महाभारत मच जाने दो। कौन कह सकता है कि यह मार्ग सफल होगा ही नहीं? याद रखो कि इस कमबख्त ब्रिटिश हुकूमत के दिन अब पूरे हो चुके। सैन्य और अहिंसा से जाय या बम और पिस्तौलों से, इसे जहन्नुम जाना ही पड़ेगा। इसी से फिर कहते हैं घबराओं मत!

'रणभेरी' फुलस्केप साइज का साइक्लोस्टाइल मशीन पर छपा शुद्ध राजनीतिक दैनिक पत्र था। इसका दैनिक अंक दो पृष्ठों का विशेषांक तथा साप्ताहिक आठ पृष्ठों का होता था। इस पत्र के प्रथम पृष्ठ के ऊपर 'रणभेरी' तथा उसके नीचे बायीं तरफ सम्पादक सीताराम अथवा कभी-कभी बाबा घनश्यामदास छपा रहता था। ये दोनों नाम फर्जी होते थे। घनश्यामदास काशी के तत्कालीन सिटी मजिस्ट्रेट तथा ब्रिटिश सरकार के पिछलग्गू थे। 'रणभेरी' के दैनिक अंक के प्रथम पृष्ठ पर राजनीतिक समाचार-विचार तथा द्वितीय पृष्ठ पर टिप्पणियाँ और लेख प्रकाशित किये जाते थे। पं0 लक्ष्मीशंकर व्यास के अनुसार, यह आज कार्यालय के दफ़तरीखाने में छपती थी। इसके छापने के समय बड़ी सावधानी बरती जाती थी। पराड़कर जी के छोटे भाई श्री माधव विष्णु पराड़कर ज्ञान मण्डल यन्त्रालय के व्यवस्थापक थे। कार्यालय में किसी भी संदिग्ध व्यक्ति के प्रवेश के साथ ही वे 'रणभेरी' के कार्यकर्ताओं को सावधान कर देते थे। उनके टेबल में बिजली की घण्टी लगी थी जिसका सम्बन्ध उस कमरे से था जहाँ रणभेरी छापी जाती थी। घण्टी बजते ही सब सावधान हो जाते थे। यही कारण था कि पुलिस तथा गुप्तचर विभाग की कड़ी नजर के होते हुए भी 'आज' कार्यालय में 'रणभेरी' कभी पकड़ी नहीं गई। इसके बाद 'रणभेरी' छापने की मशीन मैदागिन स्थित रेवाबाई धर्मशाला के एक किराये के कमने में ले जाकर रखी गई। श्री

रामस्वरूप दफ्तरी यहाँ उसे छापते थे और 'आज' के दफ्तरी श्री अब्दुलहक (अब अवकाश प्राप्त) उसे बनारसी वस्त्र के रेशे के रूप में बाहर ले जाकर लक्खी चबूतरे के वितरण केन्द्र पर पहुँचा देते थे। पराड़कर जी, श्रीदामोदरदास, श्रीदुर्गादास खत्री आदि रणभेरी के प्रकाशन तथा विवरण की विभिन्न योजनाएँ बनाते थे। 'रणभेरी' में पराड़कर जी के अतिरिक्त रामचन्द्र वर्मा, दुर्गाप्रसाद खत्री, दिनेशदत्त झा, उमाशंकर जी, कालिका प्रसाद जी आदि नियमित रूप से लिखा करते थे। इनमें सबसे सुन्दर हस्तलिपि पराड़कर जी की थी। इसीलिए 'रणभेरी' की अधिकांश लेख सामग्री उन्हीं की लिखी होती थी। रामघाट स्थित श्री दुर्गागुरू के घर के ऊपरी कमरे में रणभेरी बहुत दिनों तक गुप्त रूप से छपती रही यह बात बहुत कम लोगों को मालूम है।

श्री संतशरण मेहरोत्रा के प्रकाशन सम्बन्धी निम्नलिखित पक्तियों से यह द्रष्टव्य है कि 'हम लोग एक स्थान पर अधिक दिन नहीं रहा करते थे और न ही एक आदमी एक कार्य बराबर करता था। सदा अपने-अपने कार्य को बदलते रहते थे।

गोलमेज सम्मेलन के अवसर पर इसका प्रकाशन बन्द हो गया। सन् 1932 के अन्त में इसके पुनः प्रकाशन की योजना बनी। उस समय काशी के प्रसिद्ध मणिकर्णिका घाट के कुण्ड के ठीक नीचे 'रणभेरी प्रेस' की स्थापना की गई। उस मकान में प्रसिद्ध क्रान्तिकारी श्री चन्द्रशेखर 'आजाद' के दल के क्रान्तिकारी श्री के0 एन0 रामन्ना आदि रहते थे। इन दिनों 'रणभेरी' के प्रकाशन का दायित्व श्री काशी विद्यापीठ के श्री विश्वनाथ शर्मा पर था। वे ही इस क्रान्तिकारी पत्रिका के लिए लेख-सामग्री पराड़कर जी आदि से लेकर देते और कागज की व्यवस्था भी करते थे। इस मकान में सजग होकर कार्य करने के बारे में श्री विश्वनाथ शर्मा कहते हैं कि आदमियों की पहचान के लिए इस मकान के दरवाजे में छिद्र बनाया गया था। एक व्यक्ति तथा पराये व्यक्तियों को हमेशा देखा करता था।

'रणभेरी के कार्यकर्ताओं के नाम जेल के कैदियों के समान जैसे- विश्वनाथ-चपरासी, सरयू प्रसाद-फोरमैन, रामसूरत बीरबल आदि। यह काशी की संकीर्ण गलियों में भुतहे बहु प्रवेश द्वार वाले मकानों में छपने के अतिरिक्त गंगा जी में पड़ी नौकाओं पर भी छपती थी।

सन् 1932-34 के राष्ट्रीय आन्दोलन के समय सरकार ने कांग्रेस सम्बन्धी समाचारों पर अनेक कड़े प्रतिबन्ध लगा दिये थे। फलतः कांग्रेसी गश्ती चिट्ठी, गुप्त परचे, अध्यक्षीय भाषण तथा अन्य क्रान्तिकारी साहित्य छापने के लिए गुप्त प्रेस खोला गया। इस प्रेस के लिए काशी के प्रसिद्ध कांग्रेस कार्यकर्त्ता पं0 गौरीशंकर मिश्र ने ब्रह्माघाट पर एक भुतहा घर लिया। यही से 'शंखनाद' नामक एक साप्ताहिक पत्र भी निकलता था जो 'रणभेरी' की पूर्ति करता था। काशी के घासी टोला मुहल्ले में एक मकान 'आज' के तत्कालीन कम्पोजीटर श्री शिवकुमार ने बनारस काटन मिल के मजदूर सोहन सिंह बनकर किराये पर लिया। इसी मकान में 1942 ई0 में बहुत दिनों तक 'रणभेरी' प्रेस रहा। बाद में पथरगलिया मुहल्ले का एकान्त बाड़ा जिसमें बहुत से क्रान्तिकारी रहते थे जो श्री कन्हैयालाल गौर जी का था 'रणभेरी' के कार्य के लिए किराये पर लिया गया और 'रणभेरी' यही से छपती थी। इन सभी स्थानों में सन् 1942 में लगभग चालिस क्रान्तिकारी रहते थे।

सन् 1942 ई0 आन्दोलन के समय जब 'आज' का प्रकाशन बंद हो गया तथा बाबू विष्णुराव पराड़कर के सहयोग से 'रणभेरी ' का पुनः प्रकाशन हुआ। इस समय भी 'रणभेरी' पूर्व की भाँति प्रकाशित हुई। पं0 लक्ष्मीशंकर व्यास के अनुसार 'बहुत प्रयत्न करने पर पुलिस ने 'रणभेरी' पर छाया मारा और सम्बद्ध लोगों को गिरफ्तार किया। पुलिस अधिकारियों ने बहुत प्रयत्न किया कि किसी प्रकार पराड़कर जी को जो इसके प्रमुख थे इसमें फँसाकर गिरफ्तार किया जाये, परन्तु प्रमाण के अभाव वश सब कुछ जानते हुए भी विवश रहे। जस दिन 'रणभेरी' प्रेस पकड़ा गया उसी दिन शाम में 'रणभेरी के दूसरे कार्यकर्त्ता श्री दुर्गा प्रसाद खत्री ने लहरी प्रेस से 'रणभेरी' का अंक निकाला और घोषणा की कि 'रणभेरी' आजाद है। सदा आजाद रहेगी। 'रणभेदी' बजती रहेगी। पुलिस ने जिस रणभेरी को पकड़ा है वह हमारी एक शाखा है।'

6 दिसम्बर 1942 को 'खबर' नामक अखबार में सरकार की विज्ञप्ति छपी- ''काशी की 'रणभेरी' की मशीन पकड़ ली गई।'' इसके जवाब में 10 दिसम्बर 1942 को 'रणभेरी' ने यह दोहा लिखा-

"आज मुझे इस बात पे आवे हँसी अपार।
तुच्छ गीदड़ भी कहें कि मारा सिंह शिकार।"

शोध पद्धति : प्रस्तुत शोध पत्र भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और काशी की 'रणभेरी' में विवेचनात्मक शोध पद्धति का उपयोग किया गया है। इस शोध में द्वितीय शोध का उपयोग किया गया है जिनमें समाचार पत्र एवं पत्रिकाएँ तथा पुस्तकें आदि शामिल है।

शोध का उद्देश्य :

1. भारत के स्वतन्त्रता संग्राम में अहम् भूमिका निभाने वाली हिन्दी पत्रकारिता से भारतीय जनता को परिचित करवाना।

2. आजादी के महासंग्राम में काशी के पत्र 'रणभेरी' की महत्ता को उजागर कर भविष्य के लिए प्रेरणा स्रोत बनाना।

निष्कर्ष : भारत के आजादी के महासंग्राम में समाचार पत्रों एवं पत्रिकाओं की अहम् भूमिका है तथा इनके संघर्ष का एक विस्तृत इतिहास रहा है। अगर सही ढ़ग से देखा जाए तो पत्रकारिता ने ही राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम को उचित दिशा-निर्देश तथा गति प्रदान की। इसी क्रम में काशी का पत्र 'रणभेरी' जिसे बाबू विष्णुराव पराड़कर जी ने 1929-30 ई0 में निकाला था उसने इस महासंग्राम में एक अविस्मरणीय योगदान दिया। यह पत्र अपने पूरे जीवन काल में ब्रिटिश हुकूमत के विरूद्ध पूरी निर्भीकता के साथ अपनी लेखनी से आम जनमानस में राष्ट्रीयता की भावना का प्रचार-प्रसार किया तथा भारत की दुर्दशा और अंग्रेजों के अत्याचार के प्रति काशीवासियों को आंदोलित करने के लिए प्रेरित किया।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. महाराष्ट्र मानस, संपादकाचार्य पराड़कर विशेषांक, वर्ष-1, अंक-4, नवम्बर 25, 1983, पृ0 सं0-17 (पराड़कर भवन)
2. गुलाटी, शिप्रा टण्डन, क्रान्तिकारी आन्दोलन में वाराणसी की भूमिका, राज पब्लिकेशन, वाराणसी 2011, पृ0 सं0 246-47
3. तिवारी, अमित, भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में पत्र-पत्रकारों का योगदान, भाषा प्रकाशन, नई दिल्ली, 2022, पृ0 सं0 79
4. श्रीधर, विजयदत्ता, भारतीय पत्रकारिता कोश, खण्ड-दो, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृ0 सं0 897
5. सिंह, डॉ0 वशिष्ठ नारायण, काशी की हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास (सन् 1845 से 2000 ई0), पिलग्रिम्स पब्लिशिंग, वाराणसी, 2008, पृ0 सं0 113
6. सिंह, डॉ0 वशिष्ठ नारायण, काशी की हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास (सन् 1845 से 2000 ई0), पृ0 सं0 111
7. महाराष्ट्र मानस, पृ0 सं0 17
8. सिंह, डॉ0 वशिष्ठ नारायण, काशी की हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास (सन् 1885 से 2000 ई0), पृ0 सं0 110
9. महाराष्ट्र मानस, पृ0 सं0 19
10. सिंह, डॉ0 वशिष्ठ नारायण, काशी की हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास (सन् 1845 से 2000 ई0), पृ0 सं0 111
11. श्रीधर, विजयदत्ता, भारतीय पत्रकारिता कोश, खण्ड-दो, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृ0 सं0 897-98
12. गोदरे, विनोद, हिन्दी पत्रकारिता स्वरूप एवं सन्दर्भ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2021
13. पाण्डे, डॉ0 पद्माकर, हिन्दी पत्रकारिता और राष्ट्रीय आन्दोलन, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1983
14. 'रणभेरी पत्र', चयनित अंक 25 अगस्त 1930, सीताराम (सम्पादक) भारत कला भवन
15. रणभेदी पत्र, चयनित अंक 1942-1943, सीता राम (सम्पादक), भारत कला भवन

प्राचीन काशी एवं अंगकोर के पवित्र स्थलों में धार्मिक एवं सांस्कृतिक समानताः ऐतिहासिक विश्लेषण

अनुराग वर्मा *

सारांश

प्राचीन काशी (वाराणसी, भारत) और अंगकोर (कम्बोडिया) के पवित्र स्थलों में धार्मिक एवं सांस्कृतिक समानता का ऐतिहासिक विश्लेषण एक महत्वपूर्ण अध्ययन का विषय है। दोनों स्थानों की धार्मिक महत्ता एवं स्थापत्य कला की भव्यता उन्हें एशिया के महान पवित्र स्थलों में सम्मिलित करती है। काशी को भगवान शिव की नगरी माना जाता है तथा वाराणसी स्थित सारनाथ बौद्ध धर्म की ऐतिहासिकता को संजोये हुई है। वहीं अंगकोर का प्रसिद्ध अंगकोरवाट मंदिर भगवान विष्णु को समर्पित होने के बावजूद थेरवादी बौद्ध धर्म को भी विशेष महत्व प्राप्त है। दोनों स्थान ही हिन्दू धर्म तथा बौद्ध धर्म के महत्वपूर्ण धार्मिक केन्द्र रहे है। दोनों स्थलों में शिवलिंग मूर्तियों एवं मंदिर निर्माण की लगभग समान परम्परा देखी जा सकती है। अंगकोर के मंदिरों की दिवारों पर देवी-देवताओं की मूर्तियों एवं धार्मिक कथाओं के दृश्य उत्कीर्णित है जो कि भारतीय कला से प्रभावित है।

काशी और अंगकोर दोनों की स्थापत्य कला में अद्वितीयता और भव्यता है। अंगकोर के मंदिरों में भारतीय मंदिरों की शैली का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। दोनों ही स्थानों में धार्मिक अनुष्ठानों की परम्परा और रीति-रिवाजों में काफी समानता है, जिसमें पूजा-पद्धति, जलाभिषेक और धार्मिक पर्वो का आयोजन शामिल है।

अंगकोर के स्थलों में भारतीय संस्कृति एवं धर्म का गहरा प्रभाव रहा है। कम्बोडिया में खमेर साम्राज्य के शासकों ने भारतीय संस्कृति धर्म एवं संस्कृत भाषा को अपनाया जिससे काशी और अंगकोर के मध्य सांस्कृतिक आदान-प्रदान की संभावनाएँ काफी बढ़ गयी। दोनों ही स्थानों पर भारतीय पुराणो बौद्ध ग्रन्थ एवं महाकाव्यों का महत्वपूर्ण प्रभाव देखा जा सकता है। अंगकोरवाट की दिवारों पर रामायण एवं महाभारत के दृश्य अंकित है जो कि भारतीय धार्मिक एवं सांस्कृतिक ग्रन्थों की महत्ता को दर्शाते हैं।

मूल शब्द - अंगकोर, काशी, पुराण, कम्बोडिया, खमेर, भारतीय संस्कृति।

अंगकोर और काशी की ऐतिहासिकता का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए हम दोनों पवित्र स्थलों के धार्मिक एवं सांस्कृतिक महत्व को देख सकते हैं। दोनो स्थल विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं के केन्द्र रहे है। इनकी ऐतिहासिकता गहरी संस्कृतिक जड़ों से बंधी हुई है।

काशी अंगकोर की अपेक्षा अपनी प्राचीनता को 5000 वर्षों से भी ज्यादा संजोये हुए है। इसके बावजूद दोनों ऐशियाइ स्थल भारतीय संस्कृति के प्रमुख दो धर्मों हिन्दू तथा बौद्ध धर्म के प्रमुख केन्द्र के रूप में आज भी स्थापित है।

काशी विश्व के प्राचीनतम शहरों में से एक माना जाता है, जिसकी प्राचीनता लगभग 5000 वर्ष पुरानी है। इसका उल्लेख भारतीय धार्मिक ग्रन्थों, वैदिक साहित्य तथा पुराणों में भी मिलता है। वही अंगकोर कम्बोडिया में स्थित एक प्राचीन धार्मिक स्थल है। जो कि 9वीं से 15वीं शताब्दी तक फला-फूला।

अंगकोर और काशी दोनों स्थानों का विश्व इतिहास और संस्कृति में एक विशिष्ट स्थान है। और इसका तुलनात्मक विश्लेषण हमें यह समझने में मद्द करता है कि कैसे दो पृथक भौगोलिक क्षेत्रों में भारतीय धर्म संस्कृति एवं कला का विकास हुआ एवं स्थानीय समुदाय के लोग सांस्कृतिक रूप से कैसे एक दूसरे से जुड़े हुए है। तथा दोनों क्षेत्रों में सांस्कृतिक समानता के मुख्य बिन्दु क्या हैं?

भारतीय धर्म एवं संस्कृति - भारतीय धर्म एवं संस्कृति सम्पूर्ण विश्व में अपनी समृद्ध परम्पराओं और मानवीय मूल्यों के कारण अद्वितीय स्थान रखती हैं। इसका प्रभाव न केवल भारत में बल्कि सम्पूर्ण विश्व में देखा जा सकता है।

* शोध छात्र, इतिहास विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ0प्र0)

Ph. No. : 8858955818, E-mail : anuragverma3051@gmail.com

भारत की सांस्कृतिक जड़े इसकी धार्मिक मान्यताओं, रीति-रिवाजों, त्यौहारों, संगीत, नृत्य, कला, वास्तुकला और साहित्य गहराई से जुड़ी हुई हैं। भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता इसकी विविधता में एकता है।

भारत विभिन्न धर्मों का उद्गम स्थल रहा है यहा हिन्दू, बौद्ध एवं जैन धर्मों का उदय हुआ। भारत जिसकी पहचान उसकी विविधताओं एवं समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर से होती है। भारतीय धर्म एवं संस्कृति का विकास हजारों वर्षों से होता आ रहा है। धर्म एवं संस्कृति एक दूसरे का अभिन्न अंग है। धार्मिक कृत्य में संस्कृति औपचारिक होती है, जबकि सांस्कृतिक कृत्य में धार्मिकता मूलभूत होती है।[1]

भारतीय धर्म एवं संस्कृति अपने उदारवादी स्वरूप के कारण विभिन्न संस्कृतियों को अपने भौगोलिक क्षेत्र में आत्मसात किया है तथा इसी क्रम में भारतीय उपमहाद्वीप के भौगोलिक क्षेत्र के बाहर भी भारतीय संस्कृति एवं धार्मिक सभ्यता फली-फूली उदाहरण के रूप में दक्षिण-पूर्वएशिया में भारतीय संस्कृति, धर्म एवं कला का प्रसार देखने को मिलता है जिसमे भारतीय संस्कृति, हिन्दू तथा बौद्ध धर्म के साथ-साथ भारतीय वास्तुकला, मंदिरों तथा अन्य धार्मिक स्थलों में भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता की झलक स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है।

काशी के परिपेक्ष्य में अंगकोर क्षेत्र में भारतीय संस्कृति

काशी तथा कम्बोडिया का अंगकोर क्षेत्र दोनों ही प्रारम्भिक समय से धार्मिक आस्था का केन्द्र रहे है। भारत में स्थित काशी तथा कम्बोडिया में स्थित अंगकोर का क्षेत्र प्राचीन काल से ही हिन्दू तथा बौद्ध संस्कृति को अपने क्षेत्र में आत्मसात किये हुए है। जहाँ काशी की संस्कृति गंगा के विशाल मैदानों में विकसित हुई वहीं अंगकोरियन संस्कृति मेकांग नदी के किनारे फली-फूली अंगकोरियन क्षेत्र में बहने वाली मेकांग नदी को माँ गंगा का अपभ्रंश कहने में कोई अतिश्योक्ति नहीं होनी चाहिए क्योंकि प्राचीन कम्बोडिया में भारतीय तत्वों के द्वारा अंगकोर (कम्बुज) क्षेत्र में भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का प्रचार-प्रसार किया गया, इन भारतीय तत्वों में भारतीय व्यापारी, विभिन्न शासक तथा प्रशासन से सम्बन्धित व्यक्ति एवं हिन्दू तथा बौद्ध धर्म से सम्बन्धित धार्मिक पुरोहित आते हैं।

इन भारतीय तत्वों के मध्यम से कम्बोडियाई समाज में क्रमिक रूप से भारतीय संस्कृति का प्रचार-प्रसार हुआ। कम्बोडियाई समाज द्वारा भारतीय संस्कृति के उन्नत स्वरूप को कम्बोडियाई धर्म, समाज, कानून तथा प्रशासनिक व्यवस्था में अपनाया गया। भारतीय संस्कृति के यह सभी तत्व कम्बोडियाई समाज द्वारा स्थानीय परिस्थितियों और पृष्ठभूमि के अनुरूप संशलेषित कर अपने समुदाय में आत्मसात किये गये।[2]

जिस प्रकार काशी में सर्वोच्च सत्ता के रूप में हिन्दू देवताओं में भगवान शिव को मान्यता दी गयी है। उसी प्रकार कम्बोडिया के अंगकोर क्षेत्र में जयवर्मन द्वितीय ने देवराज पंथ के माध्यम से अंगकोर क्षेत्र में भगवान शिव के लिंग की स्थापना की तथा राज्य की राजधानी को ब्राह्मण की प्रतिकृति के रूप में स्थापित कराया, जिसके अन्तर्गत सम्पूर्ण राजधानी एक चहारदीवारी तथा एक खाई से घिरी होती थी। खाई के बीच में एक जलराशि होती थी तथा राजधानी के मध्य में एक मंदिर स्थापित होता था जिसमें शिवलिंग स्थापित किया जाता था। इस स्थापत्य या वास्तु का अभिप्राय था कि चहारदीवारी ब्रह्माण के चट्टान जबकि खाई के मध्य स्थित जलराशि विशाल समुद्र तथा राजधानी के मध्य में स्थित मंदिर जो कि एक पर्वत पर स्थापित था इसे मेरू पर्वत की प्रतिक्रति माना जाता था।[3]

अर्थात् काशी की भाँति अंगकोर क्षेत्र में भी भगवान शिव की महत्ता परिलक्षित होती है। अंगकोर की स्थापना के समय कम्बोडिया में हिन्दू धर्म मुख्य धर्म हुआ करता था। कम्बोडिया के क्षेत्र में हमें हिन्दू धर्म से सम्बन्धित साक्ष्य स्पष्ट रूप से प्रारम्भिक काल से ही दिखाई पड़ते है। हिन्दू धर्म कम्बोडिया में ग्यारहवीं शताब्दी तक मुख्य धर्म के रूप में था, लेकिन इसके समानान्तर सीमित क्षेत्रों में बौद्ध धर्म भी विद्यमान था। परन्तु ग्यारहवी शताब्दी के बाद शासक जयवर्मन सप्तम् के समय में अंगकोर साम्राज्य में बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार प्रारम्भ हुआ। जो कि कम्बोडिया का आज मुख्य धर्म बना हुआ है।

काशी (आधुनिक वाराणसी) में सारनाथ स्थल बौद्ध काल से ही बौद्ध धर्म का प्रमुख केन्द्र रहा है। महात्माबुद्ध ने ज्ञान प्राप्ति के बाद सर्वप्रथम अपना उपदेश सारनाथ में ही दिया था, जिसे बौद्ध साहित्य में धर्मचक्रप्रवर्तन के नाम से जाना जाता है।[4]

काशी (सारनाथ) और अंगकोर (कम्बोडिया) की बौद्ध धर्म के प्रति आस्था बहुत प्रबल रूप से स्थापित है। दोनों क्षेत्रों में एक दूसरे के सामाजिक समायोजन एवं सांस्कृतिक आदान-प्रदान से बन्धुत्व की भावना जागृत होती है। हमारे द्वारा फिल्ड विजिट के दौरान हमने पाया कि काशी में स्थित सारनाथ में भगवान बुद्ध से सम्बन्धित सांस्कृतिक एवं धार्मिक स्थल होने के कारण कम्बोडिया के बौद्ध भिच्छुओं द्वारा सारनाथ में स्थापित कम्बोडियाई बौद्ध मठ आज भी उनके द्वारा संचालित किया जाता है। जहाँ कम्बोडियाई बौद्ध भिच्छु निवास करते है और सद्भावपूर्ण तरीके से थेरवादी बौद्ध धर्म के नियम व आचरण का अनुपालन करते है।

काशी तथा अंगकोर में इन समानताओं के अतिरिक्त अन्य धार्मिक अथवा सांस्कृतिक समानताएँ भी देखने को मिलती हैं। जिनमें विभिन्न अवसरों पर लगने वाले मेले, भाषा तथा धार्मिक ग्रन्थों एवं अन्य सांस्कृतिक उत्सवों का समायोजन अंगकोर क्षेत्र में देखने को मिलता है।

काशी की तरह ही अंगकोर क्षेत्र में मेले सांस्कृतिक उत्सवों का रूप है। जिनमें विभिन्न रंगमंचों का आयोजन किया जाता है। काशी मंे जिस प्रकार रामायण तथा भगवान राम की महत्ता है, उसी प्रकार कम्बोडिया में भी रामायण की अपनी लोक महत्ता स्थापित है। हिन्दू धर्म ने कम्बोडिया की धार्मिक एवं सांस्कृतिक विरासत को एक महत्वपूर्ण आकार दिया है। इसलिए कम्बोडिया में रामायण की प्रस्तुति एवं रामायण की सांस्कृतिक महत्ता को समझने के लिए अंगकोर सभ्यता के ऐतिहासिक एवं धार्मिक संदर्भों को समझने की आवश्यकता है।

कम्बोडिया में रामायण के संस्करण को 'रामकेरती' नाम से जाना जाता है जिसका अर्थ राम की महिमा है। कम्बोडियाई रामायण हालाँकि खमेर भाषा में है, जिसका मूल कथानक भारतीय रामायण के समान है, लेकिन इसमें कई स्थानीय और सांस्कृतिक तत्व भी देखने को मिलते हैं।

काशी की तरह कम्बोडिया के अंगकोर में भी रामायण (रैमकेर) नृत्य संगीत तथा नाट्य माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है।[5] काशी में रामायण की नाट्य प्रस्तुति को रामलीला के नाम से सम्बोधित किया जाता है। रामायण के पाठ में आने वाले प्रमुख स्थानों को, अयोध्या, जनकपुर, चित्रकूट और किष्किंद्धा का नाम स्थानीय स्तर पर काल्पनिक रूप से दिये जाते है।[6]

काशी की ही भाँति रैमकोर या रामायण का जो प्रदर्शन कम्बोडिया में होता है। उसकी उत्पत्ति प्री0 अंगोरियन काल में हुई थी। इसका प्राथमिक स्रोत लोर- लाई शिलालेख है[7] इस समारोह का नेतृत्व राजपरिवार द्वारा किया जाता रहा है। इसलिए अंगकोर में होने वाले रामायण का नृत्य और संगीत के रूप में प्रदर्शन को रायल बैलेट कहा जाता है।[8] इस प्रदर्शन में कलाकारों को संवाद के रूप में शारीरिक इशारों की भाषा का प्रयोग किया जाता है, इनके वस्त्र भी रामायण के पात्रों के अनुसार होते हैं। उदाहरण के लिए राम का वस्त्र नीला, सीता का वस्त्र सफेद तथा लक्ष्मण के वस्त्र स्वर्ण रंग के होते हैं।[9]

अंगकोर काल में ऐतिहासिक काल में मुखौटा नृत्य जिसे लखोन खोल नृत्य भी कहा जाता है, इसके अतिरिक्त अंगकोर में खमेर छाया नृत्य के माध्यम से रामायण या रैमकेर की प्रस्तुति की जाती है। इसके अतिरिक्त किसी प्रकोप प्राकृतिक आपदा या महामारी से बचने के लिए ग्रामीण अंचलों में भी रामायण की ही विषय-वस्तु से सम्बन्धित अन्य लोक नृत्य या नाटक भी प्रदर्शित किये जाते है।[10]

इसके अतिरिक्त कम्बोडिया के प्रसिद्ध अंगकोरवाट मंदिर में रामायण एवं महाभारत के विभिन्न दृश्यों को दर्शाया गया है, जो कि इस महाकाव्य के महत्ता को दर्शाते हैं। अंगकोरवाट की दीवारों पर राम और रावण के युद्ध, राम द्वारा सीता की खोज, हनुमान की वीरता जैसे दृश्यों के साथ-साथ रामायण और महाभारत के अन्य महत्वपूर्ण दृश्यों को अंगकोरवाट की दीवारों पर अंकित किया गया है।[11]

काशी को आनन्द कानन काशी, या पौराणिक काशी भी कहा जाता है। क्योंकि काशी में भूतकाल पर जितनी दृष्टि डाली जायेगी वह उतनी ही धूमिल होती जायेगी काशी का उद्गम पहेलियों से घिरा हुआ है तथा पौराणिक कथाओं ने उसे और रहस्यमय बना दिया है। समस्त पौराणिक कथाएँ एक से बढ़कर एक है, इसलिए पौराणिक कथाओं को वास्तविकता, कल्पना तथा यथार्थ से पृथक करना कठिन है।[12]

इसी तरह (कम्बोडिया) के अभिलेखों में भी बहुत से पौराणिक देवी देवताओं के सुतिपरक श्लोक या उनकी मूर्तियों को मंदिरों में प्रतिष्ठापित किये जाने का वर्णन है पौराणिक भारतीय धर्म से सम्बन्धित शायद ही कोई देवी-देवता हो जिसका उल्लेख अंगकोरियन अभिलेखों में विद्यमान न हो।

भारत के पौराणिक हिन्दू धर्म में कम्बोडिया देश में एक नये सम्प्रदाय का विकास हुआ जिसे देवराज या जगत्-ता-राजा कहते थे। कई सदियों तक यह अंगकोर का राजधर्म रहा। इसका प्रारम्भ नौवीं शताब्दी में हुआ था। इस सम्प्रदाय के बारे में जानकारी हमें स्दोक काक वोम अभिलेख से प्राप्त होती है।[13] इस सम्प्रदाय मंे पुराहितों के माध्यम से भगवान शिव के रूप की पूजा की जाती थी। यह देवराज भगवान अंगकोर के संरक्षक माने जाते थे।

देवराज भगवान काशी में भगवान शिव के ही एक अन्य रूप बाबा काल भैरव के समतुल्य प्रतीत होते हैं। प्राचीन पौराणिक मान्यता है कि बाबा काल भैरव विश्वनाथ की नगरी काशी के कोतवाल या संरक्षक की भाँति काशी की रक्षा करते है।

संदर्भ सूची

1. Morgan, J. (1977). Religion and Culture as Meaning Ssytems: A Dialoue between Geertz and Tillich. The Journal of Religion, p. 57(4).
2. Mishra, P.P. (2004). Sectional President's Address: A Discoursse on Indo-Southeast Asian Relations: Prejudices, Problems and Perception. Proceedings of the Indian History Congress, 65, pp. 912-945.
3. Sardesai, D.R. (1997), South-East Asia Past and Present, Harpercollins Publishers Iindia, p. 28-29.
4. सिंह उपेन्द्र (2017), प्राचीन एवं पूर्व मध्यकालीन भारत का इतिहास, पियर्सन इण्डिया एजुकेशन सर्विसेज प्रा0लि0, पृ0 323.
5. Sophearith Siyonn (2003). The life of the Ramayana in ancient Cambodia a study of the political religious and ethical role of an epic tale in real time (1) https://cdn.angkordatabase.asia/ libs/docs/publications/the-life-of-the-ramayana-in-ancient-cambodia-a-study-of-the-political-religious-and-ethical-roles-of-an-epic-tale-in-real-time/Siyonn-Sophearith-UDAYA06-07-2006-r.pdf, pp. 93-94.
6. Prinsep, J. (2009). Benares Illustrated. Pilgrims Publishing, p. 74.
7. शरण महेश कुमार (2014) कम्बोडिया के संस्कृत अभिलेख भाग-1, अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना नई दिल्ली, पृ0132
8. Leng Sirang (2023) Reamker Performance in Khmer Society. https://www.academia.edu/36956161/Reamer_Performance_in_khmer_Society_ English_Version#~:test=The%20performance%20spot%20of%20Reamker,and%20any%20big%20official%20ceremonies. Pp. 6-7.
9. Pov, S.(1997).Music and dance in ancient Cambodia as evidenced by Old Khmer epigraphy. East and West,47(1-4),pp.243-253.
10. Ibid, pp. 12-13
11. Sophearith Siyonn (2003). The life of the Ramayana in ancient Cambodia a study of the political religious and ethical role of an epic tale in real time (1) https://cdn.angkordatabase.asia/ libs/docs/publications/the-life-of-the-ramayana-in-ancient-cambodia-a-study-of-the-political-religious-and-ethical-roles-of-an-epic-tale-in-real-time/Siyonn-Sophearith-UDAYA06-07-2006-r.pdf, pp. 101-102.
12. चन्द्रमौली, के0 (2012), आनंद कानन काशी, पिलग्रिम्स पब्लिशिंग, पृ0 33
13. शरण महेश कुमार (2014), कम्बोडिया के संस्कृत अभिलेख भाग-1, अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना नई दिल्ली, पृ0 615

काशी का आधुनिकता की ओर परिवर्तनः एक शोध अध्ययन

दीपक कुमार कन्नौजिया*
डॉ. सनत कुमार शर्मा**

अमूर्त

काशी, जिसे वाराणसी के नाम से भी जाना जाता है, दुनिया के सबसे पुराने लगातार बसे शहरों में से एक है, जिसमें समृद्ध आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक परंपराएँ हैं। शहरी बुनियादी ढाँचे में सुधार, आर्थिक विकास को बढ़ावा देने और पर्यटन को बढ़ावा देने के उद्देश्य से आधुनिकीकरण पहलों के कारण हाल के दशकों में काशी में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। यह शोधपत्र काशी के आधुनिकता की ओर संक्रमण की जांच करता है, इसकी समृद्ध विरासत को संरक्षित करने और प्रौद्योगिकी, बुनियादी ढांचे और वाणिज्य में प्रगति को अपनाने के बीच संतुलन की जांच करता है। यह अध्ययन देखता है कि आधुनिकीकरण ने शहर के भौतिक और सांस्कृतिक परिदृश्य को कैसे नया रूप दिया है, साथ ही साथ इसकी ऐतिहासिक और आध्यात्मिक पहचान को संरक्षित करने की चुनौतियों का भी, सरकारी पहलों, सांस्कृतिक प्रभावों और आर्थिक विकास के विश्लेषण का उपयोग करके। काशी के परिवर्तन की जांच करके, यह शोधपत्र उन जटिलताओं पर प्रकाश डालता है जिनका सामना प्राचीन शहर आधुनिकता की ओर संक्रमण के दौरान करते हैं, विकास और परिवर्तन के बीच प्रामाणिकता बनाए रखने के लिए आवश्यक प्रयासों पर जोर देते हैं।

मुख्य शब्दः काशी, आधुनिकीकरण, पारंपरिक पहचान, बदलते आयाम, विविधता।

परिचय

गंगा नदी के तट पर स्थित काशी को भारत का आध्यात्मिक हृदय माना जाता है। हजारों वर्षों से, यह हिंदू धार्मिक प्रथाओं, शिक्षा, कला और संस्कृति के लिए एक महत्वपूर्ण केंद्र के रूप में कार्य करता रहा है। ऐतिहासिक रूप से, इसने दुनिया भर के विद्वानों, संतों, तीर्थयात्रियों और व्यापारियों को आकर्षित किया है। स्कंद पुराण में वर्णित काशी अपनी प्राचीन उत्पत्ति के बावजूद, काशी परिवर्तन की ताकतों से अछूती नहीं रही है। हाल के वर्षों में, नए बुनियादी ढाँचे, स्मार्ट सिटी परियोजनाओं और पर्यटक आकर्षणों को शामिल करके शहर को आधुनिक बनाने का एक ठोस प्रयास किया गया है। इस परिवर्तन ने परंपरा और आधुनिकता के संतुलन को लेकर गंभीर चिंताएँ पैदा की हैं। यह शोधपत्र शहरी विकास, आर्थिक परिवर्तनों, सांस्कृतिक संरक्षण और इस प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले सामाजिक-राजनीतिक कारकों पर ध्यान केंद्रित करते हुए काशी के चल रहे परिवर्तन की जाँच करता है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

काशी का इतिहास 3000 साल से भी ज्यादा पुराना है। इसका उल्लेख ऋग्वेद, रामायण और महाभारत के साथ-साथ बौद्ध और जैन धर्मग्रंथों सहित कई प्राचीन ग्रंथों में मिलता है। सदियों से, यह शिक्षा का केंद्र रहा है, खासकर संस्कृत, दर्शन और धर्मशास्त्र में। गंगा के किनारे घाट, मंदिर और संकरी गलियाँ शहर की स्थायी आध्यात्मिक विरासत के प्रतीक बन गए हैं। काशी ने मौर्य, गुप्त, मुगल और ब्रिटिश सहित कई राजवंशों का उत्थान और पतन देखा है। प्रत्येक युग में बनारस शहर ने सांस्कृतिक और स्थापत्य परिदृश्य पर अपनी छाप छोड़ी।

आधुनिकीकरण पहल

शहरी अवसंरचना और विकास

हाल के वर्षों में, काशी के अवसंरचना को आधुनिक बनाने का प्रयास किया गया है। भारत सरकार द्वारा शुरू किया गया स्मार्ट सिटी मिशन इस संबंध में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। इस पहल का उद्देश्य जल आपूर्ति, स्वच्छता, अपशिष्ट प्रबंधन और शहरी गतिशीलता जैसी बुनियादी सेवाओं में सुधार करना है। मल्टी-लेवल पार्किंग, सड़क चैड़ीकरण और घाट सौंदर्यीकरण जैसी परियोजनाओं के माध्यम से भीड़भाड़, प्रदूषण और पहुंच संबंधी मुद्दों को संबोधित किया गया है।

वाराणसी स्मार्ट सिटी परियोजना

वाराणसी स्मार्ट सिटी परियोजना, जो स्मार्ट सिटी पहल का हिस्सा है, का उद्देश्य निवासियों और पर्यटकों दोनों के लिए जीवन की गुणवत्ता में सुधार करना है। इसमें स्मार्ट निगरानी, वाई-फाई हॉटस्पॉट और ई-गवर्नेंस प्लेटफॉर्म जैसे डिजिटल प्रौद्योगिकी समाधानों का उपयोग शामिल है। एकीकृत कमांड और नियंत्रण केंद्र का निर्माण अधिक कुशल शहर संचालन प्रबंधन की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

सांस्कृतिक और विरासत संरक्षण

काशी के आधुनिकीकरण में सबसे कठिन चुनौतियों में से एक इसकी सांस्कृतिक और ऐतिहासिक विरासत को संरक्षित करना है। प्रतिष्ठित घाटों, मंदिरों और विरासत भवनों को बहाल करने और रखरखाव के प्रयास किए गए हैं। ''काशी विश्वनाथ कॉरिडोर'', एक प्रमुख पुनर्विकास परियोजना है, जिसका उद्देश्य घाटों को जोड़ने वाले एक चैड़े मार्ग का निर्माण करके काशी विश्वनाथ मंदिर तक पहुँच को बेहतर बनाना है। यह परियोजना विवादास्पद रही है क्योंकि इसमें पुरानी संरचनाओं को ध्वस्त करना शामिल है, जो शहर के ऐतिहासिक चरित्र को मिटाने के बारे में चिंताएँ पैदा करती है।

* शोध छात्र, समाजशास्त्रीय अध्ययन विभाग, दक्षिण बिहार केंद्रीय विश्वविद्यालय, गया
** एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्रीय अध्ययन विभाग, दक्षिण बिहार केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गया

पर्यटन विकास

हर साल लाखों तीर्थयात्री काशी आते हैं, जो लंबे समय से एक लोकप्रिय आध्यात्मिक पर्यटन स्थल रहा है। हाल के वर्षों में, सरकार ने काशी को वैश्विक पर्यटन स्थल के रूप में बढ़ावा देने को प्राथमिकता दी है। इसमें रेल और हवाई संपर्क जैसी परिवहन सुविधाओं में सुधार के साथ-साथ गंगा क्रूज पर्यटन क्षेत्र का विस्तार करना शामिल है। अंतरराष्ट्रीय आगंतुकों को आकर्षित करने और शहर की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत को उजागर करने के लिए गंगा महोत्सव जैसे त्योहारों को बढ़ावा दिया गया है।

आर्थिक परिवर्तन से नए व्यावसायिक अवसर पैदा होते हैं।

आधुनिकीकरण के प्रयासों के परिणामस्वरूप काशी में नए व्यावसायिक अवसर उभरे हैं। शहर ने आतिथ्य, खुदरा और सूचना प्रौद्योगिकी जैसे क्षेत्रों में वृद्धि देखी है। रेशम बुनाई जैसे पारंपरिक उद्योगों में भी स्थानीय शिल्प और कौशल को बढ़ावा देने वाली पहलों के कारण पुनरुत्थान देखा गया है। बौद्ध सर्किट, जिसमें सारनाथ भी शामिल है, से शहर की निकटता ने पर्यटन से संबंधित व्यवसायों को बढ़ावा देने में मदद की है।

सरकारी नीति और निवेश

"मेक इन इंडिया" पहल और काशी को व्यापार और पर्यटन केंद्र के रूप में विकसित करने के प्रयासों सहित विभिन्न सरकारी नीतियों के परिणामस्वरूप बुनियादी ढांचे और व्यवसाय में निवेश में वृद्धि हुई है। छोटे और मध्यम आकार के व्यवसायों, विशेष रूप से पारंपरिक शिल्प में लगे व्यवसायों को समर्थन देने पर विशेष जोर दिया गया है। इससे नए रोजगार के अवसर पैदा करने और स्थानीय समुदायों की आर्थिक स्थिति में सुधार करने में मदद मिली है।

साहित्य का पुनरावलोकन

Korpela, M. (2009). अध्ययन का निष्कर्ष है कि वाराणसी में पश्चिमी लोगों के बीच जीवनशैली प्रवास एक महत्वपूर्ण घटना है, जो जीवन की उच्च गुणवत्ता के साथ-साथ समुदाय और सामान्यता की भावना की इच्छा से चिह्नित है। अध्ययन का निष्कर्ष है कि वाराणसी का पश्चिमी समुदाय एक वैकल्पिक स्थान है जहाँ समान विचारधारा वाले लोग अपने आदर्शों को जीते हैं और अपनी बोहेमियन आकांक्षाओं को आगे बढ़ाते हैं।

Kumar, M., Mukherjee, N., Sharma, G. P., & Raghubanshi, A. S. (2010). अध्ययन का निष्कर्ष है कि शहरी नियोजन अवधारणाओं की आलोचनात्मक समीक्षा की जानी चाहिए, जिसमें शहरी वृक्ष आवरणध्हरित क्षेत्र के संरक्षण और प्रबंधन पर ध्यान केंद्रित किया जाना चाहिए। अध्ययन यह भी सुझाव देता है कि भूमि संसाधनों की योजना और प्रबंधन के लिए तकनीकों को एकीकृत और समग्र बनाया जाना चाहिए ताकि मानव उपयोग के लिए भूमि की दीर्घकालिक गुणवत्ता सुनिश्चित की जा सके।

शोध के उद्देश्य

काशी पर आधुनिकता के प्रभाव तथा काशी में आ प्राचीनता के कमी का अध्ययन करना ।

शोध के प्रश्न

क्या काशी अपनी प्राचीनता को खोता हुआ दिखाई दे रहा है ?
क्या काशी पर आधुनिकता का प्रभाव दिख रहा है ?
क्या बनारसियों के परंपरागत जीवन शैली में जीवन जीने के तरीकों में पहले की तुलना में अब कमी दिख रही है ?

शोध की कार्यप्रणाली

प्रस्तुत शोध पत्र में मात्रात्मक और गुणात्मक कार्यप्रणाली का उपयोग किया गया है, तथ्यों के एकत्रण के लिए प्राथमिक तथा शोधपत्र को लिखने के लिए द्वितीयक माध्यमो का भी उपयोग किया गया है । तथ्यों का एकत्रिकरण प्रश्नावली के माध्यम से सौ उत्तरदाताओं का चयन कर किया गया है, क्षेत्र चयन के अंतर्गत बनारस के घाट को लिया गया है। उत्तरदाताओं का चयन करते समय सरल दैव निदर्शन पद्धिति का उपयोग किया गया है । एकत्रित किए गए तथ्यों का वर्गीकरण तथा सारणीबद्ध किया गया है, जिसके पश्चात् विश्लेषण किया गया है । विश्लेषण करने के लिए उपयोग किए जाने वाले रिग्रेशन टूल आकड़ें, प्रश्नावली, पत्रिकाओं, पुस्तकों और वेबसाइटों से एकत्रित माध्यमिक तथ्यों के द्वारा किया गया है ।

उपरोक्त के आधार पर प्रश्नावली द्वारा एकत्रित तथ्यों के विश्लेषण करने के पश्चात् जो परिणाम आये हैं वो निम्नलिखित रूप से चार्ट के माध्यम से दर्शाएँ गए हैं ।

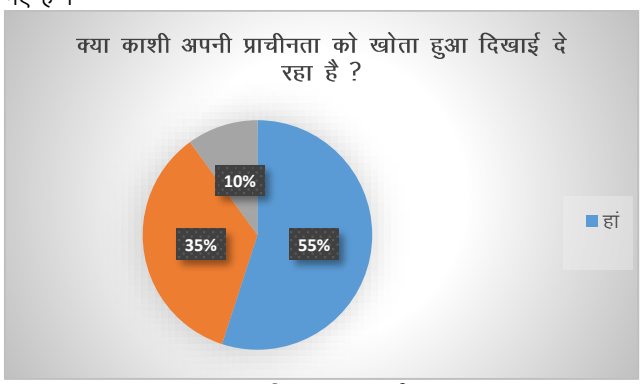

पहले प्रश्न का चार्ट

उपरोक्त तालिका में 100 उत्तरदाताओं द्वारा दिए गए उत्तर को दर्शाया गया है जिसमें बताया गया है कि क्या काशी अपनी प्राचीनता खो रही है। इस सर्वेक्षण में 55% उत्तरदाताओं का मानना है कि काशी अपना पारंपरिक आकर्षण खो रही, 35% है उत्तरदाताओं का मानना है कि यह अपनी प्राचीनता बरकरार रख रही है और उत्तरदाता इस पर अनिर्णीत हैं।

क्या काशी पर आधुनिकता का प्रभाव दिख रहा है?

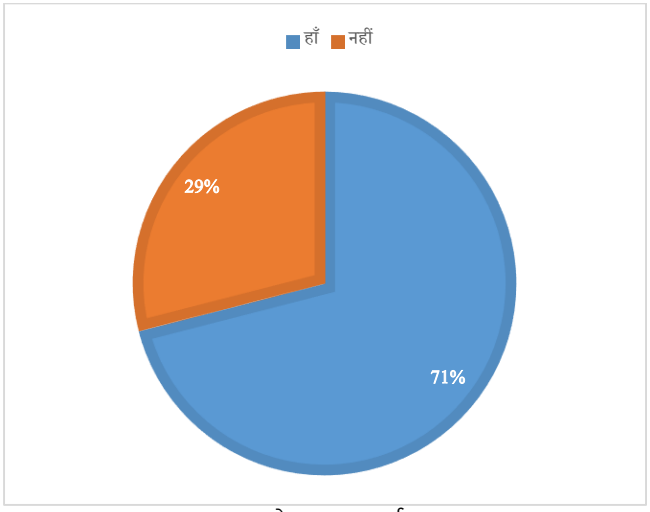

दुसरे प्रश्न का चार्ट

निम्न तालिका में काशी में आधुनिकता की मौजूदगी के बारे में 100 उत्तरदाताओं की प्रतिक्रिया को प्रदर्शित किया गई हैं। सर्वेक्षण में 71% उत्तरदाताओं का कहना है कि आधुनिकता दिख रही है, जबकि 29% उत्तरदाताओं का मानना है की कोई खास प्रभाव नहीं देखा। जिन उत्तरदाताओं ने आधुनिक बदलावों को देखा है, उनमें सबसे ज्यादा ध्यान देने वाले बिन्दुओं में बुनियादी ढाँचे का विकास (28%), व्यावसायीकरण (20%), पर्यटन में वृद्धि (14%) और आधुनिक सुविधाओं की मौजूदगी (9%) हैं।

क्या बनारसियों के परंपरागत जीवन शैली में जीवन जीने के तरीकों में पहले की तुलना में अब कमी दिख रही है ?

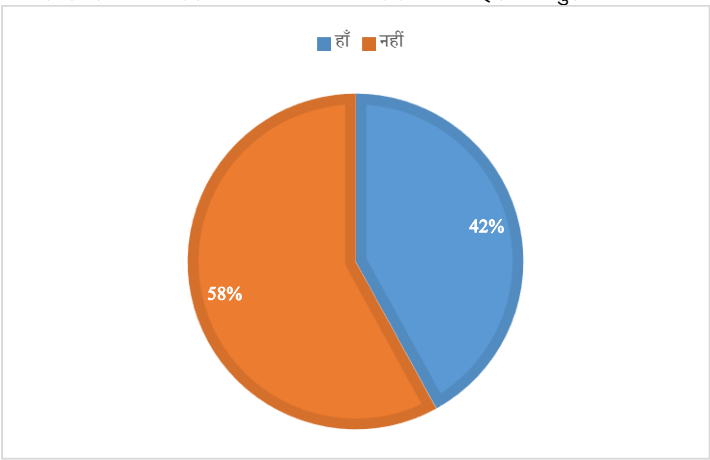

तीसरे प्रश्न का चार्ट

उपरोक्त दी गई तालिका में 100 उत्तरदाताओं की प्रतिक्रियाओं को दर्शाते हैं कि क्या बनारसियों की पारंपरिक जीवनशैली में गिरावट आई है। सभी उत्तरदाताओं के उत्तर से यह देखा गया की 58% उत्तरदाताओं ने पारंपरिक जीवनशैली में गिरावट देखीए जबकि 42% उत्तरदाताओं कि पारंपरिक जीवनशैली पारंपरिक रूप से कायम है। जिन उत्तरदाताओं ने गिरावट देखी, उनमें सबसे प्रमुख बदलावों में व्यवसायों में बदलाव (24%), आधुनिक पोशाक (14%), बदलती खाद्य आदतें (12%) और धार्मिक गतिविधियों में कमी (8%) शामिल थे।

सैद्धांतिक ढांचा

दुर्खाइम का ''सेक्रेड और प्रोफेन'' का सिद्धांत धार्मिक समाजशास्त्र का एक महत्वपूर्ण पहलू है, जो धर्म के मूल तत्वों को समझाने की कोशिश करता है। दुर्खाइम के अनुसार, किसी भी समाज में चीजों को दो भागों में बांटा जा सकता हैः सेक्रेड (पवित्र) और प्रोफेन (सांसारिक)। सेक्रेड का मतलब उन चीजों से है जिन्हें समाज में विशेष रूप से सम्मान, पवित्रता और भक्ति का प्रतीक माना जाता है, जैसे धार्मिक स्थलों, प्रतीकों, या परंपराओं को। प्रोफेन, इसके विपरीत, दैनिक जीवन से जुड़े साधारण और सांसारिक पहलुओं को संदर्भित करता है, जिनका कोई विशेष पवित्र महत्व नहीं होता।

काशी पर लागू करते हुए, इस शोधपत्र से हम यह देख सकते हैं कि शहर की पारंपरिक पहचान और धार्मिक स्थल, जैसे कि गंगा घाट और काशी विश्वनाथ मंदिर, समाज में सेक्रेड के रूप में स्थापित हैं, क्योंकि ये स्थान न केवल धार्मिक अनुष्ठानों के केंद्र हैं बल्कि सांस्कृतिक विरासत के प्रतीक भी हैं। आधुनिकता की ओर काशी के परिवर्तन ने इस सेक्रेड और प्रोफेन के बीच के संतुलन को चुनौती दी है। उदाहरण के लिए, स्मार्ट सिटी परियोजनाएं, बुनियादी ढांचे का विकास, और व्यावसायीकरण जैसी गतिविधियां एक प्रकार से प्रोफेन के अंतर्गत आती हैं, जो शहर के पारंपरिक सेक्रेड तत्वों के साथ संघर्ष उत्पन्न कर सकती हैं।

इस प्रकार, दुर्खाइम का सिद्धांत काशी में परंपरा और आधुनिकता के संतुलन को समझने में मदद करता है।

सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभाव

सांस्कृतिक संरक्षण की चुनौतियाँ

आधुनिकीकरण ने जहाँ अनेक लाभ प्रदान किए हैं, वहीं इसने सांस्कृतिक संरक्षण के लिए महत्वपूर्ण चुनौतियाँ भी पैदा की हैं। पर्यटकों की आमद, व्यावसायीकरण और बुनियादी ढाँचे में बदलाव ने पारंपरिक प्रथाओं और जीवन शैली के पतन के बारे में चिंताएँ बढ़ा दी हैं। पुराने मोहल्लों के पुनर्विकास और विरासत संरचनाओं के विनाश ने काशी की सांस्कृतिक पहचान के बारे में बहस छेड़ दी है।

परंपरा और आधुनिकता का संतुलन

काशी का परिवर्तन अपने पारंपरिक लोकाचार को संरक्षित करने और आधुनिकता को अपनाने के बीच एक जटिल संतुलन का प्रतिनिधित्व करता है। डिजिटल प्लेटफॉर्म के माध्यम से पारंपरिक संगीत, कला और शिल्प को डिजिटल बनाने और बढ़ावा देने के प्रयास इस बात के उदाहरण हैं कि शहर पुराने और नए को कैसे जोड़ने का प्रयास कर रहा है। युवा पीढ़ी को पारंपरिक कौशल सिखाने के लिए विभिन्न सांस्कृतिक उत्सव और पहल का उद्देश्य आधुनिकीकरण प्रक्रिया के दौरान शहर की विरासत को संरक्षित करना है।

निष्कर्ष

यह शोधपत्र आधुनिकता की ओर काशी की बहुआयामी यात्रा पर प्रकाश डालता है, जो ऐतिहासिक रूप से महत्वपूर्ण शहरों में शहरी परिवर्तन के साथ आने वाले परिवर्तनों और चुनौतियों के बारे में जानकारी प्रदान करता है। काशी का आधुनिकीकरण शहर की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक धरोहर के साथ आधुनिक सुविधाओं और विकास को संतुलित करने की एक जटिल प्रक्रिया है। यह शोधपत्र बताता है कि किस प्रकार आधुनिकता ने काशी में शहरी ढाँचे, आर्थिक अवसरों और पर्यटन को बढ़ावा दिया है, परंतु इसने शहर की पारंपरिक पहचान के संरक्षण को लेकर गंभीर चिंताएँ भी उत्पन्न की हैं। सर्वेक्षणों से यह ज्ञात होता है कि काशी की प्राचीनता पर आधुनिकता का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है, जिसमें विशेषकर लोगों की जीवनशैली और सांस्कृतिक परिवर्तनों की झलक मिलती है। इसके बावजूद, काशी के नागरिक अपनी सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखने के प्रति सजग हैं और शहर में एक संतुलन बनाए रखने का प्रयास किया जा रहा है।आधुनिकता की ओर काशी का परिवर्तन इसकी लचीलापन और अनुकूलनशीलता को दर्शाता है। आधुनिकीकरण ने बुनियादी ढांचे, अर्थव्यवस्था और कनेक्टिविटी में सुधार किया है, लेकिन इसने सांस्कृतिक और ऐतिहासिक विरासत की सुरक्षा के बारे में गंभीर चिंताएँ भी पैदा की हैं। काशी के दीर्घकालिक विकास के लिए परंपरा और आधुनिकता के बीच संतुलन की आवश्यकता है। आगे बढ़ते हुए, सरकार, स्थानीय समुदायों और सांस्कृतिक कार्यकर्ताओं सहित हितधारकों को यह सुनिश्चित करने के लिए सहयोग करना चाहिए कि काशी एक आधुनिक शहर के रूप में विकसित होते हुए अपनी विशिष्ट पहचान बनाए रखे।

सुझाव

- संवेदनशील शहरी विकास काशी के ऐतिहासिक भवनों, घाटों और धार्मिक स्थलों को ध्यान में रखते हुए विकास की प्रक्रिया को संवेदनशील तरीके से लागू किया जाए। इससे सांस्कृतिक धरोहर को हानि पहुँचाए बिना शहर का आधुनिकीकरण संभव हो सकेगा।
- बनारसी बोली कशी की निवासीयों के बोली में एक गजब का मिठास है, जिसमे सभी बनारस वासी बात-चीत के जरिये अपने आप को मस्त रखते हैं और काशी के बोली व्यंग और भौकाल काशी के बोली में ही देखने को मिल सकता इसे सहेजे रखना हर बनारसी का कर्तव्य होना चाहिए
- सांस्कृतिक संरक्षण योजनाएँ सांस्कृतिक और धार्मिक स्थलों के संरक्षण के लिए विशेष योजनाएँ बनाई जाएँ, जो स्थानीय परंपराओं और मूल्यों को सुरक्षित रखें और पर्यटन के कारण होने वाले व्यावसायीकरण से बचें।
- स्थानीय समुदाय की भागीदारी आधुनिकीकरण योजनाओं में स्थानीय समुदायों को शामिल किया जाए, ताकि उनके अनुभव और सुझावों का लाभ लेकर बेहतर परिणाम प्राप्त किए जा सकें।
- परंपरा और नवाचार का संतुलन स्थानीय कला, संगीत और शिल्प को डिजिटल प्लेटफॉर्म पर बढ़ावा दिया जाए ताकि युवा पीढ़ी इनमें रुचि ले सके और इस तरह परंपरा और आधुनिकता का संतुलन कायम हो।
- नियंत्रित पर्यटन पर्यटन को बढ़ावा देने के साथ ही इसके प्रभाव को नियंत्रित किया जाए, ताकि काशी की धार्मिक और सांस्कृतिक पहचान बरकरार रहे।

संदर्भ

भारत सरकारए (2020), वाराणसी स्मार्ट सिटी योजना, https://smartcities.gov.in से लिया गया ।

गुप्ता, ए. (2018), काशी की सांस्कृतिक विरासतः बदलती दुनिया में परंपराओं का संरक्षण, वाराणसीः हेरिटेज पब्लिशर्स।

शर्मा, पी. (2021), वाराणसी में शहरी विकास और आधुनिकीकरणः चुनौतियाँ और अवसर, नई दिल्लीः शहरी अध्ययन पत्रिका।

सिंह, आर. (2019), वाराणसी में पर्यटन का आर्थिक प्रभाव, इंडियन जर्नल ऑफ इकोनॉमिक्स, 74(3), 112-130.

Durkheim, É. (1912). *The Elementary Forms of Religious Life*.

Jha, P. K. (2016). *Varanasi: A Tale of Modernization and Heritage Conservation*. Indian Journal of Historical Research, 52(1), 45-62.

Kumar, S. (2010). *Varanasi: The Cultural Capital of India*. Cultural Studies Review, 16(2), 89-105.

Singh, Rana P.B. (2018) 'Urbanization in Varanasi and interfacing Historic Urban Landscapes'; a special lecture in the National Seminar on "Urbanization in Indian History": 5–6 January 2018, p.18 (accessed Aug 23 2020).

Korpela, M. (2009). *More vibes in India: Westerners in search of a better life in Varanasi*. Tampere University Press.

Kumar, M., Mukherjee, N., Sharma, G. P., & Raghubanshi, A. S. (2010). Land use patterns and urbanization in the holy city of Varanasi, India: a scenario. *Environmental monitoring and assessment*, *167*, 417-422.

Gesler, W. M., & Pierce, M. (2000). Hindu varanasi. *Geographical review*, *90*(2), 222-237.

Sukul, K. N. (1974). *Varanasi down the Ages*. Patna: Kameshwar Nath Sukul.

Agarwal, C. S. (1998). Study of drainage pattern through aerial data in Naugarh area of Varanasi district, UP. *Journal of the Indian Society of Remote Sensing*, *26*, 169-175.

Singh, R. P. (1997). Sacred space and pilgrimage in Hindu society: the case of Varanasi. *Sacred places, Sacred spaces: The geography of pilgrimages*, *34*, 191-207.

Meador, J. P., Stein, J. E., Reichert, W. L., & Varanasi, U. (1995). Bioaccumulation of polycyclic aromatic hydrocarbons by marine organisms. *Reviews of environmental contamination and toxicology*, *143*(1), 79-165.

Verma, A. K., Kumar, M., & Bussmann, R. W. (2007). Medicinal plants in an urban environment: the medicinal flora of Banares Hindu University, Varanasi, Uttar Pradesh. *Journal of Ethnobiology and Ethnomedicine*, *3*, 1-4.

वाराणसी में हथकरघा बुनाई परम्पराओं का ऐतिहासिक अध्ययन

जेबा मुमताज*

सारांश

वाराणसी भारत के सबसे प्राचीन नगरों में से एक है जो सदियों से चली आ रही एक प्राचीन हथकरघा बुनाई, मलमल, रेशमी वस्त्रों, इत्रों, हाथी दाँत और शिल्प कला के लिए व्यापारिक एवं औद्योगिक केन्द्र रहा है। यह अध्ययन ऐतिहासिक विकासक्रम को समझाने का प्रयास है जिसने वाराणसी की बुनाई परम्परा को आकार दिया तथा सांस्कृतिक, आर्थिक एवं सामाजिक कारकों के अंतरसम्बन्धों की खोज की। यह शोध पत्र स्थानीय बुनकरों, कारिगरों और उद्यमियों की बदलती स्थिति पर भी प्रकाश डालता है। अभिलेखीय शोध, नृवंशविज्ञान सम्बन्धी अवलोकन और बुनकरों के साक्षात्कार के माध्यम से प्राचीन काल से लेकर मुगल काल एवं ब्रिटिश औपनिवेशिक काल के मशीनीकृत वस्त्र उत्पादन एवं वर्तमान तक के विकास एवं गिरावट की समीक्षा करता है। यह अध्ययन हथकरघा बुनाई क्षेत्र पर उपनिवेशवाद, राष्ट्रवाद और वैश्वीकरण के प्रभाव का भी विश्लेषण करता है जो कि वाराणसी के बुनकरों के पुनरूत्थान और अनुकूलन क्षमता को प्रोत्साहित करता है।

मुख्य शब्द - वाराणसी, बुनाई परम्परा, वस्त्र इतिहास, सांस्कृतिक विरासत, बुनकर ।

बनारस अपने सामाजिक-आर्थिक एवं धार्मिक महत्व के लिए पूरी दुनियां में मशहूर है। यह शहर पुरे देश में ब्रोकेड बुनाई के रूप में उतना ही महत्वपूर्ण है। बुनाई उद्योग जो वैदिक काल के दौरान फला-फूला और मुगल काल के समय अपने चरम पर पहुंच गया। बुनाई का काम बनारस के लोगों के जीवन का अभिन्न अंग रहा है चाहे वह धार्मिक गतिविधि रही हो या आबादी के लिए आजिविका कमाना। बुनाई का काम अन्य सभी व्यवसायों से आगे निकल गया। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से वैदिक काल से कई तरह के वस्त्रों के सन्दर्भ मिलते। ऋग्वेद में हिरण्य नामक एक खास तरह के कपड़े का उल्लेख है जिसमें देवताओं और अन्य आकृतियों को सोने से बनाया जाता है। इस तरह के कपड़े को आज के ज़री के काम और किमखब के समान माना जाता है। पाली साहित्य में बनारस के वस्त्र निमार्ण के एक प्रतिष्ठित केन्द्र के रूप में संदर्भित किया जाता है, जो अपने कासिकुत्तम और कसिया के लिए प्रसिद्ध है। गुप्त काल (लगभग 350 से 500ई0) का एक बौद्ध संस्कृत ग्रन्थ दिव्यदान 'काशिका वस्त्र' काशी काशीकमसु इत्यादि नामक कपड़ों का सन्दर्भ देता है। एक अन्य बौद्ध ग्रन्थ ललित विस्तहर में भी काशिका कपड़ों से बने परिधानों का उल्लेख है। इन उत्तम और बढ़िया कपडों पर डिजाइन और पैटर्न में पुष्प और वनस्पति डिजाइन शामिल थे। जातक कथाए और पाली ग्रन्थ जैसे अन्य स्त्रोत भी बनुकारों के विकास और इतिहास उनकी तकनीक और वस्त्र के विकास और उसके विभिन्न रूपों का अध्ययन करने के लिए महत्वपूर्ण स्त्रोत बन गये। महापरिनिब्बान सुत्त के अनुसार परम्परा यह है कि बुद्ध के पार्थिव अवशेषों को बनारस में निर्मित वस्त्र में लपेटा गया था।[1] पतंजली के अनुसार शुगं काल (दूसरी से महली शताब्दी इसा पुर्व) में बने काशिका वस्त्र मथुरा में बने शाटक वस्त्रों से अधिक महंगे व अच्छे थे। मथुरा उस समय वस्त्र उद्योग का प्रमुख केन्द्र था। दामोदर गुप्त ने कुट्टनी मतम में उल्लेख किया है कि बनारस के धनी लोग सोने के तारों से बने वस्त्र पहनते थे। बैहाकी (11वी शती) द्वारा लिखित तारीख उस सुबुतगीन में बनारस के वस्त्रों का विशेष उल्लेख किया है क्योंकि सेना द्वारा लूटी जाने वाली वस्तुओं में बनारसी वस्त्र प्रमुख थे। बनारस के शर्की शासन में आने के पश्चात यहां के उद्योगों को बढ़ावा मिला और उनके द्वारा नामित सूबेदार मुहम्मद खलीस ने यहां के उद्योगों पर ध्यान दिया। संभवतः इनके नाम पर खालिसपुर मुहल्ले का नाम पड़ा जो बनारस के पुराने बुनकरों का क्षेत्र था। यह गंगा के किनारे बसा क्षेत्र है। बनारस अपने महीन सूती वस्त्रों के लिए प्रसिद्ध था जिनको बुनने के लिए वातावरण में नमी की आवश्यकता होती थी। अतः बुनकर प्रायः गंगा किनारे अथवा तालाब के किनारे ही वास करते थे।[2]

इतिहासकारों के अनुसार अकबर का युग भारतीय उपमहाद्वीप में समृद्धि और स्थिरता फैलाने का काल था। इसके अलावा सम्राट अकबर की यूरोपीय लोगों के प्रति रूचि और जिज्ञासा भी थी जिसके परिणामस्वरूप भारतीय कपड़ा उद्योग में सुधार हुआ। अबुल फजल की आइन-ए-अकबरी में विभिन्न प्रकार के वस्त्रों और उनके विकास के लिए अकबर द्वारा उठाये गये कदमों के बारे में बहुत सारी जानकारी दी गई है। विकास की यह स्थिति बनारस के वस्त्र उद्योग के लिए भी नए रास्ते खोल रही

* सामाजिक विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ०प्र०) Ph.No.:9695517084, E-mail : zebamumtazbhu@.com

थी। अकबर के समय बनारस खासा मलमल की एक श्रेणी झोना और मिहिरकुल जैसे सूती वस्त्रों के उत्पादन में लगा हुआ था। इसके अलावा बनारस के बुनकारों द्वारा वस्तुओं का उत्पादन जहांगीर के काल में बढ़ रहा था क्योंकि आगरा में एक डच फैक्टर पेल्सर्ट ने रिपोर्ट दी थी कि इसमें पगड़ी, करधनी, गंगाजल और कई प्रकार के वस्त्र शामिल है।[3]

शाहजहां के समय में भी बनारस कमरबन्ध, साफा व महिलाओं के वस्त्रों के लिए प्रसिद्ध था। इसमें ओढ़नी और दुपट्टा आदि प्रमुख थे। 17वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से 19वीं शताब्दी के बीच आए यूरोपीय यात्रियों ने बनारस के वस्त्रों का उल्लेख किया, जैसे राल्फ फिंच (1585, 86), मीटर मुंडी (1632) एंव बैपटिस्ट टेवर्नियर (1665) आदि।[4] राल्फ फिंच (1583-91) के बताते है कि बनारस सूती वस्त्र उद्योग का एक सम्पन्न केन्द्र था हालांकी उन्होने यह भी कहा कि बनारस के बुनकरों ने मुगलों के लिए बड़ी संख्या में पगड़ियां बनाई। समकालीन चित्रों से हमें पता चलता है कि मुगल आमतौर पर अपनी पगड़ियों के लिए ज़री के कपड़े का इस्तेमाल करते थे। इसलिए उनके लेखों में बनारस के सम्पन्न रेशम उद्योग का पता चलता है। बनारस के एक यात्री पीटरमुंडी (1632) ने लिखा है कि विश्वनाथ मन्दिर में मिला। यह बनारस की जरी या ब्रोकेड का काम हो सकता है। 1665 ई0 बनारस की यात्रा करने वाल टैवर्नियर ने बनारस में भारत का सबसे ऊंचा घर देखा जो 17वीं शताब्दी के दौरान बनारस में देखी गई समृद्धि की ऊँचाई को दर्शाता है। उन्होंने बनारस में एक करवां सराय देखी जहां बुनकर सीधे अपने उत्पादन समुहां को बेचते थे और व्यापार में कोई बिचौलिया नहीं था। उन्होंने व्यापार में सूती और रेशमी दोनों तरह के कपड़ों का उल्लेख किया जिन पर शाही मुहरों के रूप में गुणवत्ता ग्रेडिंग होता था। जिसके पास यह न होने पर व्यापारियों को कोड़े मारे जाते थे। उपरोक्त विवरण से आमतौर पर यह माना जाता है कि टैवर्नियर ने बनारसी साड़ी ज़री और ब्राकेड देखे थे। हालांकि बनारस के बिन्दुमाधव मन्दिर का वर्णन करते हुए टैवर्नियर न बताया कि पवित्र चबुतरे पर उन्होंने ब्रोकेड और अन्य रेशमी वस्त्र देखे। सम्भवतः वे बनारस में बने थे। मनुची ने अपनी प्रसिद्ध यात्रा-पुस्तक स्टोरिया डी मोगोर में दर्ज किया है कि बनारस दुनिया भर में अपने सोने या चांदी के ज़री वस्त्रों का निर्यात करता था जो सबसे अच्छी गुणवत्ता के थे।

हालांकि बनारस रेशम उद्योग के बारे में प्राचीन और मुगल का वर्णन पूर्ण नहीं है जैसा कि बनारस पहले अपने सूती वस्त्रों के लिए प्रसिद्ध था फिर धीरे-धीरे सूती वस्त्र का स्थान रेशमी वस्त्रों ने ले लिया अब रेशम का स्थान सिंथेटिक कृत्रिम धागा ले रहें है। रेशम के अधिक प्रयोग का एक कारण यह हो सकता है कि ब्रिटिश साम्राज्य की राजधानी कोलकाता होने के कारण यहां वस्त्र उद्योग में प्रयोग होने वाले कच्चे माल का आयात आसान हो गया था एवं आयातित सस्ते ब्रिटिश सूती वस्त्र, भारत के सूती वस्त्र उद्योग को प्रभावित कर रहे थे अतः बनारस के कारिगरों ने अपने उद्योग को बचाने के लिए रेशम का अधिकतम उपयोग शुरू किया।[5] विस्काउण्ट वैलेंटिया मुगल काल के बाद के ऐतिहासिक साक्ष्य समकालीन इतिहास में बनारस रेशम उद्योग के आस्तित्व और महत्व को स्पष्ट रूप से साबित करते हैं। उन्होंने अपनी यात्रा वृतान्त में 19वीं सदी की शुरूआत में बनारस के वस्त्रों के बारे में एक दरबार आयोजित किया, कुछ कपड़ा व्यापारी भी दरबार में शामिल हुए और ज़री एवं ब्रोकेड के कुछ बहुत अच्छे नमूने प्रदर्शित किए। वैलेंटिया ने टिप्पणी कि ब्रोकेड में करीबी पैटर्न दिखाई देते है और वे काफी महंगे थे इसलिए उन्हें केवल महत्वपूर्ण अवसरों पर ही पहना जाता था। बैलेंटिया ने सही कहा कि बनारस के लोगों की समृद्धि मुख्या रूप से इसके ब्रोकेड और ज़री निर्माण और व्यापार पर टिकी हुई थी क्योंकि ये वस्त्र यूरोप को निर्यात की जाने वाली लोकप्रिय वस्तुएं थी। वैलेंटिया ने न केवल बनारस के रेशमी उद्योग के ऐतिहासिक अस्तित्व को दर्शाया बल्कि यह भी बताया कि उस काल में लोगों का सामाजिक आर्थिक पहलु वस्त्र उद्योग से कैसे प्रभावित था। इसके तुरंत बाद अपनी जनगणना रिपोर्ट में बनारस के तत्कालीन कलेक्टर श्री ड्वेंस ने बनारस में कई प्रकार के कारिगरों को दर्ज किया। इनकी रिपोर्ट में मुस्लिम बुनकर (कालीन बुनकर) और राजपूत बुनकारों का उल्लेख है जो कई प्रकार के जरी और ब्रोकेड का उत्पादन करते थे। 1847 ई0 में बनारस की एक यात्री श्रीमती कॉलिनमास्केंजी ने बनारस के ज़री एवं और ब्रोकेड के बारे में रोचक जानकारी दर्ज की है। उन्होंने वर्णन किया कि एक भारतीय राजकुमार जो उनके दल में आया था उसने सोने के कपड़े की चौड़ी पतलून या ब्रोकेड पहना था। यह बनारस के कुलीन वर्ग के बीच बहुत लोकप्रिय प्रतीत होता है।[6]

बनारस में औपनिवेशिक काल में राजनीतिक उथल-पुथल के कारण यहां का वस्त्र उद्योग भी प्रभावित हुआ। बनारस के वस्त्र उद्योग के विकास के लिए औपनिवेशिक काल में ब्रिटिश सरकार द्वारा कई तथाकथित प्रयास किया गया। संयुक्त प्रान्त के लोफ्टिनेंट गवर्नर सर जॉन हेवेट ने 31 अगस्त 1907 को नैनीताल में आयोजित प्रान्त में औद्योगिक विकास पर एक सम्मेलन में बुनाई प्रशिक्षण स्कूल खोलने का विचार रखा। सम्मेलन ने सिफारिश की कि सरकार बुनाई उद्योग में हस्तक्षेप करें। जवाब में सरकार ने एक प्रयोगात्यक कपास बुनाई स्टेशन स्थापित किया। इस बुनाई स्टेशन पर श्रमिकों को दैनिक मजदूरी का भूगतान

किया जाता था। शुल्क का भुगतान करने वाले छात्रों को प्रवेश दिया जाता था। शुल्क का भुगतान करने वाले प्रशिक्षिओं के लिए एक स्कूल भी स्थापित हुआ।[7] बुनाई उद्योगों की विफलता बुनकारों की रूढ़िवादिता और राज्य के हस्तक्षेपवादी दृष्टिकोण से कही अधिक कारण थे। 1912-13 में प्राय योगिक बुनाई स्कूल का बनारस के प्रधाना अध्यापक ने छः महीने के अन्तराल में दो बार प्रत्येक स्कूल का दौरा करके संयुक्त प्रान्त के प्रत्येक स्कूलों का निरक्षण किया। निरक्षण समिति बुनाई स्कूलों को एक पूर्ण सफलता के रूप में देखने में असमर्थ थी।[8]

बनारस के सरकारी केन्द्रीय बुनाई संस्था ने उत्पादकता बढ़ाने के लिए विभिन्न प्रकार के करघों का प्रयोग किया जिसमें स्थानीय नवचार मोहाजीत करघे भी शमिल थे। हालांकि चिरईगांव के हेड मुदर्रिस (शिक्षक) द्वारका सिंह के एक पत्र से पता चलता है कि धन की कमी के कारण स्थानीय मोहाजीत को बेहतर बनाने पर आगे काम जारी नहीं रखा जा सका।[9] औपनिवेशिक सरकार ने तकनीकी शिक्षा पर सीमित दृष्टिकोण अपनाया जिससे बुनाई उद्योग और समुदायों के समग्र सन्दर्भ पर ध्यान नहीं दिया गया। आधुनिक ज्ञान का प्रदर्शन करने लिए ब्रिटेन में शिल्प आन्दोलन कला प्रदर्शनियों का उपयोग उपभोकता की आदतों और सार्वजनिक पसंद को आकार देने के लिए किया गया। संयुक्त प्रान्त के हथकरघा बुनकरों के कौशल का पहला ऐसा प्रदर्शन 1835 की लखनऊ प्रदर्शनी में हुआ इसमें मऊ के रहने वाले बुनकर शामिल थे। आधुनिक तकनीकों और बुनाई कौशल के बीच एक और ऐसा ही संवाद 1902 में देखने को मिला जब बनारस के बुनकरों ने दिल्ली में एक औद्योगिक प्रदर्शनी में अपनी तकनीकों के साथ अपनी ब्रोकेड और साड़िया पेश की। बनारस के रेशम बुनकर सहकारी संघ ने भी हरदोई और सुल्तानपुर की वार्षिक प्रदर्शनियों और मेरठ के नौचन्दी में अपना माल भेजा। 1905 के बनारस औद्योगिक प्रदर्शनी में फ्लाई शटल करघे का प्रदर्शन बनारस के बुनकरों के बीच साकारात्मक प्रतिक्रिया पैदा करने में असफल रहा। संयुक्त प्रान्त में सहकारी ऋण समितियों के रजिस्ट्रार जे०होप सिम्पसन' ने बनारस सिल्क वीवर्स को आपरेटिव सेट्रल एसोसिएशन लिमिटेड को उन्नत हथकरघा अनुभाग में आने वाले संघ के सदस्य मुक्त इस रियायत का लाभ उठाया और फ्लाई शटल करघों का सावधानीपुर्वक निरक्षण किया। हालांकि रेशम बुनकरों ने इन करघों को मन्जूरी नहीं दी।[10]

हथकरघा बुनकरों ने गांधी जी को चरखा और खादी प्रदान किया जो राष्ट्रवादी लामबन्दी का एक सशक्त प्रतीक था और स्वतन्त्रता के बाद कम से कम तीन दशक तक सरकारी योजना एवं नीतियों की प्राथमिकता बनी रही।[11] सरकार के प्रति स्वदेशी लोगों की प्रतिक्रियाए विभिन्न रूपों में समाने आई सबसे पहले बुनाई का आधुनिकीकरण राष्ट्रवादी पार्टी भारतीय राष्ट्री कांग्रेस ने माना कि भारत के स्वदेशी उद्योगों में गिरावट उसके स्वदेशी मुद्दे के तहत एक प्रमुख मुद्दा था। इसने तकनीकी शिक्षा की एक संगठित प्रणाली शुरू करने और पुराने उद्योगो को पुनर्जीवित करने और नये उद्योगों को अस्तित्व में लाने से पहले प्रारम्भिक उपाय के रूप में भारत का एक औद्योगिक सर्वेक्षण स्थापित करने की पैरवी की। जिसके परिणामस्वरूप 1905 में बनारस में आयोजित प्रथम औद्योगिक सम्मेलन में राव बहादुर रावजी भाई पटेल ने दुख व्यक्त किया कि भारतीय हथकरघा जैसा अब है वैसा ही है जैसा वह तीस शताब्दी पहले था।[12] 1922 में असहयोग आन्दोलन के दौरान बनारस में मुठिया संग्रह (अनाज दान) द्वारा समर्थित कताई स्कूलों की स्थापना की वकालत करते हुए एक गोपनीय पत्र प्रसारित किया था। कांग्रेस ने गांव में गांधी आश्रम के साथ कताई स्कूल शुरू किए। राष्ट्रवादी योजना का लक्ष्य हर दस गांव में एक हथकरघा बुनाई स्कूल खोलना था।[13]

वैश्वीकरण भारतीय हथकरघा उद्योग के लिए नये अवसर और चुनौतियां दोनों पेश करता है। एक तरफ उद्योग को नई तकनीकी निवेश और बाजार मिलते है, दूसरी ओर यह प्रतिस्पर्धी बाजारों के सामने अपनी महिमा और मांग भी खो देता है। 1990 के दशक में सुधारों के दौर ने सहकारी समितियों के माध्यम से हथकरघा में राज्य सहायता को कम कर दिया। हस्तशिल्प कुछ समय के लिए एक प्रमुख निर्यात के रूप में उभरा। बढ़ते अन्तर्राष्ट्रीय पर्यटन व्यवसाय ने हस्तशिल्प बाजारों और व्यापार को प्रोत्साहित किया। 2000 के दशक में मन्त्रलायों के भीतर शिल्प उद्योगों में निजी सार्वजनिक भागीदारी के पुनःनिर्माण की बात शुरू हुई। पुनर्विचार से उन हथकरघों को पुनर्जीवित करने की सम्भावना नहीं थी जो सब्सिडी के बीना असफल हो ही जाते। नया लहजा भी इतना निर्यात-उन्मुख था कि साड़ी बुनकारों के लिए अधिक मायने नहीं रखता था।[14] आकड़े बताते है कि सन् 1990 से बनारसी साड़ियों की मांग कम होनी शुरू हुई। वैश्विक उदारीकरण, मुक्त व्यापार सम्बन्धी समझौते, सरकारी नीतियां फैशन में बदलाव भारतीय फिल्मों द्वारा बनारसी साड़ी की जगह विवाह इत्यादि में लहंगा-चोली में नायिका को दिखाना और साड़ियों के अतिरिक्त अन्य उत्पादों से न जुड़ पाना वे प्रमुख कारण है जिनसे इस उद्योग की हानि हुई। सन् 1995 से 1998 तक तत्कालीन

देवगौड़ा सरकार वे घरेलू रेशम उद्योग को बढावा देने के लिए चीन से आने वाले रेशम के आयात पर प्रतिबन्ध लगा दिया। लेकिन इसका परिणाम बनारसी साड़ी उद्योग पर उलटा हुआ। अब यहां के व्यापारी बैंगलुरू सिल्क का व उपयोग करने लगे जिसकी किमत अधिक भी तो साड़ियों के मूल्य भी बढ़ गये। दूसरी तरफ प्रतिबन्धित चीनी सिल्क की स्मगलिंग होने लगी और व्यापारी स्थानीय बुनकरों से उसी सिल्क पर काम करा के बनारसी साड़ियों को ही मेड इन चाइना के नाम से बाजार में बेचने लगे जिनकी किमत वास्तविक बनारसी साड़ियों के मुकाबले काफी कम थी। यह और बड़े पैमाने पर 1999 के बाद शुरू हुआ जब सरकार ने चाईनीज़ प्लेन क्रेप फैब्रिक के आयात की अनुमति दे दी। यही कारण है कि भी रहा कि 2001-2005 के बीच चीनी सिल्क आयात 6500 प्रतिशत बढ़ गया। इसी कारण बनारसी साड़ियों का बाजार बिगाड़ने का खेल बदस्तूर जारी रहा है।[15]

पिछले कुछ सालों में तैयार साड़ियों की मांग में कमी आई है। 1990 के दशक के से अब तक मजदूरी आधी रह गई है। उस समय की तुलना में साड़ियों की गुणवत्ता में सुधार हुआ है। साथ ही पहले साड़ियां पांच मीटर की होती थी किन अब छः मीटर की हो गई है जबकि मजदूरी में कोई खास बढ़ोतरी नहीं हुई है। बिचौलिया और गद्दीदार उनकी कमाई पर परजीवी की तरह जी रहे है। एक तरफ ड्रीम शॉपकीपर बुनकरों को मुश्किल डिजाइन देते है और दूसरी तरफ दावा करते है कि तैयार माल के खरीदार नहीं है। बुनकरों की कमजोरी का इस्तमाल करके ऐसे बहाने अक्सर बुनकरों पर और शिकंजा कसने के लिए इस्तेमाल किए जाते है क्योंकि ऑर्डर की संख्या में कोई भी कमी उनकी पहले से ही कमजोर आर्थिक स्थिति को और खराब कर देती है। इस तरह बुनकरों पर काम पड़ने की जिम्मेदारी और बढ़ जाती है। इसके अलावा आजकल उनके पास अतिरिक्त कार्य भी है, जैसे जैक्वार्ड कार्बोर्ड डिजाइन काटना, जो पहले उनकी जिम्मेदारी नहीं थी। एक बुनकर सुबह 8:00 बजे से शाम 6:00 बजे तक 10 से 12 दिनों तक बैठता है और एक साड़ी पर लगभग 350 प्रतिशत रूप्य कमाया है जो इतने समय में तैयार हो जाती है। इस अवधि के दौरान वह अपने परिवार से मुख्य रूप से घर की महिलाओं से काम के लिए आवश्यक सभी नरी, ढरकी और अंटा भरने में मदद लेता है इस प्रकार उन्हे अवैतानिक श्रमिकों की स्थिति में ला देता है। महत्वपूर्ण होने के बाजदू बावजूद, इन कार्यों को वह दर्जा और मूल्य नहीं दिया जाता है जिसके वे हकदार है और आमतौर पर साड़ी श्रमिक मजदूरी तय करते समय इन्हे शामिल नहीं किया जाता है। वाराणसी के गांधी अध्ययन संस्थान की कार्यकर्ता और विचारक सुश्री मुनीज़ा खान के अनुसार, महिलाओं की दुर्दशा ऐसी है कि अगर वे 10 रूपय भी कमाती है तो उन्हे उसे खर्च करने का अधिकार नहीं है। वे मुर्गियों की तरह अंधेरी झोपड़ी में फंसकर काम करती है। उनके योगदान को वह मान्यता नहीं मिलती जिसकी वे हकदार है। उत्पादन का मूल्य निर्धारण करते समय उनके योगदान का हिसाब नहीं रखा जाता है। महिलाओं के साथ कोई काम नहीं किया गया है और इस क्षेत्र में किसी भी बदलाव के लिए उनकी शिक्षा, संगठन और उनके अधिकारों के लिए संघर्ष को सर्वोच्च प्राथमिकता देनी होगी[16] शहर के निवासियों का एक अच्छा प्रतिशत बनारसी साड़ियों के डिजाइन उत्पादन और ब्रिकी से जुड़ा हुआ है बल्कि यह एक ऐसा उद्योग भी है जहां हिन्दु और मुस्लिम समुदायों के बीच एक सहजीवी निर्भर रिश्ता है। वाराणसी के बुनकर मुस्लिम है मुख्य रूप से अन्सारी समुदाय से और व्यापारी हिन्दू है। बनारसी साड़ी की उत्पत्ति मुगल काल से हुई है जब सोने के धागों से बुने गये समृद्ध रेशमी वस्त्र बहुत लोकप्रिय हुए। सोने और चांदी से जुड़े फारसी रूपांकन मुगल संरक्षण के अवशेष है।[17] उत्कृष्ट बनारसी साड़ियों और ब्रोकेड में जटिल और विशिष्ट तकनीकों और डिजाइनों को उपयोग किया गया है जैसे शिकारगाह, नक्शाबंध, गंगा जमुनी, किमखाब जिन्हे कारीगरों द्वारा हथकरघे पर तैयार किया गया है। बनारसी शिकारगाह सिल्क साड़ियों की खासियत घोड़ों और हाथियों पर शिकारियों की एक अलग डिज़ाइन है। नक्श या जाल बनाना बनारस की एक पुरानी तकनीक है। अबुल फजल की आइन-ए-अकबरी नक्शबन्धों पर कुछ प्रकाश डालती है। बनारस सबसे प्रसिद्ध बुनाई केन्द्रों में से एक है जहां नक्शबन्ध बनाए एवं प्रयोग किये जाते है।[18] मुख्य बुनाई क्षेत्र जो आगतुको को देखने को मिलते है वे मदनपुरा और रेवरी तालाब है लेकिन असली केन्द्र शहर के उत्तर में आदमपुरा और जैतपुरा के वार्डों में स्थित है जहां लाखों लोग इस व्यापार से जुड़े है।[19] मदनपुरा और अलइपुरा कमशः ज़री और ब्रोकेड के निर्माण को नियन्त्रित करते थे लेकिन अब दोनों केन्द्र (कुछ अन्य नये क्षेत्रों के साथ) दोनों किस्मों का निर्माण करते है। बनारसी कपड़े की मांग ने निर्माताओं को बड़े पैमाने पर उत्पादन करने वाल पावरलूम का सहारा लेने के लिए प्रेरित किया। यह करघे न केवल एक समय में 2-3 फैब्रिक या उससे ज्यादा काम करते है बल्कि कुशलता से हथकरघे के समान कार्य करते है। वाराणसी की भूल भुलैया गलियों में खासकर विश्वनाथ गली में कपड़ो की दूकानों की कतारें लगी हुई है। चौक और गोदौलिया इलाकों में ये दुकानें पर्यटकों और शहरवासियों को समान रूप से आकर्षित करती है।[20] वर्तमान समय में वाराणसी का हथकरघा उद्योग हासिये पर आ गया है इनकी आर्थिक दुर्शदशा के जो प्रमुख कारण है वे निम्नालिखित है। नये धागे, आधुनिक मशीनें, सरकारी अनुदान का आभाव, तकनीक सुविधा, बदलता फैशन, अधिक लागत कम मुनाफा, कच्चे माल की कमी, चीन, ढाका एवं दक्षिण भारत के रेशम व्यवसाय से प्रतिस्पर्धा, बिचौलियों की मुनाफाखोरी, सरकारी योजनाओं की जानकारी न होना, सरकारी भ्रष्टाचार,

आधुनिकता से दूरी, बाजार का बदलता स्वरूप, कम मासिक आय, आश्रित बड़ा परिवार, आधुनिक शिक्षा पद्धति से दूरी, सरकारी बदलती नीतियां आदि।[21]

वाराणसी में हथकरघा बुनाई परम्पराओं का ऐतिहासिक अध्ययन सदियों तक फैली एक समृद्ध को प्रकट करता है। प्राचीन वैदिक काल से लेकर आज तक हथकरघा बुनाई वाराणसी के सांस्कृति, सामाजिक और ताने-बाने का एक अभिन्न अंग रही है। हथकरघा बुनाई वाराणसी की हिन्दु, बौद्ध और मुस्लिम विरासत से बहुत करीब से जुड़ी हुई है, जहां बुनकर पवित्र और औपचारिक उद्देश्यों के लिए खास तरह के वस्त्र निर्मित करते है। मुगल और ब्रिटिश साम्राज्यों ने वाराणसी में हथकरघा बुनाई को बढ़ावा देने और संरक्षण देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जिससे डिजाइन, तकनीक और व्यापार नेटवर्क प्रभावित हुए। मशीनीकृत वस्त्रों और वैश्विक व्यापार नेटवर्क प्रभावित हुए। मशीनीकृत वस्त्रों और वैश्विक व्यापार नेटवर्क की शुरूआत ने पारम्परिक हथकरघा बुनाई को बाधित कर दिया जिससे उद्योग में गिरावट आई। अनेक चुनौतियों का सामना करने के बावजूद वाराणसी में हथकरघा बुनाई का काम फल-फूल रहा है, जहां कई बुनकर पारम्परिक तकनीकों और डिजाइनों को संरक्षित करते हुए बदलती बाजार मांगों के अनुसार खुद को ढाल रहे हैं। अतः वाराणसी में हथकरघा बुनाई परम्पराओं को संरक्षित और बढ़ावा देने के लिए निरंतर सरकारी समर्थन और पुनरूद्वार करने का प्रयास आवश्यक है। यह अध्ययन वाराणसी में हथकरघा बुनाई के इतिहास और सांस्कृति महत्व का सामना करने लिए संरक्षण, नवाचार और अनुकूलन की आवश्यकता पर प्रकाश डालता है।

सन्दर्भ:

1. आदित्य प्रकाशन, कशी चित्रण: लिविंग हेरिटेज ऑफ़ वाराणसी, न्यू डेल्ही, 2021, पृ.-93.
2. केजरीवाल, ओमप्रकाश, काशी नगरी एक: रूप अनेक, प्रकाश विभाग, सुचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, 2017, पृ-260.
3. अंजुम, तबिना, द टेक्सटाइल इंडस्ट्री बनारसी: ए स्टडी ऑफ़ इट्स फार्मेशन एंड ग्रोथ (1600-1800), इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ रिसर्च सोशल साइंस, वा-7, न.-10, 2017, पृ. 232-239.
4. केजरीवाल, ओमप्रकाश, काशी नगरी एक: रूप अनेक, प्रकाश विभाग, सुचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, 2017, पृ-260.
5. वही, पृ-261.
6. मिनिस्ट्री ऑफ कॉमर्स एण्ड इंडस्ट्री यू.एन.सी.ए.डी. एंड डी.एफ.आई.डी, ड्रीम ऑफ विविंग: स्टडी एंड डॉक्यूमेंटेशन ऑफ बनारस साड़ी एण्ड ब्रोकेड, द टेक्सटाइल कमेटी गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, मुंबई एण्ड ह्यूमन वेलफेयर एसोसिएशन, वाराणसी, 2007, पृ-5.
7. राय, संतोष कुमार, कॉलोनियल नॉलेज इकोनामी हैंडलूम विवर इन अर्ली ट्वेंटीएंथ सेंचुरी यूनाइटेड प्रोविंसेस इंडिया, इंटरनेशनल रिव्यू ऑफ़ सोशल हिस्ट्री, वा-67, न.3, 2022, पृ.-435-465.
8. वही, पृ-450.
9. वही, पृ-451.
10. वही, पृ-453.
11. रमन,वसंती, द वर्ल्ड ऑफ़ द बनारस वीवर:ए कल्चर इन क्राइसिस,रोउटलेज, 2020,पृ-3.
12. राय, संतोष कुमार, कॉलोनियल नॉलेज इकोनामी हैंडलूम विवर इन अर्ली ट्वेंटीएंथ सेंचुरी यूनाइटेड प्रोविंसेस इंडिया, पृ-457.
13. वही, पृ-458.
14. रॉय, तीर्थंकर, द क्राफ्ट एंड कैपिटलिज्म: हैंडलूम वीविंग इंडस्ट्री इन कोलोनियल इण्डिया, रोउटलेज, 2020, पृ-160.
15. डा0 मिश्रा, मनीषकुमार सी० बनारस के बुनकरों की वर्तमान स्थिति. साहित्य कुंज, 2014.
16. मिनिस्ट्री ऑफ कॉमर्स एण्ड इंडस्ट्री यू.एन.सी.ए.डी. एंड डी.एफ.आई.डी, ड्रीम ऑफ विविंग: स्टडी एंड डॉक्यूमेंटेशन ऑफ बनारस साड़ी एण्ड ब्रोकेड, पृ-77.
17. सिन्हा, कुनाल, ए बनारसी ऑन वाराणसी, सृष्टि पब्लिशर्स, न्यू देल्ही, 2007, पृ-232.
18. आदित्य प्रकाशन, कशी चित्रण:लिविंग हेरिटेज ऑफ़ वाराणसी, न्यू डेल्ही, 2021, पृ.-94.
19. सिन्हा, कुनाल, ए बनारसी ऑन वाराणसी, सृष्टि पब्लिशर्स, न्यू देल्ही, 2007, पृ-235.
20. आदित्य प्रकाशन, कशी चित्रण:लिविंग हेरिटेज ऑफ़ वाराणसी, न्यू डेल्ही, 2021, पृ.-95.
21. डा0 मिश्रा, मनीषकुमार सी० बनारस के बुनकरों की वर्तमान स्थिति. साहित्य कुंज, 2014.

काशीः भारतीय संस्कृति और ज्ञान का शाश्वत केन्द्र

ज्योति मौर्या*

इस शोध पत्र में यह अध्ययन किया गया है कि काशी प्राचीनकाल से किस प्रकार भारतीय संस्कृति व ज्ञान का शाश्वत केन्द्र रहा है। यह अन्वेषण करता है कि काशी कैसे प्राचीन काल से संस्कृत, धर्म, प्रदर्शन, योग, अरबी, फारसी, संगीत कला व आयुर्वेद आदि सीखने का स्थान रहा और वर्तमान में भी विश्व को स्वयं की तरफ आकर्षित करता है।

अपने मंदिरो, घाटों, संतो व विभिन्न पंथों का शहर होने के साथ यह नगरी किस प्रकार भारतीय ज्ञान परम्परा में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है, इस पर विचार किया गया है। यह प्रपत्र चर्चा करता है कि कैसे बुद्ध, शंकराचार्य, कबीरदास, तुलसीदास व रविदास काशी के वैभवशाली ज्ञान परम्परा को आगे बढ़ाते है। वैसे तो काशी के इतिहास से लेकर संस्कृति और परंपरा तक कई अद्भूत पहलू है लेकिन शिक्षा का काशी से हमेशा ही अहम रिश्ता रहा है कई दार्शनिक कवि यहां आकर ज्ञान अर्जन करते थे जितेंद्र नंद सरस्वती के अनुसार इस शहर में सात विश्वविद्यालय, *40* डिग्री देने वाले कॉलेज और *1600* संस्कृत विद्यालय विद्यमान है। अतः अतीत से वर्तमान तक काशी विश्व के समक्ष किस प्रकार अपने सांस्कृतिक व ज्ञान के स्वरूप को प्रदर्शित करती है, यह शोध पत्र इस बात पर अपनी अंतदृष्टि प्रदान करता है।

प्रमुख शब्दः काशी भारतीय संस्कृति, ज्ञान केन्द्र, बुद्ध, तुलसीदास, वर्तमान शिक्षा, विश्व।

परिचयः-

काशी को अविमुक्त क्षेत्र, मुक्तिपुरी, महाश्मशान, आनंदवन व वाराणसी नामों से जाना जाता है। भारत की अध्यात्मिक व सांस्कृतिक राजधानी के साथ "शिव की नगरी" व "विधा की नगरी के रूप में प्रसिद्ध काशी भारत के सर्वप्राचीन नगरों में से एक है, जिसकी प्राचीनता उत्तर वैदिक काल तक जाती है, जहाँ अथर्ववेद व शतपथ ब्राहमण मे इसके उद्धरण प्राप्त होते है। आदि शंकराचार्य ने काशी के अर्थ के सन्दर्भ में एक संस्कृत श्लोक का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कहा कि काशी का शाब्दिक अर्थ है प्रकाश रौशनी का शहर अर्थात एक ऐसी नगरी जो अपनी संस्कृति व शिक्षा की महिमा के माध्यम से प्रकाशमान है। पुराणों में हमें तीन राज्यो वत्त के पौरव, कौशल के इक्ष्वाकु तथा मगध के शासक का विवरण प्राप्त होता है जिनके अधीन काशी रही। बौद्ध पाली त्रिपितक मुख्य रूप से जातक कथाओं में हमें महाजनपदकालिन काशी का विवरण प्राप्त होता है।

मार्क ट्वेन नामक अमेरिकी लेखक जो उन्नीसवीं सदी में भारत आये उन्होने काशी के सन्दर्भ में लिखा है कि, "काशी इतिहास से भी पुरानी है, परवेश से पुरानी है, यहां तक की किवदंतियों से भी पुरानी है और अगर इन सब को एक साथ जोड़ दिया जाए तो वह दोगुनी पुरानी है।"

मिर्जा गालिब ने एक पत्र में काशी के बारें में लिखा कि, "बनारस शहर के क्या कहने! अगर मैं इसे दुनिया के दिल का नुक्ता (बिंदु) कहूँ तो दुरूस्त है। ऐसा शहर कब पैदा हुआ? अपने जीवन के अंत में मैने इस शहर का दौरा किया। अगर मै जवान होता, तो मैं यही बस जाता और दिल्ली छोड़ देता।"

संतो व मंदिरों का शहर होने के साथ काशी जैन, बौध्द व सिखों के लिए भी अहम है। यह संस्कृत विधा, ज्योतिष, योग व पांरपरिक चिकित्सा का प्रमुख केन्द्र है।

यह शहर अपनी प्राचीनता, सर्वधर्मसमभाव की भावना, सामंजस्य, विरासत, मान्यताओं व मूल्यों के लिए ही तो प्रसिद्ध है, साथ ही शिक्षा के क्षेत्र में भी ये नगरी अग्रणी रही व आज भी ये अपने ज्ञान व दर्शन से विश्व को स्वयं की तरफ आकर्षित करती है।

शोध पत्र का उद्देश्यः-

प्राचीन काल से ही काशी संस्कृति व ज्ञान का एक शाश्वत केन्द्र रही है। धर्म, शिक्षा और व्यापार से काशी का घना सम्बन्ध होने के कारण इस नगरी का इतिहास केवल राजनीतिक इतिहास न रहकर एक ऐसी संस्कृति का इतिहास बन गया, जिसमें भारतीयता का पूरा दर्शन होता है। यह नगरी केवल हिन्दू धर्म का केन्द्र स्थल नही है, यहां महात्मा बुद्ध ने सारनाथ में अपना पहला धर्मोपदेश दिया, तीर्थंकर पार्श्वनाथ की जन्मस्थली होने से जैन धर्म के लिए भी यह नगरी महत्वपूर्ण हो गई। इनके अलावा कबीरदास व तुलसीदास जैसे विद्वान काशी के वैभव में चार चाँद लगाते नजर आते है।

काशी का शिक्षा से प्रारंभ से ही अटुट रिश्ता रहा है। यह नगर संस्कृत शिक्षा का केन्द्र था और यहाँ गुरुकुल शिक्षा पद्धति विद्यमान थी। हालांकि सभी को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार नहीं था लेकिन फिर भी यह नगरी अपने ज्योतिषी, संस्कृति, दर्शन, योग, अरबी, फारसी व आयुर्वेद के लिए प्रसिद्ध थी। उपनिषदों में काशी के शासक आजादशत्रु के दार्शनिक उपलब्धियों का विवरण प्राप्त होता है। अशोक के संरक्षण में काशी में सारनाथ मठ शिक्षा का एक प्रसिद्ध केन्द्र बन गया। पाणिनि (अष्ठाध्यायी के रचयिता), शंकराचार्य (हिंदू द्वैतवाद वेदांत के धार्मिक सुधारक), रामानुजाचार्य (वैष्णव धर्म गुरु), माधवाचार्य (व्दैतवाद वैष्णो गुरु), तुलसीदास व कबीर दास जैसे विद्वानों को काशी में ज्ञान प्राप्त हुआ। आगे चलकर गहडवाल वंश के शासको ने काशी को शिक्षा के केन्द्र के रूप में स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। धन्वंतरि (हिंदू पौराणिक कथाओं में देवताओं के चिकित्सक) का जन्म काशी में हुआ जिन्होंने विभिन्न अमृतमय औषधियों की खोज की और शल्य चिकित्सा का विश्व का पहला विद्यालय काशी में स्थापित किया व सुमूत को विज्ञान सिखाया। भक्ति आंदोलन में इस नगरी की महत्वपूर्ण भूमिका रही 1500 ई-1800 ई तक का काल उस नगरी के लिए शिक्षा के विकास की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण है।

काशी जनपद अपने व्यापार वाणिज्य के लिए अति प्रसिद्ध था यहां अनेक व्यापारिक श्रेणिया व निगम थे। वलाहस्थ जातक में हम वाराणसी के 500 व्यापारियों को तम्बपणि (लंका) के सिहिसवत्थु नामक नगर में पहुंचने का उल्लेख पाते हैं।

काशी के सूती वस्त्र अत्यधिक प्रसिद्ध था उनके दीर्घनिकाय के महापरिनिर्वाण सूत्र के अनुसार, "बुद्ध का मृत शरीर काशी के बने कपड़ों में लपेटा गया था और वह इतना महीन और मुलायम बुना गया था कि तेल तक नहीं सो सकता था।"

* **शोध छात्रा, मध्यकालीन व आधुनिक इतिहास विभाग, काशी नरेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय**, **महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ**, **वाराणसी, मोबाइल-** 7355353306, **ईमेल-** jyoti2m24@gmail.com

मौर्य वह शुंग युग काशी की कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण है इस समय भी कला का सम्बन्ध सारनाथ, भरहुत, सांची और बोधगया की कला से था। जातकों से जानकारी प्राप्त होती है कि महाजनपद काल में काशी में काठ का काम वह पत्थर का काम प्रचलित था। सारनाथ से प्राप्त हुई बोधिसत्व की मूर्ति काशी की कला का उत्कृष्ट नमूना है। यहां बोधिसत्व का जन्म पाषाण शिल्पी के रूप में हुआ है। इस कथा से पता चलता है कि व्यापक पैमाने पर पाषाण खण्डों से आकृतियों का मूर्तन शिल्पकारों द्वारा वाराणसी में किया जाता है। अतिनिश्चित जातक उल्लेख करता है कि काशी में बढ़ई ग्राम था जिसमें पांच सौ बढ़ई परिवार निवास करते थे। जातको में कुंभकारों का वर्णन भी मिलता है जो मृदमाण्ड का व्यापार करते थे।

साहित्य व कला के क्षेत्र में भी काशी अग्रणी रहा जैसा कि पहले से विदित है व्यापार के साथ काशी शिक्षा का भी केन्द्र रहा अतः यहां के विद्वानों ने अनेक कविताओं व नाटकों को लिखा। हालांकि हमें अधिकतर मौलिक रचनाओं के स्थान पर टिकाएं प्राप्त होती है। व्याकरण, वेदांत व धर्मशास्त्र यहां के विद्वानों के प्रमुख विषय थे। सत्रहवीं सदी में काशी में अनेक पंडित हुए जिनमें कुछ के नाम अधोलिखित है- नारायण भट्ट, मधुसूदन सरस्वती, पूर्णेन्दू सरस्वती, नीलकंठ भट्ट, माधव देव आदि। इस युग के काशी के सर्वश्रेष्ठ पंडित कवीद्राचार्य सरस्वती थे। इनका सम्बन्ध मुगल दरबार से था और यह दारा सिकोह के पंडित समाज के प्रधान थे।

ब्रज भाषा का काशी पर अत्यधिक प्रभाव रहा अतः ब्रज भाषा में यहां अनेक रचनाएं हुई। कवीद्राचार्य व रामानंद ने ब्रज व अवधि में अपनी रचना लिखी। लाल कवि जो काशी के राजा चेत सिंह के दरबारी कवि था उन्होंने रसमेल नामक ग्रन्थ लिखा। हरि प्रसाद ने चेत सिंह की आज्ञा से बिहारी सतसई का संस्कृत में अनुवाद किया, अग्रनारायण व वैष्णवदास ने प्रिया दास की टीका पर टिका लिखी। राजराज ने विकृत हर लिखा, इनकी लिखी एक रामायण भी मिलती है।

ऐसा लगता है कि संस्कृती का ऐसा कोई भाग नहीं जिसमें काशी ने अपनी श्रेष्ठता का परिचय ना लहराया हो प्राचीन से लेकर मध्यकाल तक यह अनवरक गति से आगे बढ़ता रहा। जब हम काशी के सांस्कृतिक इतिहास की बात करते हैं तो मानस पटल पर सर्वप्रथम मंदिरों व घाटों का चित्रण आता है। जो की आधुनिक समय में भी काशी की पहचान है। अपने शिक्षा व्यापार व साहित्य की तरह ही यहां के मंदिरों व घाटों का भी अपना इतिहास है। जिसे एक शोध पत्र में समाहित कर पाना बहुत ही दुष्कर कार्य है। जब काशी की घाटों का अध्ययन करते हैं तो ज्ञात होता है कि 1832 ई० तक अधिकतर घाट बन चुके थे। प्रमुख घाटों में मारकर्णिका घाट जो 1730 ई० में बनकर तैयार हुआ, तुलसीघाट, दशाश्वमेध घाट, शिवालघाट, मानमंदिर घाट, मीर घाट, भोसला घाट, मंगलगौरी घाट आदि है।

निष्कर्षः-

शोध पत्र में मेरा ध्यान प्राचीन काल से लेकर मध्यकाल तक काशी के शिक्षा व संस्कृति पर था। अपने शोध में मैंने पाया कि उत्तर वैदिक के बाद काशी में कैसे शिक्षा प्रणाली विकसित हुई व काशी शिक्षा का केन्द्र बना। इस शोध पत्र में काशी के सांस्कृतिक इतिहास पर कार्य किया गया है। किस प्रकार काशी में व्यापार व व्यापारिक संस्थानों की विवरण प्राप्त होते हैं, उनकी समाज में क्या स्थिति थी आदि का विश्लेषण किया गया। इस पत्र में हमने देखा कि काशी संस्कृत, धर्म, दर्शन, संस्कृति, संगीत, कला और शिल्प, चिकित्सा सीखने का स्थान था। अतः काशी शिक्षा व संस्कृति के रूप में स्थापित थी और आज भी है।

सन्दर्भ :-

- अल्टेकर, ए.एस, एजुकेशन इन एनसिएंट इंडिया, नंदकिशोर एंड ब्रास, बनारस, 1944 पृ. सं. 13 और 23.
- चन्द्र, मोती, काशी का इतिहास, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड, बम्बई, 1962 पृ.सं. 33,48 और 78.
- सिंह, अनुराधा, प्राचीन काशी का इतिहास एवम् संस्कृति, ल्यूमिनस बुक, वाराणसी, 2019 पृ. सं. 122
- मुखर्जी, आर.के, एंसिएंट इण्डियन एजुकेशन, मैकमिलन, बाम्बे, 1957 पृ. सं. 10
- सुकुल, कुबेर नाथ, वाराणसी टाउन द एजेस, वाराणसी भार्गव भाषण प्रकाशन, पटना, 1974, पृ0 सं. 33
- ग्रेल्स, एडविन, काफीः द इलस्टीरियस आर बनारस, द इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, 1909, पृ0 सं. 44
- मानव, शंभूनाथ, काशी का संक्षिप्त इतिहास, द भारतीय विद्या प्रकाशन, 1966, पृ0 सं0 9,10
- पाण्डेय, पूनम, 19 वीं सदी का बनारस, विलग्रिम्स पब्लिशिंग, वाराणसी, 2016, पृ0 सं0 6
- https://varanasi.nic.in/history/
- https://en.wikipedia.org/wiki/varanasi
- Varanasicity.com
- https:// knowindia.gov.in
- https://www.ssvv.ac.in
- Varanasi. About the city, official website of UP Tourism
- https.// www hinduwebsite. com/Hinduism/ Concepts/Kashisp

काशी के घाटों की आर्थिक संरचना तथा भारतीय सिनेमा में उसका चित्रण

मनीष कुमार यादव*

सारांश-

काशी, जो विश्व के प्राचीन जीवन्त नगरों में से एक है, अपने संस्कृति तथा जीवंतता को लेकर फिल्मकारों को काफी आकर्षित करता है। काशी की पृष्ठभूमि पर बनी मूक फ़िल्म हरिश्चंद्र से लेकर बारह बाई बारह तक बहुत सी फिल्मों का निर्माण हुआ है, जिनमें काशी की सांस्कृतिक, आर्थिक तथा अन्य आयामों का विशेष चित्रण किया गया है। पहली फ़िल्म राजा हरिश्चंद्र काशी के वैभव तथा आर्थिक संपन्नता को दृष्टिगत करती है, जो की आज भी कहावतो में सुनने को मिल जाता है। मोतीचंद्र ने भी काशी के इतिहास में लिखा है कि सुदूर प्राचीन समय में काशी व्यापारिक शहर भी था। जातक कथाओं में भी यहाँ के व्यापार का उल्लेख किया गया है। वहीं पंडित कुबेर नाथ शुक्ल ने वाराणसी वैभव में कहा है कि आर्य सत्ता की स्थापना के साथ यहाँ वैदिक धर्म का प्रभाव बढ़ा। वैदिक धर्म का विकास होने के पश्चात व्यापार के साथ पर्यटन का भी विकास हुआ, जिसके वजह से घाटों पर जीविकोपार्जन हेतु रहने वाले जिनमें मल्लाह, नाई, गाईड, चित्रकार, फोटोग्राफर, ज्योतिषाचार्य तथा दैनिक जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने वाले दुकानदारों की संख्या बहुतायत मात्रा में रहती है। काशी पर बनी फ़िल्मों में जैसे अपराजितो, मसान, धर्म, घातक, बारह बाई बारह इत्यादि फिल्मों में उनके आय प्राप्ति के संसाधनों तथा तकनीकी बदलाव और उसके वजह से उनके दैनिक संघर्षों का बेहद प्रभावशाली चित्रण किया गया है।

मुख्य शब्द-जीवंतता, मूक सिनेमा, आजीविका।

काशी और गंगा घाट:

शिव की नगरी काशी विश्व के प्राचीनतम नगरों में से एक है। यह शहर जितना पुराना है, उसकी संस्कृति भी उतनी ही प्राचीन है। मार्क ट्वेन ने इस शहर के बारे में लिखा है कि यह शहर इतिहास, परंपरा और किवंदतीयो से भी पुराना है। शेरिंग नें भी बनारस की प्राचीनता को लेकर कहा है कि जब विश्व के प्रमुख शहर अपनी स्थिति को मजबूत करने के लिए जद्दोजहद कर रहे थे, तब भी बनारस उन्नत अवस्था में था। देखा जाए तो समय समय पर पर इस पर कितने ही आघात हुए परंतु वह अपने वजूद को संभाले हुए आज भी वैसे ही खड़ा है। इसीलिए इसको विश्व का प्राचीनतम जीवित शहर माना जाता है। यह शहर अपनी खुश मिजाजी तथा फक्कड़पन अंदाज के लिए दुनिया भर में मशहूर है। यहाँ की तंग गलियों तथा घाटों पर हर समय जनसमूह दिखता रहता है।

काशी पवित्र गंगा के तट पर बसा है जो वर्ष भर अविरल बहती रहती हैं। गंगा के अविरल बहाव की वजह से प्राचीन काल से ही आवागमन के रूप में नाव के द्वारा व्यापार हुआ करता था। पवित्र नदी गंगा के किनारे बने पक्के घाटों की छटा भी बहुत न्यारी है। अस्सी घाट से लेकर आदि केशव घाट तक पक्के घाटों की एक अटूट श्रृंखला बनी हुई है तथा उन पर बने महल, मठ, धर्मशालाएं एवं मंदिर धार्मिक एवं सांस्कृतिक सामंजस्य का साक्षी है। प्रत्येक घाट का अपना एक पहचान है जो की बनारस की संस्कृति और वैभव को और भी बढ़ाता है। इन घाटों की वजह से शहर की सुरक्षा भी होती है तथा लोगों को आय का माध्यम भी प्राप्त होता है। पवित्र गंगा के अविरल धारा होने की वजह से व्यापारी जलमार्ग के द्वारा यहाँ व्यापार करने आते थे तथा इन्हीं घाटों पर अपने व्यापारिक सामानों का संग्रह करते थे। डॉक्टर मोतीचंद्र ने कहा है कि प्राचीन समय काल से ही काशी में व्यापार बड़ी उन्नत दशा में था। जातकों और बौद्ध साहित्य में इसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

यहाँ आर्य सभ्यता का विकास बहुत पहले ही हो चुका था। यह शहर प्राचीन समय से ही वैभव से परिपूर्ण रहा है तथा काशी के पवित्र गंगा घाटों पर इसके वैभव का अवलोकन किया जा सकता है। पंडित कुबेर नाथ शुक्ल कहते है की भारत में अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार प्रसार से आध्यात्मिकता तथा धार्मिक भावनाओं का हास होने लगा है, परंतु बनारस में अभी भी आध्यात्मिकता तथा धार्मिकता का अभाव नहीं है, आज भी लाखों लोग नित्य गंगा स्नान और देव मंदिरों में दर्शन पूजन करते हैं। वर्तमान समय में

* शोध छात्र, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय

काशी वैदिक धर्म के साथ-साथ पर्यटक स्थल के रूप में भी बहुत प्रसिद्ध हो गया है, इसका प्रमुख वजह है काशी को मोक्ष की नगरी माना जाना। कहा जाता है कि अन्य कहीं मरने पर काशी में जन्म होता है परंतु काशी में मरने पर मोक्ष की प्राप्ति होती है। काशी अपने मंदिरों के साथ-साथ अपने घाटों के लिए भी काफी प्रसिद्ध है, इसलिए इसे घाटों का शहर भी कहा जाता है। पर्यटन के लिए आए पर्यटक इन घाटों पर आते हैं। इन्हीं पर्यटकों से घाटों पर रहने वाले दैनिक जरूरतों को पूरा करने वाले लोगों जैसे नाविकों, चित्रकार, फोटोग्राफर, नाई, ज्योतिषाचार्य, कर्मकांड कराने वाले, गाइड, फूल माला बेचने वालों के साथ अन्य कई प्रकार के छोटे-छोटे वेंडरों का भी जीविकोपार्जन चलता रहता है। नवभारत टाइम्स.काम 31 जुलाई 2023 के अनुसार वाराणसी में लगभग हर साल 10 करोड़ सैलानी पर्यटन के लिए आ रहे हैं, जिनसे लगभग पर्यटन संबंधी आय में 20-65 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

सिनेमा और काशी:

1913 में प्रथम भारतीय सिनेमा होने का गौरव प्राप्त करने वाली फ़िल्म हरिश्चंद्र का कुछ दृश्य काशी पर आधारित था। इसके बाद और भी बहुत सी फ़िल्मों का निर्माण काशी की पृष्ठभूमि पर होता रहा, जिसमें काशी के गंगा घाटों का चित्रण होता रहा। वर्तमान समय में सिनेमा केवल मनोरंजन ही नहीं बल्कि समाज के विभिन्न पहलुओं को भी उजागर कर रहा है। इसलिए सिनेमा को समाज का आइना भी कहा जाता है। 1913 से लेकर अब तक बहुत सी फ़िल्मों का निर्माण किया जा चुका है जिनमें समाज के विभिन्न आयामों का संयोजन किया गया है। फ़िल्मकार अपनी फ़िल्म को बनाने में नए-नए तकनीक व विचारों के साथ शूटिंग स्थल का बहुत ख्याल रखते हैं, जिससे सिनेमा में जीवंतता लाई जा सके और इसकी वजह से वहाँ का रहन सहन, सामाजिक तथा सांस्कृतिक व्यवस्था और आर्थिक संरचना का स्वयं ही समावेश हो जाता है। काशी में फिल्माई गयी सत्यजित राय की फ़िल्म अपराजितो की शूटिंग लोकेशन को ध्यान में रखकर प्राकृतिक प्रकाश में फ़िल्मांकन के साथ बाउंसिंग लाइट की भी शुरूआत की थी। काशी अपनी संस्कृति और जीवंतता को लेकर फिल्मकारों को काफी आकर्षित करता है। यहाँ के बने पक्के घाटों पर बहुत सी फिल्मों का निर्माण किया गया है जिनमें काशी के गंगा घाटों, यहाँ की संस्कृति एवं आर्थिक संरचना का विशेष चित्रण देखने को मिलता है।

काशी की संस्कृति, यहाँ के धार्मिक, आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति पर कई भाषाओं में 100 से अधिक फिल्मों का निर्माण किया गया है। जिनमें काशी के घाटों को प्रमुख रूप से चित्रित किया गया है। घाटों की आर्थिक संरचना को चित्रित करती प्रमुख फिल्मों में हरिश्चंद्र, संघर्ष, अपराजितो, जोई बाबा फेलूनाथ, घातक, इंद्रा द टाइगर, मसान, मोहल्ला अस्सी, द लास्ट कलर, बनारस (मलयालम), बनारस (कन्नड़), काशी, हर हर व्योमकेश, मुक्ति भवन, इस़क, जोहार, धर्म, रांझना, हे गंगा मइया तोहे पियरी चढ़ाइबो इत्यादि में घाटों पर रहकर अपने रोजगार को संचालित करने तथा वहाँ से आय की प्राप्ति करने के साथ ही दैनिक प्रतिस्पर्धा का भी बहुत ही मार्मिक ढंग से प्रदर्शन किया गया है।

भारतीय सिनेमा और घाटों की आर्थिक संरचना:

काशी के गंगा घाटों की स्थिति काशी के व्यापार के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। प्राचीन समयकाल से इन्हीं घाटों की सहायता से व्यापार हुआ करता था। वाराणसी शिक्षा की नगरी के साथ व्यापारिक नगर भी रहा है। काशी अन्य शहरों से सड़क के साथ साथ जल मार्ग से भी जुड़ा था। वर्तमान समय में गंगा नदी और घाटों का जल मार्ग के रूप में उपयोग कम हो गया है, क्योंकि सड़क, रेल मार्ग और हवाई मार्ग का प्रयोग ज्यादा होने लगा है। व्यापार के साधन के रूप में प्रयोग कम होने के बावजूद घाटों का महत्त्व आज भी बरकरार है। क्योंकि आध्यात्मिक पर्यटन का विकास होने के कारण घाटों तथा उससे लगे गलियों में होटलों, रेस्टोरेंटों में पर्यटकों को रहने के साथ-साथ घाटों पर रहने वाले लोगों जिनमें मल्लाह, केवट, गाइड, ज्योतिषाचार्य, पंडे, नाई, फेरी वाले तथा घाटों के आसपास रहने वाले छोटे दुकानदारों को आजीविका के साधन के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। काशी तथा काशी के घाटों पर बनी फिल्मों में हरिश्चंद्र का नाम सर्वप्रथम आता है। दादा साहब फाल्के द्वारा निर्मित इस मूक सिनेमा में काशी के आर्थिक संपन्नता को स्पष्ट रूप से दिखाया जाता है। किसी राजा का काशी के बाजार में बिक जाना तथा उनका शमशान घाट पर शव को जलाने का कार्य करना, यहाँ के रहने वाले लोगों के सम्पन्नता का आभास कराता है। उसके बाद 1968 में प्रदर्शित एच.एस.रवैल द्वारा निर्देशित संघर्ष फ़िल्म में भी यहाँ के घाटों तथा उस पर रहने वाले पुजारियों का और बनारस के घाटों पर रहकर जीवन यापन करने वालों का विशेष चित्रण किया गया है। यह फ़िल्म महाश्वेता देवी के बंगाली उपन्यास 'लाली आस्मानेर

आयना' पर आधारित है। उन्नसवीं शताब्दी के बनारस का चित्रण करते हुए फ़िल्म की शुरुआत में काशी यात्रा करने वाले यात्रियों का उल्लेख किया गया है साथ ही घाटों पर बने आश्रम, धर्मशालाओं का भी उल्लेख किया गया है। काशी के गंगा घाटों के वैभव को प्रदर्शित करती यह फ़िल्म दर्शकों को काशी के उन बारीकियों को भी दिखाती है जो काशी यात्रा के दौरान होने वाली दुर्घटनाओं को स्पष्ट करती है।

अपराजितो सत्यजीत रे द्वारा निर्देशित विभूतिभूषण बनर्जी के उपन्यास अपराजितो से रूपांतरित अप्पूत्रयी का दूसरा भाग 1956 में प्रदर्शित किया गया था। अपराजितो में काशी के गंगा घाट का जीवंत चित्रण किया गया है। घाट पर रहकर कथा वाचक और कर्मकांड कराने वाले ब्राह्मणों की आर्थिक स्थिति तथा उनके संघर्ष का जीवंत चित्रण किया गया है। इसी क्रम में सत्यजीत के द्वारा निर्देशित जोई बाबा फेलूनाथ (1979) में घाटों का जीवंत चित्रण किया गया है। गंगा नदी में चलते नाव तथा उनके वाहक मल्लाह, गंगा घाटों पर प्रसिद्ध साधु संतों का जीवन और उनके कथा वाचन का चित्रण, गायिकाओं के गायन और घाट पर उनके श्रोता गणों के द्वारा उनको दिए गए वित्तीय सहायता का चित्रण किया गया है। फेलूदा के साथ बनारस में सत्यजीत राय ने काशी के अलग अलग घाटों का वर्णन किया है और कहा है कि बनारस जैसे घाट और गली विश्व में कहीं नहीं है। जासूसी पृष्ठभूमि पर बने बंगला भाषा में शाराडिन्डु बन्दोपाध्याय के उपन्यास बन्ही पतंगा पर आधारित 2015 में प्रदर्शित अरिंदम सिल के द्वारा निर्देशित हर हर व्योमकेश (2015) में काशी की गलियों तथा वहाँ के घाटों का बृहद चित्रण किया गया है। पवित्र नदी गंगा के उत्तरवाहिनी होने तथा गंगा तट पर बने पक्के महलों की शिल्पकला का चित्रण प्रभावी ढंग से किया गया है। हर-हर व्योमकेस में एक जासूस व्योमकेश बख्शी की कहानी है। इस कहानी के पार्श्व में चलने वाले चित्रों में काशी के गंगा घाट का व्यापक प्रदर्शन बहुत ही सराहनीय है। इस फ़िल्म में भी कथावाचकों, नाविकों तथा गीत संगीत के द्वारा धन संग्रह करने वाले लोगों का प्रभावशाली प्रदर्शन है। घाटों पर नावों में गायन करने, अखाड़ों में मल्ल युद्ध करने वाले तथा विधवाओं का जीवंत चित्रण किया गया है। फिल्म में काशी की परंपरा, संस्कृति के वैभव का वृहद प्रदर्शन है। राजकुमार संतोषी द्वारा निर्देशित घातक (1996) में काशी की गलियों, काशी के गंगा घाट तथा गंगा किनारे बने महलों के शिल्प कला का चित्रण किया गया है।

इंद्रा-द टाइगर (2002) बी गोपाल द्वारा निर्देशित तेलुगू भाषी फ़िल्म है। इस फ़िल्म में काशी को अध्यात्मिक पर्यटन के रूप में दिखाया गया है। काशी की धार्मिक यात्रा के लिए आने वाले पर्यटकों द्वारा घाटों पर नाविकों, पंडों तथा कर्मकांडी ब्राह्मणों के आय की प्राप्ति के साथ ही स्टेशन से लेकर घाट तक पहुंचाने के लिए टैक्सी ड्राइवरों, रिक्शा चालकों को भी प्राप्ति होती है। घाट पर ठगों के द्वारा ठगने की कला का भी अच्छा प्रदर्शन किया गया है, जो की हास-परिहास का दृश्य दिखाने के साथ ही दर्शकों को सचेत करने की भी भूमिका निभाता है।

मसान (2015) नीरज घेवान द्वारा निर्देशित एक ऐसी फ़िल्म है जिसमें काशी के घाटों तथा घाटों पर दैनिक जीवन चर्या का सफल प्रदर्शन है। इस फिल्म में एक साथ कई व्यक्तियों के अंत को स्क्रीन पर उकेरा गया है। काशी की संस्कृति तथा काशिका भाषा का प्रयोग इस फ़िल्म को दर्शकों से जोड़ता है। काशी के शमशान घाट तथा उससे चलने वाले लोगों के घरों के चूल्हे तक का चित्रण बहुत शानदार ढंग से हुआ है। काशी के गंगा घाटों पर होने वाली आर्थिक संक्रियाओं तथा चिताओं को जलाने वाले लोगों के अंतर्मन की दशा का बहुत स्पष्ट प्रदर्शन किया गया है। शमशान घाट पर चिताओं को जलाने के लिए अपनी पारी का इंतज़ार तथा महंगाई और आर्थिक दबाव की वजह से उसको बेचने को मजबूरी, उनके आर्थिक दशा का बहुत खूबसूरती से चित्रण किया गया है। दूसरी तरफ घाट पर रहकर छोटे-छोटे दुकान खोलकर ग्राहकों का इंतजार और ना आने पर दुकानदारों की मनोदशा का व्यापक चित्रण दर्शकों के मन पर अवश्य प्रभाव डालती है।

मोहल्ला अस्सी (2018) चंद्रप्रकाश द्विवेदी द्वारा निर्देशित डा. काशीनाथ सिंह जी के द्वारा लिखित काशी का अस्सी पर आधारित है। इस फ़िल्म को लेकर बहुत विवाद रहा। धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुंचाने के आरोप में दिल्ली की एक अदालत ने उसके प्रदर्शन पर रोक लगाई थी। अस्सी मोहल्ला तथा घाट के इर्दगिर्द घूमती इस कहानी में काशी के वैभव, यहाँ की संस्कृति तथा घाट का आर्थिक संरचना का बहुत ही बारीक चित्रण किया गया है। चाय की दुकानों पर अस्सी मोहल्ला के बहाने संपूर्ण विश्व की राजनीति पर बाद विवाद, वैश्वीकरण तथा उदारवाद पर तंज, साथ ही भारतीय राजनीति में उथल पुथल का भी स्पष्ट चित्रण किया गया है। काशी के गंगा घाट की आर्थिक संरचना में गाइड, पंडा, नाविक, गेस्ट हाउस संचालक, ज्योतिषाचार्य, कर्मकाण्ड कराने

वाले तथा दुकानदार नाई सभी का चित्रण मोहल्ला अस्सी में स्पष्ट रूप से दिखता है। घाट पर होने वाले कम्पटीशन तथा आय की प्राप्ति के लिए जद्दोजहद और घर के खर्चों के दबाव में कर्म विमुखता का प्रभावशाली प्रदर्शन किया गया है। विदेशी यात्रियों द्वारा भारतीय संस्कृति को सिखने के लिए आना काशी की सांस्कृतिक परंपरा तथा वैभव का प्रभावी चित्रण करता है। द लास्ट कलर (2019) विकास खन्ना द्वारा निर्देशित बनारस के घाटों पर रहने वाली विधवाओं के ऊपर बनाई गई फ़िल्म है। बनारस के घाटों पर रहने वाले दो बच्चों की आर्थिक स्थिति का विवरण भी दिया गया है कि किस प्रकार से पढ़ने के लिए ये फूल बेचकर तथा रस्सी पर करतब दिखाकर अपनी आर्थिक जरूरतों को पूरा करने का प्रयास करते हैं। फ़िल्म विधवाओं के सादा जीवन, एक किन्नर और दो बच्चों के संघर्ष की कहानी दिखलाती है।

बनारस (2006) पंकज पराशर द्वारा निर्देशित काशी के अध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर बनी है। काशी की आध्यात्मिक प्रवृत्ति को चित्रित करती इस फ़िल्म के बैक लोकेशन में गंगा घाटों की वैभवता का चित्रण भी बहुत जीवंत रूप से किया गया है।

बनारस (मलयालम-2009) नीमोन पुष्पराज द्वारा निर्देशित मलयालम भाषा की फिल्म है। इस फ़िल्म में काशी के गंगा घाट तथा वहाँ के आर्थिक संरचना का चित्रण किया गया है। बाहर से आने वाले पर्यटकों से होने वाले आय तथा काशी के आध्यात्मिक यात्रा का उल्लेख किया गया है। दक्षिण भारत से आने वाले यात्रियों का काशी की अध्यात्मिकता को लेकर विशेष चित्रण किया गया है। काशी हिंदू विश्वविद्यालय तथा उनके विभागों का भी खूबसूरती से चित्रण किया गया है। काशी के गंगा घाट पर बैठे पंडों के चरित्र चित्रण का भी उल्लेख किया गया है। घाटों पर रहने वाले ऐसे पण्डो जो कि धर्म के नाम पर पर्यटकों तथा यात्रियों को ठगने का कार्य करते हैं, उन्हें सावधान रहने के लिए भी संकेत दिए गए हैं। इसी तरह बनारस (कन्नड) फ़िल्म में भी घाटों की आर्थिक संरचना का चित्रण किया गया है। घाटों की आर्थिक संरचना में नाई, नाविक, काशी की गलियों में स्ट्रीट फूड तथा बनारसी पान का भी उल्लेख किया गया है। काशी के महाश्मशान तथा मृतकों की फोटो खींचने वाले फोटोग्राफर के आर्थिक स्रोत को भी चित्रित किया गया है। भारत माता मंदिर तथा शिव प्रसाद गुप्त जी का भी उल्लेख किया गया है, जिससे कि फ़िल्म की जीवंतता बढ़ जाती है। इस प्रकार बारह बाइ बारह (2024) में भी मृतकों के चित्र खींचने वाले फोटोग्राफर की कहानी है। काशी विश्वनाथ कारिडोर निर्माण की वजह से बहुत से घर ध्वस्त हुए, जिनमें उसका भी एक घर है साथ ही बढ़ती तकनीक की वजह से उसके फोटोग्राफी के काम पर भी प्रभाव पड़ता है, जिससे उसकी आय भी प्रभावित होती है। बारह बाई बारह में काशी की संस्कृति, उसके गलियों तथा घाटों की आर्थिक संरचना का जीवंत चित्रण किया गया है। साथ ही तकनीकी विकास का आम जनजीवन पर पड़ने वाले प्रभाव का भी बहुत मार्मिक चित्रण किया गया है। फ़िल्म बारह बाई बारह बहुआयामी संघर्ष को कुरेदती फिल्म है। मणिकर्णिका घाट पर मृतकों के फोटो खींचने का कार्य करने वाले व्यक्ति को जब काम नहीं मिलता तो दूसरी जगह भी इसलिए काम नहीं मिल पाता कि वह मृतकों का फोटो खिंचता है। इसलिए उसे डेड फोटोग्राफर का नाम भी मिला हुआ है। अपने पुश्तैनी मकान के जाने तथा रोजगार को लेकर प्रत्येक दिन संघर्ष करने का बहुत व्यापक चित्रण किया गया है।

काशी (2018) धीरज कुमार द्वारा निर्देशित काशी के श्मशान घाट पर काम करने वाले काशी चौधरी नामक व्यक्ति की कहानी है। काशी में काशी की संस्कृति, परंपरा तथा घाट की आर्थिक संरचना का वृहद चित्रण किया गया है।

मुक्ति भवन (2017) शुभाशिष भूटानी द्वारा निर्देशित काशी के उस उक्ति को चरितार्थ करता है, जिसमें कहा जाता है कि व्यक्ति जी तो कहीं लेता है, परंतु मरने के लिए उसे काशी आना पड़ता है। मुक्ति भवन में काशी के सांस्कृतिक वैभव तथा घाटों की आर्थिक संरचना का व्यापक उल्लेख किया गया है। गंगा में नौका विहार, घाटों पर कथा वाचन तथा अन्य क्रियाओं द्वारा आय की प्राप्ति का चित्रण किया गया है। इसक (2013), जोहार में भी गंगा घाटों की आर्थिक संरचना का चित्रण किया गया है। गंगा घाट पर लगाने वाले छोटे-छोटे वेण्डरो के आय के साधन का विवरण तथा उनके विचारों का चित्रण किया गया है।

धर्म (2007) भावना तलवार द्वारा निर्देशित काशी की पंडित्य परंपरा पर आधारित यह फ़िल्म काशी की ज्ञान परंपरा का वृहद चित्रण करती है। धर्मपरायण ब्राह्मण तथा उनके समयानुकूल निर्णय काशी की गंगा जमुनी तहजीब में पड़ने वाले दरारों को समाप्त करने में सहायक बनता है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित काशी में होने वाले हिंदू-मुस्लिम अंतर्सम्बंधो में पड़ने वाले

दरार को समाप्त करने में काशीवासियों की आपसी पहल का चित्रण तथा मानवता का प्रदर्शन बहुत वृहद तौर पर किया गया है। काशी के गंगा घाटों की आर्थिक संरचना का भी बहुत प्रभावशाली चित्रण किया गया है।

रांझना (2013) आनंद एल राय द्वारा निर्देशित काशी की संस्कृति को प्रतिबिंबित करती यह फ़िल्म काशी के हर पहलू को छूती है। काशी के घाटों, गलियों तथा वहाँ के आर्थिक संरचना को प्रदर्शित करती यह फ़िल्म बनारस पर बनी फिल्मों में अपना प्रमुख स्थान रखती है। काशी की वास्तु शिल्प कला, घाटों की बनावट तथा काशी की प्राचीन परंपराओं को बहुत प्रभावी रूप से चित्रित करती है।

गंगा मैया तोहे पियरी चढ़इबो (1962) कुंदन कुमार द्वारा निर्देशित भोजपुरी सिनेमा में प्रथम फ़िल्म थी, जिसको तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री के आग्रह पर विश्वनाथ शाहाबादी तथा जय नारायण लाल ने बनाया था। यह फ़िल्म सर्वप्रथम 5 फरवरी 1962 को प्रकाश सिनेमा बनारस में प्रदर्शित हुई। पुनः 22 फरवरी 1963 को वीणा सिनेमा पटना में प्रदर्शित की गई थी। बनारस के संस्कृति तथा परंपराओं को प्रदर्शित करती यह फ़िल्म काशी के घाटों का भी चित्रण करती है। काशी के घाटों पर नित्य स्नान क्रिया, साधु संतों का वास्तविक चित्रण तथा काशी के नृत्य संगीत परंपरा का भी प्रदर्शन करती है। भोजपुरी भाषा में विधवा विवाह को प्रोत्साहित करती है यह फिल्म ग्रामीण क्षेत्र की रूढ़िवादी धारणाओं को परिवर्तित करने के लिए प्रेरित करती हैं।

इस प्रकार से और भी बहुत सी फिल्में है जिनका निर्माण काशी की पृष्ठभूमि पर आधारित है जिनमें काशी की परम्परा सांस्कृतिक वैभव, आर्थिक तथा सामाजिक संरचना का वृहद चित्रण किया गया है। इन फिल्मों में काशी के घाटों के आर्थिक संरचना का तथा उससे जीविकोपार्जन करने वाले लोगों के आर्थिक सामंजस्य करने का वृहद चित्रण किया गया है।

निष्कर्ष: काशी पर आधारित सिनेमा में यहाँ के घाटों के निर्माण प्रक्रिया तथा सतत विकास के क्रम का भी बहुत प्रभावशाली चित्रण किया गया है। पहले की फिल्मों में बहुत से घाट कच्चे दिखते हैं परन्तु जैसे-जैसे समय बितता गया काशी में पक्के घाटों का निर्माण भी होता है जो कि समय-समय पर बनने वाली फिल्मों में दिखलाई देता है। आध्यात्मिक नगरी होने के वजह से यहाँ पर्यटन तथा तीर्थ यात्रा के लिए आये आगंतुकों के द्वारा घाट पर रहने वाले लोगों के जीविकोपार्जन के लिए धन उपलब्ध कराया जाता है।

वर्तमान समय में किसी भी सिनेमा के निर्माण में शूटिंग स्थल का बहुत महत्त्व रहता है। मूक सिनेमा से प्रारम्भ होकर वर्तमान समय में डिजिटल तकनीक से युक्त सिनेमा का सफर बहुत लम्बा रहा है। काशी अपनी संस्कृति तथा यहाँ का सामाजिक जीवन अपने जीवंतता के कारण फिल्म-निर्माताओं का काफी पसंदीदा स्थल माना जाता है। अपने फिल्मों के निर्माण में फिल्म निर्माताओं के द्वारा यहाँ की संस्कृति तथा परम्पराओं का ध्यान रखा जाता है। काशी की पृष्ठभूमि पर बहुत सी फिल्मों का निर्माण किया गया है जिनमें कुछ फिल्मों का काशी की संस्कृति तथा परम्पराओं पर सीधे तौर पर जुड़ाव होता है। बहुत सी फिल्मों में काशी के गंगा घाटों का सिर्फ शूटिंग स्थल के रूप में प्रयोग होता है। इसके बावजूद भी घाटों की संस्कृति तथा आर्थिक जीवन का चित्रांकन बरबस हो जाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

1. मार्क ट्वीन, फालोविंग द इक्वेटर, ए जर्नी एराउण्ड द वर्ल्ड, पृ. 480
2. एम.ए. शेरींग, द सेक्रेड सिटी आफ द हिन्दूज, एन एकाउण्ट आफ बेनारस इन एंशिएण्ट एण्ड माडर्न, बी.आर. पब्लिकेशन कार्पोरेशन, रिप्रिंट 1975, पृ. 7
3. डायना एल.एक., बनारस सिटी आफ लाइट, पेंगुइन रैंडम हाउस, इण्डिया, पृ. 4
4. डा. मोतिचंद, काशी का इतिहास, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2003, पृ. 13
5. डा. हरिशंकर, काशी के घाट, कलात्मक एवं सांस्कृतिक अध्ययन, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 4
6. डा. मोतिचन्द्र, काशी का इतिहास, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2003, पृ. 38
7. पं. कुबेर नाथ सुकुल, वाराणसी वैभव, बिहार राष्ट्रभाषा प्रकाशन, पटना, 2000, पृ. 31
8. डा. हरिशंकर, काशी के घाट, कलात्मक एवं सांस्कृतिक अध्ययन, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2024, पृ. 2

9. राघवेंद्र शुक्ला, नवभारत टाइम्स.काम, 31 जुलाई 2023, 12: 42 PMIST
10. संदीप जोशी, सत्यजित राय जीवन और कला के अनुभव, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, 2019, पृ. 12
11. उमा पाण्डेय, वाराणसी, दि मैकमिलन कंपनी आफ इण्डिया लिमिटेड, नई दिल्ली, 1980, पृ. 44
12. डा. सत्यपाल यादव, 19वीं एवं 20वीं सदी में काशी में गंगा घाट सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में, कला प्रकाशन, वाराणसी, 2019, पृ. 104
13. दादा साहेब फाल्के, हरिश्चंद्र, फाल्के फिल्म्स, 1913
14. हरनाम सिंह रवैल, संघर्ष, राहुल थिएटर्स, 1968
15. सत्यजित राय, अपराजितो, एपिक फिल्म्स, 1956
16. सत्यजित राय, जोई बाबा फेलूनाथ, आर.डी.बी.प्रोडक्शंस, 1979
17. अजय रतन बनर्जी, काशी नगरी एक: रूप अनेक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, 2017, पृ. 273
18. अरिदम सिल, हर-हर व्योमकेश, श्री वेंकटेश फिल्म्स, 2015
19. राज कुमार संतोषी, घातक, संतोषी प्रोडक्संस, मुंबई, 1996
20. बी.गोपाल, इंद्र द टाइगर, विजयांथी मुवीज, 2002
21. नीरज घेवान, मसान, फैण्टम फिल्म्स, प्र.लि., 2015
22. चंद्र प्रकाश द्विवेदी, मोहल्ला अस्सी, क्रासवर्ड एंटरटेनमेंट, प्राइवेट लिमिटेड, 2018
23. इण्डिया टुडे इन, 30 जून, 2015, 18; 39 IST
24. विकास खन्ना, द लास्ट कलर, हाउस आफ ओमकार, 2019
25. पंकज पराशर, बनारस, सेतु क्रिएशंस, प्रा.लि. पुणे, 2006
26. निमोन पुष्पराज, बनारस (मलयालम), काशी फिल्म्स 2009
27. जयतिर्थ, बनारस (कन्नड़), एन.के. प्रोडक्शन्स, 2022
28. गौरव मदान, बारह बाई बारह, अमदाबाद पिक्चर्स, 2024
29. पंकज शुक्ल, अमर उजाला ई-पेपर, 23 मई 2024, 6: 58 PM IST
30. धीरज कुमार, काशी, इनसाइट इण्डिया, 2018
31. शुभ्रशीष भुटानी, मुक्ति भवन, रेड कार्पेट मुविंग पिक्चर्स, 2016
32. मनीष तिवारी, इस़क, पेन इण्डिया लिमिटेड, 2013
33. रवि तेज मारनी, जोहार, धर्म सूर्या पिक्चर्स, 2020
34. भावना तलवार, धर्म, वे साइड ग्लोरी पिक्चर्स प्रा.लि. मुंबई, 2007
35. आनंद एल.राय, रांझना, एरोज इण्टरनेशनल मिडिया लि., मुंबई, 2013
36. कुन्दन कुमार, गंगा मैया तोहे पियरी चढ़इबो, निरमल पिक्चर्स, 1962
37. आशीष राजाध्यक्ष, आशीष पौल, इनसाइक्लोपिडिया आफ इण्डियन सिनेमा, आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी दिल्ली, 1998, पृ. 372

काशी की काष्ठ कला में झारखंड के वनों की भूमिका

नमिता कुमारी*

सारांश

काशी जिसे वर्तमान में वाराणसी के नाम से जाना जाता है, एक पौराणिक नगरी है। इसे संसार के सबसे पुराने नगरों में माना जाता है। विश्व के सर्वाधिक प्राचीन ग्रंथ ऋग्वेद में काशी का उल्लेख है- "काशिरिते आप इक्काशिनासंगृभीताः"। पुराणों के अनुसार ये आद्य वैष्णो स्थान है। भारत की यह विश्व प्रसिद्ध प्राचीन नगरी गंगा के वाम उत्तर तट पर उत्तर प्रदेश के दक्षिणी पूर्वी भाग में वरुण और असी नदियों के गंगा के संगमों के बीच बसी हुई है। काशी की काष्ठ कला अति प्राचीन है, जिसमें झारखंड एक अहम भूमिका निभाती है। काशी की काष्ठ कला आधुनिक या केवल दो-चार सौ वर्ष पुरानी परंपरा नहीं है, बल्कि यह राम राज्य से पहले से चली आ रही है। जब राम चारो भाई बच्चे थे तो वह इन्हीं लकड़ियों के बने खिलौने से खेलते थे। प्रारंभ में काशी के काष्ठ कलाकार मुख्य रूप से बच्चों के खिलौने तथा सिंदूरदान इत्यादि बनाते थे, परंतु आज इनकी संख्या एवं विविधता में अत्यधिक वृद्धि हुई है। काशी में काष्ठ कला की पहचान एक सशक्त कुटीर उद्योग के तौर पर रही है। यहाँ के कश्मीरी गंज, गोजवा, चिरैया जैसे इलाके तथा सुंदरपुर, कोंधवा और सोनारपुर जैसे गांव में एक समय लकड़ी के खिलौने एवं अन्य सामान बनाए जाते थे। देश की सांस्कृतिक राजधानी होने की वजह से काशी में पर्यटकों का आना-जाना सालों भर लगा रखा रहता है। पर्यटक लौटते समय याद के तौर पर लकड़ी से बनी विभिन्न वस्तुएं ले जाते रहे हैं। काशी की काष्ठ कला में झारखंड के वन अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। आजकल काशी के काष्ठ कलाकार सिंदूरदान, बच्चों के खिलौने, चुसनी, लट्टू बच्चों के खेलने के करनाटकी जिसके अंतर्गत 27 वस्तुएं आती है जैसे थाली, उखली, मुसल आदि इसके अलावा काष्ठ की आम, केला, अंगूर, सेब, नाशपाती, चाबी, लैंप, श्राद्ध कर्म में प्रयुक्त होने वाले पात्र, एक्यूप्रेशर से संबंधित उपकरण आदि वस्तुएं बनाई जाती है। काशी के काष्ठ कलाकार अपने अधिकांश वस्तुएं एवं खिलौने का निर्माण एक अलग प्रकार की जंगली लकड़ी जिसे 'गौरैया' कहा जाता है, से करते हैं। ये लकड़ी न तो बहुत महंगी और न ही खास परियोजना की लकड़ी है। झारखंड घने वनों के भूखंड के रूप में प्रसिद्ध है। काशी के काष्ठकार काष्ठ के वस्तुओं के निर्माण के लिए कच्चे माल झारखंड के वनों से प्राप्त करते हैं। 'गौरैया' लकड़ी वाराणसी क्षेत्र में नहीं होती है। इसे झारखंड के पलामू एवं अन्य स्थानों से प्राप्त किया जाता है। परंपरागत रूप से काशी के काष्ठ कलाकार लाल, हरा, काला तथा नीला रंगों का प्रयोग करते हैं, उनमें से कुछ रंग उन्हें वन्य पदार्थों से प्राप्त होते हैं तो कुछ रसायनों द्वारा निर्मित होते है। अच्छी किस्म के खिलौनों का सम्पूर्ण भारत के साथ विदेशों में भी निर्यात की जाती है। विदेशों में काशी के काष्ठ के वस्तुओं की बहुत मांग है, अतः काशी के काष्ठ कलाकार 'गौरैया' लकड़ी की अधिकांश मांग करते हैं, जो उन्हें झारखंड के वनों से प्राप्त होती है। स्पष्ट है कि काशी की विश्वविख्यात काष्ठ कला में झारखंड के वन एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

कुंजी शब्दः- आद्य वैष्णो, करनाटकी, कुटीर उद्योग, काष्ठ, काष्ठ कलाकार, गौरैया लकड़ी, परंपरागत, पौराणिक, पर्यटक, विश्वविख्यात, सिंदूरदान

भूमिका

काशी जिसे वाराणसी, बनारस, अविमुक्त क्षेत्र आनंद-कानन, महा श्मशान आदि नाम से भी जाना जाता है। इसके अलावा काशी को मंदिरों का शहर, भारत की धार्मिक राजधानी, भगवान शिव की नगरी, दीपों का शहर, ज्ञान नगर आदि विशेषण से भी संबोधित किया जाता है। काशी संसार के सबसे प्राचीन नगरी माना जाता है। प्रसिद्ध अमेरिकी लेखक मार्के ट्वेन लिखते हैं कि 'काशी इतिहास से, भारतीय परंपराओं से तथा किवंदनतयो से भी पुराना है

* शोधार्थी, विश्वविद्यालय इतिहास विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची
मोबाईल नंबर-8789852160, ईमेल-namitakumari922@gmail.com

और जब इन सभी को एक साथ रख दिया जाए तो यह दोगुना पुरानी हो जाती है।[1] काशी शब्द की उत्पत्ति सबसे पहले अथर्ववेद के पैप्पलाद शाखा से आया है। काशी का शतपथ ब्राहमण में भी उल्लेख मिलता है। स्कंद पुराण के काशी खंड में नगर की महिमा 15 हजार श्लोकों में कही गई है। झारखंड की पौराणिक कथा के अनुसार काशी की उत्पत्ति शंकर जी के केश या जटाओं से हुई है इसलिए इसे काशी कहा जाता है। एक श्लोक में भगवान शिव काशी का वर्णन करते हैं-तीनों लोकों में समाहित एक शहर है जिसमें स्थित मेरा निवास स्थान है, काशी। वाराणसी के विषय में ऋषि वेद व्यास ने कहा है गंगा तरंग रमणीय जातक लाप नाम गौरी निरंतर विभूषित वाम भागम् नारायण प्रियम अनंग मदापहरम् वाराणसी पूर्व पतिम् भज विश्वनाथमम्।[2] प्राचीन काल में वृक्षों के नाम पर भी नगरों के नाम रखे जाते थे जैसे-कोशंब से कौशांबी रोहित से रोहितक इत्यादि। अतः हम कह सकते हैं कि वाराणसी और वरणवती दोनों का ही नाम वृक्षों के नाम पर पड़ा है, उसी प्रकार काशी नाम काशी के फूल या घास के नाम पर पड़ा है। काशी में काष्ठ कला की पहचान एक सशक्त कुटीर उद्योग के तौर पर रही है। यहाँ के कश्मीरी गंज, गोजवा, चिरैया जैसे इलाके तथा सुंदरपुर, कोंधवा और सोनारपुर जैसे गांव में एक समय लकड़ी के खिलौने एवं अन्य सामान बनाए जाते थे।[3] देश की सांस्कृतिक राजधानी होने की वजह से काशी में पर्यटकों का आना-जाना सालों भर लगा रखा रहता है। पर्यटक लौटते समय याद के तौर पर लकड़ी से बनी विभिन्न वस्तुएं ले जाते रहे हैं। काशी की काष्ठ कला में झारखंड के वन अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।'गौरैया' लकड़ी वाराणसी क्षेत्र में नहीं होती है। इसे झारखंड के पलामू एवं अन्य स्थानों से प्राप्त किया जाता है। स्पष्ट है कि काशी की विश्वविख्यात काष्ठ कला में झारखंड के वन एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

काशी की काष्ठ कला एवं झारखंड के वन

कला किसी भी क्षेत्र का दर्पण होता है उसी प्रकार काशी की काष्ठ कला काशी का दर्पण है। काष्ठ कला एक हस्तकला है। इस कला में काष्ठ के विभिन्न तरह-तरह के वस्तुओं का निर्माण किया जाता है। काशी के काष्ठ कला बहुत ही अद्भुत, आकर्षण एवं बेजोड़ है।[4] इसके बेजोड़ नमूने के कारण इसे विदेशों में भी प्रसिद्धि मिल चुकी है। काशी की काष्ठ कला में शिल्प कला का बेजोड़ उदाहरण देखने को मिलता है। काष्ठ से बनने वाली वस्तुओं में सफेदा, गूलर, शीशम तथा मुख्य रूप से गौरैया नामक लकड़ी का प्रयोग किया जाता है। काशी की काष्ठ कला लगभग 400 साल पुरानी है। यह कला भगवान राम के समय से चली आ रही है। जब भगवान राम तथा उनके भाई छोटे थे तो इन्हीं काष्ठ से बने खिलौने से खेला करते थे। अतः यह कला अति प्राचीन है। काशी में काष्ठ से बहुत सारी चीजें बनाई जाती है। जहां एक ओर काशी अपनी सभ्यता एवं संस्कृति के लिए जानी जाती है, वहीं दूसरी ओर झारखंड घने वन, जंगल, झाड़ियां के लिए जानी जाती है। झारखंड का नामकरण ही जंगल के नाम पर रखा गया है।[5] जहां एक और काशी की काष्ठ कला की पहचान विदेश में है तो झारखंड के सारंडा वन एशिया का सबसे सघन वन है।[6] अभी झारखंड में राज्य की कुल क्षेत्रफल का 23605 वर्ग किलोमीटर यानी 29.61 प्रतिशत भाग में वन पाए जाते हैं। यह भारत के कुल वन क्षेत्र का लगभग 3.4 प्रतिशत है। झारखंड शब्द से झाड़ जंगल से भरे क्षेत्र का बोध होता है। यह क्षेत्र प्राचीन काल से ही वनों से घिरा रहा है। भारत में देश की कुल क्षेत्रफल का लगभग 21 प्रतिशत भाग में वन पाए जाते हैं।[7] झारखंड में वनों का औसत राष्ट्रीय औसत से अधिक है। राष्ट्रीय वन नीति के अनुसार किसी प्रदेश के कुल क्षेत्रफल की कम से कम एक तिहाई अर्थात 33.33 प्रतिशत भाग पर वन का विस्तार होना चाहिए। झारखंड राज्य का सबसे अधिक वन पलामू में पाए जाते हैं, जहां 3550.76 वर्ग किलोमीटर वन क्षेत्र मिलता है। राज्य के सर्वाधिक वन भूमि वाले प्रथम चार जिले हैं पलामू (3550.76 वर्ग किलोमीटर वन क्षेत्र), पश्चिम सिंहभूम (3413.95 वर्ग किलोमीटर वन क्षेत्र), हजारीबाग (2415.5 वर्ग किलोमीटर वन क्षेत्र) एवं गिरिडीह (2268.64 वर्ग किलोमीटर वन क्षेत्र) है।[8] झारखंड में जंगलों में विभिन्न प्रकार के पेड़ पाए जाते हैं जैसे कि साल, अमलतास, सेमल, महुआ, शीशम, बाँस, नीम, पीपल, खैर, पलाश, कटहल, गूलर आदि।

प्रारंभ में काशी के काष्ठ कला में केवल बच्चों के खिलौने तैयार किए जाते थे, परंतु आज अनेक प्रकार के वस्तुएं तैयार किए जाते हैं, जैसे-सिंदूरदान, बच्चों के खिलौने, चुसनी, लट्टू, थाली, चूल्हा, तवा आदि। इसके अलावा काष्ठ के विभिन्न प्रकार के फल-फूल, सब्जी इत्यादि जैसे आम, केला, अंगूर, नाशपाती, बैंगन, आलू, बेल, बच्चों का झूला जिसे पालना कहते हैं, लकड़ी की हवाई जहाज, एक्यूप्रेशर से संबंधित वस्तुएं, फूलदान, यज्ञ, पूजा-पाठ जन्म, मृत्यू, विवाह आदि में उपयोग होने वाले वस्तुएं, विभिन्न तरह के आभूषण, आदि इस प्रकार काशी के काष्ठ कलाकार अनेक वस्तुओं का निर्माण करते हैं।[9]

काशी के काष्ठ कलाकार की काष्ठ वस्तुओं के निर्माण के लिए जंगली लकड़ी का प्रयोग करते हैं, इसमें सफेद, गूलर शीशम तथा मुख्य रूप से गौरैया नामक लकड़ी का प्रयोग किया जाता है। यह लकड़ी ना तो बहुत महंगी है और ना ही किसी विशेष प्रयोजन की है। खिलौने के अलावा इस लकड़ी का प्रयोग ईंधन के रूप में किया जाता है। गौरैया लकड़ी काशी में नहीं होती इसे बाहर से यानी झारखंड के पलामू से प्राप्त किया जाता है।[10] गौरैया लकड़ी पलामू में अधिक मात्रा में पाई जाती है इसलिए लकड़ी पलामू से मंगाया जाता है। वहीं शीशम की लकड़ी हजारीबाग, सिंहभूम क्षेत्र से मंगाया जाता है। इसके अलावा यह सभी वृक्ष की लकड़ी का प्रयोग भी की जाती है जैसे-साल वृक्ष की कठोरता असाधारण होती है, साल की लकड़ी का उपयोग मकान फर्नीचर, रेल के डिब्बे आदि बनाने के लिए किया जाता है।[11] वही शीशम की लकड़ी काफी मजबूत होती है। इसका उपयोग काष्ठ के फर्नीचर के निर्माण के लिए किया जाता है। उसी प्रकार ग्महार जिसकी लकड़ी हल्की मुलायम एवं चिकनी होने के साथ-साथ काफी टिकाऊ होती है। लकड़ियो पर नकाशी करने की दृष्टि से यह सबसे अधिक उपयोगी लकड़ी है।[12] इन सभी लकड़ियो में मुख्य रूप से गौरैया की लकड़ी का प्रयोग किया जाता है। यह लकड़ी सस्ती दामो में काशी के काष्ट कलाकार को मिल जाती है। महंगी खिलौने विशेष तौर वे सारी वस्तुएं जो विदेशों में भेजा जाता है वह इसी लकड़ी से बनाए जाते हैं क्योंकि यह काफी मजबूत होते हैं। छोटे स्तर के काष्ठ कलाकार जरूरत के हिसाब से लकड़ी खरीदते हैं। जबकि बड़े लोग जिनके पास पूंजी अधिक होती है वह साल भर की लकड़ी खरीद के रखते हैं। उसके पश्चात जरूरत के हिसाब से उन्हें काष्ठ कलाकार काष्ठ की वस्तुओं के निर्माण के लिए छोटे-छोटे टुकड़ों में उपयोग करते हैं।[13]

इसे बनाने के लिए आवश्यकता अनुसार छोटे-छोटे टुकड़ों में काटा जाता है। निर्माण की तकनीकी आधार पर बनारस के काष्ठ कलाकार को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है पहले वे जो परंपरागत रूप से हाथ से काष्ठ कला का निर्माण करते हैं और जो मशीनों की सहायता से काष्ठ की वस्तु का निर्माण करते हैं। इसके अलावा कुछ लोग लकड़ी के छोटे-छोटे खिलौने देवी-देवताओं की मूर्तियां, सजावट के समान आदि बनाते हैं।

पहले काशी मे बने खिलौने अन्य चीजों की खपत केवल काशी में आने वाली तीर्थ यात्रियों तक की सीमित थी। जो भी तीर्थ यात्री काशी आते थे वह जाते समय बच्चों के खिलौने इत्यादि लेकर जाते थे। धीरे-धीरे काशी के कास्ट के वस्तुओ की मांग भारत के अन्य शहरों में होने लगी। धीरे-धीरे इसकी प्रसिद्धि बनारस से बाहर यानी कि विदेशों में भी होने लगी। आज की स्थिति यह है कि केवल काशी मे व्यापारी ऐसे हैं जो इन कलाकृतियों को भारत के विभिन्न हिस्सों में भेजते हैं तथा विदेश में भी निर्यात करते हैं।[14] परंपरागत रूप से काशी के कास्ट कला में जुड़े कलाकार मुख्य रूप से लाल, हरा, काला तथा नीले नीले रंगों का प्रयोग करते थे। यह परंपरा बहुत दिनों तक की चलती रही बल्कि बहुत से लोग आज भी इन्हीं रंगों का प्रयोग किया जाता है। यह रंग जंगलों के से प्राप्त होने वाले वस्तुओं से तैयार किया जाता था किंतु आज के दौर में बहुत सारे कृत्रिम रंगों का भी प्रयोग ये कलाकार अपने काष्ठ की वस्तुओं के निर्माण में करते हैं। उपकरणों को रंगने के बाद ऊपर से विभिन्न चित्रों से सुशोजित किया जाता है। सुशोजित करने का काम महिलाएं करती है। बहूत से रंगों का प्रयोग का एक कारण यहां के काष्ठ कला में निर्मित तत्वों का निर्यात भी है। विदेश में हो रहे मांग के हिसाब से भी विभिन्न रंगों का प्रचलन बढ़ रहा है। यह गति अभी भी जारी है। प्रारंभ में काष्ठ काला का महत्व लोगों ने उतना नहीं समझा था इसलिए काष्ठ कलाकारों की स्थिति अच्छी नहीं थी, किंतु धीरे-धीरे काष्ठ से बनने वाले वस्तुओं की मांग भारत सहित विदेशों में भी बढ़ने लगी। जिससे काष्ठ कलाकारों की स्थिति में भी परिवर्तन हुआ है। आज बहुत सारे कलाकार विदेश में भी सामान को निर्यात करते हैं। काशी की काष्ठ कला को सिंगापुर में अधिक प्रसिद्धि मिली है। जिससे काशी के काष्ठ कलाकारों के रोजगार में भी तेजी से बढ़ोतरी हुई है। वाराणसी में कुल 5000 लोग कला से अपने परिवार का गुजारा

कर रहे हैं। इसमें सबसे अधिक संख्या महिलाओं की है। दीपावली में लकड़ी की सुंदर स्वरूप में तैयार, दीप, लटकन और लक्ष्मी गणेश की मूर्तियां कीमांग काफी बढ़ गई है। 2014 के बाद काशी में विलुप्त हो रही काष्ठ कला को काफी बल मिला जिससे काशी के काष्ठ कलाकार को रोजगार भी मिला।[15] वर्तमान में काशी में 5000 काष्ठ कलाकार है जो काशी की जो लकड़ी के दीप, झूमर, लक्ष्मी- गणेश की मूर्ति सहित दर्जन कलाकृतियों को तैयार कर रहे हैं। इसकी मांग दिल्ली, मुंबई, पुणे सहित सिंगापुर में सबसे अधिक है। इस कार्य के लिए जुड़ी महिलाओं को प्रतिदिन ₹300 दिए जाते हैं। काशी में काष्ठ कला से बनी कलाकृतियां एक धरोहर है जो आगे भी इसी प्रकार चलती रहेगी। 2016 के बाद 50 प्रतिशत इस कला को प्रसिद्धि मिली है।

निष्कर्ष : इस प्रकार काशी की काष्ठ कला की पहचान और चमक सात समुंदर पार तक है। अब काशी के काष्ठ कलाकार लकड़ी का बैग भी बनाने लगे हैं। जिनको काफी प्रसिद्धि मिली है। इस प्रकार काष्ठ से बनी वस्तुओं की मांग दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है और मांग के बढ़ने से झारखंड में पाए जाने वाले वन तथा उसे प्राप्त होने वाली लकड़ियो की मांगों में भी वृद्धि हो रही है। अतःकाशी के काष्ठ की बनी वस्तुओं में झारखंड के वन एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, क्योंकि यहां पर पाए जाने वाली लड़कियां मुख्य तौर पर गौरैया लकड़ी काफी उपयोगी होती है। और यह लकड़ी काफी मजबूत भी होती है। काष्ठ कलाकार इसका उपयोग करते हैं और यह लकड़ी काफी टिकाऊ होती है। किसी अन्य लड़कियों की अपेक्षा यह लकड़ी काफी सस्ती भी मिल जाती है, जिससे बहुत सारे काष्ठ कलाकार इससे काष्ठ की वस्तुओं का निर्माण करते हैं। काष्ठ कलाकार सर्वप्रथम 1970 में काष्ठ से बनी वस्तुओं का निर्यात जापान में किए थे। उसके पश्चात धीरे-धीरे अन्य देशों में भी इसकी मांग बढ़ती गई और आज का आलम यह है कि काशी के काष्ठ की बनी वस्तुओं की धूम पूरे विश्व में है और इसकी प्रसिद्धि पूर विश्व में फैली हुई है। झारखंड में पाए जाने वाले विभिन्न लकड़ियों से बनाए जाने वाली वस्तुओं में झारखंड के वन एक अहम भूमिका निभाती है ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. लेनोय रिचर्ड, बनारस-सीन फ्रोम विदिन, वंशिगटन प्रेस विश्वविद्यालय, ब्लैक फ्लैप, 1999, पृष्ठ संख्या 84
2. पर्यटन विभाग, वाराणसी एक्सप्लोर इंडिया मिलेनियम ईयर, भारत सरकार, प्रेस रीलीज, मार्च, 2007
3. वही
4. मोतिचंद्र, काशी का इतिहास, वैदिक काल से अर्वाचीन युग तक का राजनैतिक-सांस्कृतिक सर्वेक्षण, हिन्दी ग्रंथ-रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड, बंबई, 1962, पृष्ठ संख्या 89
5. विमला चरण शर्मा, विक्रम केशरी, छोटानागपुर का भूगोल, राजेश प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997, पृष्ट संख्या 60
6. शत्रुधन कुमार पाण्डेय, झारखंड का इतिहास, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004, पृष्ठ संख्या 27
7. एन. कुमार, अ लिस्ट ऑफ ट्रिस, राँची गजेटियर, पृष्ट संख्या 23
8. वन एवं पर्यावरण विभाग, झारखंड, राँची, वार्षिक प्रतिवेदन 2002-2003, कार्य प्रतिवेदन 2003-2004, राँची, झारखंड
9. सुधीर पाल एवं रणेन्द्र (संपादित), झारखंड इनसाइक्लोपीडिया हूलगुलानों की प्रतिध्वनियां, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृष्ठ संख्या 65
10. पी. एस. मिश्रा, पर्यावरण एवं वन विकास, आविष्कार पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर, 2001, पृष्ठ संख्या 135
11. के.वाई. दास., वर्किंग प्लान ऑफ राँची फॉरेस्ट डिविजन, (2015-16 से 2024-2025), जिल्द -1,कॉन्सवेटर ऑफ फॉरेस्ट, राँची, 2014, पृष्ठ संख्या 41
12. कैलाश कुमार मिश्र, बनारस की काष्ठ कला, आई. जी. एन. सी. ए. गवर्नमेंट डॉट इन
13. मंजू सिंह, पर्यावरण अध्ययन, डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2006, पृष्ठ संख्या 158
14. के.के.कुमार, आ.र.रमणी एवं एम.एल.भगत, झारखंड इनसाइक्लोपीड़िया, खंड-2, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ 195
15. ए. एस. अल्टेकर, हिस्ट्री ऑफ बनारस, कल्चरल पब्लिकेशन हाउस, बनारस, 1937, पृष्ठ संख्या 53-72

विद्यालयों में उपस्थित विद्यार्थियों के मध्य शैक्षिक प्रेरणा और शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययनः काशी शहर के संदर्भ में

दीपिका प्रजापति*

सारांश

इस अध्ययन का उद्देश्य विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक प्रेरणा और शैक्षिक उपलब्धि के बीच संबंध का विश्लेषण करना था। काशी शहर के उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत 130 विद्यार्थियों (कला और विज्ञान संकाय) को अध्ययन का नमूना बनाया गया। शोध में मात्रात्मक दृष्टिकोण अपनाया गया और आंकड़ों के विश्लेषण हेतु टी-टेस्ट एवं प्रतिगमन विश्लेषण का उपयोग किया गया। अध्ययन के निष्कर्षों से पता चला कि विज्ञान संकाय के विद्यार्थियों की शैक्षिक प्रेरणा और शैक्षिक उपलब्धि, कला संकाय के विद्यार्थियों की तुलना में अधिक थी। टी-टेस्ट के परिणामों ने दर्शाया कि दोनों संकायों के विद्यार्थियों के बीच प्रेरणा और उपलब्धि में सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण अंतर था ($p < 0.05$)। प्रतिगमन विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकला कि शैक्षिक प्रेरणा का शैक्षिक उपलब्धि पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है ($R^2 = 0.552$, $p < 0.05$), अर्थात प्रेरणा में वृद्धि से शैक्षिक उपलब्धि में भी वृद्धि होती है। अध्ययन के निष्कर्ष विद्यालयों में प्रभावी शिक्षण रणनीतियाँ विकसित करने और विद्यार्थियों की प्रेरणा को बढ़ाने के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। यह शोध शिक्षकों, अभिभावकों, और नीति निर्माताओं को शैक्षिक प्रेरणा के महत्व को समझने में सहायता प्रदान करता है। आगे के शोध में विभिन्न सामाजिक-आर्थिक कारकों के प्रभाव को भी शामिल करने की अनुशंसा की जाती है।

बीज शब्द: शैक्षिक प्रेरणा, शैक्षिक उपलब्धि, माध्यमिक शिक्षा, प्रेरणा और उपलब्धि संबंध, शिक्षण रणनीतियाँ, शैक्षिक मनोविज्ञान, विज्ञान और कला संकाय, विद्यार्थियों का प्रदर्शन, अकादमिक प्रेरणा, विद्यालयी शिक्षा

1. प्रस्तावना :-

शिक्षा किसी भी समाज और राष्ट्र के विकास की आधारशिला होती है। शिक्षा के माध्यम से ही व्यक्ति अपने ज्ञान और कौशल का विकास करता है, जो उसे सफल जीवन जीने के लिए आवश्यक है।**(एरलिंडा & देवी, 2015)** भारत जैसे विकासशील देश में शिक्षा का महत्व और भी अधिक है, क्योंकि आने वाले समय में यहाँ की युवा जनसंख्या देश के भविष्य का निर्माण करेगी। प्राचीन काल से ही भारत में शिक्षा को विशेष महत्व दिया गया है, और काशी (वाराणसी) जैसे शहर प्राचीन काल से ही शिक्षा के प्रमुख केंद्र रहे हैं। आज के प्रतिस्पर्धात्मक युग में शैक्षिक उपलब्धि विद्यार्थियों के भविष्य को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।**(कंडावेल & वासुदेवन, 2022)** उच्च शैक्षिक उपलब्धि विद्यार्थियों को बेहतर शैक्षिक और व्यावसायिक अवसर प्रदान करती है, जिससे उनका भविष्य सुरक्षित और समृद्ध होता है।**(अमराई et al., 2011)** शैक्षिक उपलब्धि विद्यार्थियों की सफलता का एक महत्वपूर्ण मापदंड है, परंतु यह अकेले ही विद्यार्थियों के समग्र विकास का पूर्ण चित्र प्रस्तुत नहीं करती।**(सैनी & गौतम, 2024)** शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करने वाले अनेक कारक हैं, जिनमें शैक्षिक प्रेरणा एक प्रमुख कारक है।

शैक्षिक प्रेरणा विद्यार्थियों को सीखने, ज्ञान प्राप्त करने और अपनी शैक्षिक क्षमताओं का विकास करने के लिए प्रेरित करती है।**(काताकी & चालिहा, 2024)** यह एक आंतरिक शक्ति है जो विद्यार्थियों को चुनौतियों का सामना करने, कठिनाइयों को पार करने और अपने शैक्षिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करती है।**(दलाल & रूपाली शर्मा, 2023)** शैक्षिक प्रेरणा के अभाव में विद्यार्थी अपनी पूर्ण क्षमता का उपयोग नहीं कर पाते और उनकी शैक्षिक उपलब्धि प्रभावित होती है।**(सिवरिकाया, 2019)** शैक्षिक प्रेरणा आंतरिक और बाहरी दोनों प्रकार की हो सकती है। आंतरिक प्रेरणा विद्यार्थी के भीतर से आती है, जैसे ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा, जिज्ञासा, और स्वयं को विकसित करने की आकांक्षा।**(बनर्जी & घोष, 2023)** बाहरी प्रेरणा बाहरी कारकों से प्रेरित होती है, जैसे पुरस्कार, प्रशंसा, अच्छे अंक, और परीक्षाओं में सफलता प्राप्त करना।**(इमैनुएल, 2014)**

* शोध छात्रा, पी.जी. कॉलेज, गाजीपुर, उ.प्र.

काशी (वाराणसी) एक प्राचीन शहर है जिसे भारत की शिक्षा और संस्कृति का प्रमुख केंद्र माना जाता है। यहां पर विभिन्न प्रकार के शैक्षिक संस्थान हैं जो विभिन्न सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि के विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान करते हैं। इन विद्यालयों में विभिन्न प्रकार के शैक्षिक वातावरण, शिक्षण पद्धतियां और संसाधन उपलब्ध हैं, जो विद्यार्थियों की शैक्षिक प्रेरणा और शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करते हैं। काशी में कई पारंपरिक और आधुनिक शिक्षण संस्थान हैं, जैसे संस्कृत पाठशालाएँ, सरकारी विद्यालय, निजी विद्यालय, और अंतरराष्ट्रीय स्तर के विद्यालय। इन विविध शैक्षिक संस्थानों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक प्रेरणा और शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन करना शैक्षिक शोध के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान देगा।

सम्बंधित साहित्यों का सर्वेक्षण :-

(**मिश्राआरती** & **वर्मा**, 2023) ने अपने अध्ययन में बतलाया है कि प्रस्तुत लघुशोध का मुख्य उद्देश्य शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों के उपलब्धि प्रेरणा के प्रभाव का अध्ययन हेतु दुर्ग जिले से जनसंख्या के रूप में तथा न्यादर्श के रूप में 5 शासकीय एवं 5 अशासकीय विद्यालय के 160 विद्यार्थियों का यादृच्छिक रूप से चयन किया गया है। मापन हेतु वी.पी भार्गव द्वारा निर्मित उपलब्धि प्रेरणा उपकरण का प्रयोग किया गया एवं शोध विवेचना हेतु सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया तथा परिकल्पनाओं के सत्यापन के लिए टी-मूल्य ज्ञात किया गया। अध्ययन में पाया कि शासकीय एवं अशासकीय विद्यालय के विद्यार्थियों की उपलब्धि प्रेरणा में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

(कुलदीप, 2019) ने अपने अध्ययन में बतलाया है कि यह शोध कक्षा 9 व 10 के 150 विद्यार्थियों पर आधारित है, जिसमें शैक्षिक उपलब्धि अभिप्रेरणा की तुलना की गई। अध्ययन में ग्रामीण व शहरी, लिंग तथा विज्ञान व कला वर्ग के आधार पर शैक्षिक उपलब्धि अभिप्रेरणा का विश्लेषण किया गया। निष्कर्ष में पाया गया कि शहरी विद्यार्थियों की तुलना में ग्रामीण विद्यार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा कम प्रभावी रही। छात्राओं की उपलब्धि छात्रों से अधिक रही, जबकि विज्ञान और कला वर्ग के विद्यार्थियों में मामूली अंतर पाया गया। अध्ययन से शैक्षिक उपलब्धि अभिप्रेरणा के विभिन्न कारकों पर महत्त्वपूर्ण अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई।

(सिंह, 2011) ने छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि के संबंध में उपलब्धि प्रेरणा का अध्ययन किया तथा परिणाम में ज्ञात हुआ कि शिक्षक, परामर्शदाता और संस्थान इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं, छात्रों को प्रेरित करना उनके उपलब्धि प्रेरणा को मापने में सक्षम हो सकता है।

(मिश्रा एच.पी, 2017) ने अपने अध्ययन में बतलाया है कि यह अध्ययन पश्चिम बंगाल के मुर्शिदाबाद जिले में माध्यमिक विद्यालय के छात्रों की उपलब्धि प्रेरणा का आकलन करने के लिए किया गया। इसमें शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के 16-17 वर्ष के 200 सरकारी स्कूल छात्रों को शामिल किया गया। निष्कर्षों के अनुसार, 16% लड़के और 15% लड़कियाँ उच्च श्रेणी में थे, जबकि 9% लड़के और 8% लड़कियाँ निम्न श्रेणी में आए। शहरी क्षेत्र में 18% और ग्रामीण क्षेत्र में 13% छात्र उच्च श्रेणी में थे। अध्ययन ने स्थानीय भिन्नता को महत्वपूर्ण पाया, लेकिन लिंग के आधार पर प्रेरणा में कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं मिला।

(ओकिग्बो, 2023) ने अपने अध्ययन में बतलाया है कि अध्ययन में अकादमिक प्रेरणा और माध्यमिक विद्यालय के छात्रों के गणितीय प्रदर्शन के बीच संबंधों की जांच की गई। यह सहसंबंध सर्वेक्षण 2021-2022 के दौरान डेल्टा स्टेट, नाइजीरिया में 1,650 वरिष्ठ माध्यमिक छात्रों पर किया गया। डेटा संग्रह के लिए अकादमिक प्रेरणा प्रश्नावली (AMQ) का उपयोग किया गया, जिसकी विश्वसनीयता 0.68 क्रोनबैक अल्फा थी। पियर्सन सहसंबंध विश्लेषण से पता चला कि प्रेरणा और गणितीय प्रदर्शन के बीच नकारात्मक संबंध था। हालांकि, प्रेरणा के स्तरों में अंतर पाया गया। निष्कर्षों के आधार पर, गणित शिक्षकों और मार्गदर्शन परामर्शदाताओं को छात्रों की प्रेरणा बढ़ाने और प्रदर्शन सुधारने हेतु प्रभावी शिक्षण रणनीतियाँ अपनाने की सिफारिश की गई।

(गुप्ता, 2018) ने ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि अभिप्रेरणा का तुलनात्मक अध्ययन किया तथा परिणामस्वरूप पाया गया कि ग्रामीण एव शहरी क्षेत्रों के माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों एवं छात्राओं के शैक्षिक उपलब्धि अभिप्रेरणा में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।

अध्ययन के उद्देश्य :-

- माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विज्ञान और कला स्ट्रीम के छात्रों की शैक्षणिक प्रेरणा और शैक्षणिक उपलब्धि के बीच अंतर का अध्ययन करना।
- शैक्षणिक उपलब्धि पर शैक्षणिक प्रेरणा के प्रभाव का अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकल्पनाएं :-

(H_0): माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विज्ञान एवं कला वर्ग के विद्यार्थियों की शैक्षिक प्रेरणा और शैक्षिक उपलब्धि के बीच कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं है।

(H_1): माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विज्ञान एवं कला वर्ग के विद्यार्थियों की शैक्षिक प्रेरणा और शैक्षिक उपलब्धि के बीच महत्वपूर्ण अंतर है।

(H_0): शैक्षिक प्रेरणा का शैक्षिक उपलब्धि पर महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं है।

(H_1): शैक्षिक प्रेरणा का शैक्षिक उपलब्धि पर महत्वपूर्ण प्रभाव है।

अध्ययन विधि :

वर्तमान शोध कार्य में वर्णनात्मक सर्वेक्षण अनुसंधान विधि का प्रयोग किया गया है। आंकड़ों के एकत्रीकरण एवं विश्लेषण हेतु मात्रात्मक शोध उपागम का प्रयोग किया गया है।

जनसंख्या (समग्र):- प्रस्तुत अध्ययन में समग्र काशी शहर के उच्चतर माध्यमिक स्तर विद्यालय के रूप में कक्षा 11 से 12 तक के विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों को सम्मिलित किया गया है।

न्यादर्श :- प्रस्तुत अध्ययन में संभाविता आधारित प्रतिदर्शन विधि तथा प्रविधि के आधार पर समग्र से संबंधित शहरी क्षेत्र के उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालयों से यादृच्छिक (Random) प्रतिदर्शन विधि द्वारा कुल 130 विद्यार्थियों को न्यादर्श के रूप में चयनित किया गया है।

आंकड़ों के संग्रहण हेतु प्रयुक्त शोध उपकरण :-

प्रस्तुत अध्ययन के उद्देश्यों की पूर्ति तथा परिकल्पनाओं के परीक्षण हेतु आंकड़ों का संग्रहण करने के लिए पहले से विकसित की गई प्रश्नावली के उपयोग के माध्यम से डेटा एकत्र किया जाएगा।

आंकड़ों के विश्लेषण हेतु प्रयुक्त सांख्यिकी प्रविधियां :-

प्रस्तुत शोधकार्य में शोधकर्ता द्वारा संकलित आंकड़ों का विश्लेषण विषय विशेषज्ञ की सहायता से एस. पी. एस. एस. (SPSS) सॉफ्टवेयर का उपयोग करके किया गया व अध्ययन के उद्देश्यों के अनुरूप निर्मित शून्य परिकल्पनाओं के निराकरण हेतु उपयुक्त सांख्यिकी प्रविधियों के माध्यम से मध्यमान, मानक विचलन, टी-टेस्ट तथा एनोवा परीक्षण आदि की गणना की गयी है।

निष्कर्ष

तालिका:1 आयु की आवृत्ति और प्रतिशत.

आयु		
	आवृत्ति	प्रतिशत.
16	30	23.1
17	54	41.5
18	27	20.8
19	19	14.6
कुल	130	100.0

तालिका 1 दर्शाती है कि सर्वेक्षण में भाग लेने वाले कुल 130 व्यक्तियों में से अधिकांश की आयु 17 वर्ष थी, जो 41.5% (54 व्यक्ति) के साथ सबसे अधिक प्रतिनिधित्व करती है। इसके बाद 16 वर्षीय प्रतिभागी 23.1% (30 व्यक्ति) के साथ दूसरे स्थान पर रहे। 18 वर्षीय प्रतिभागियों की संख्या 27 (20.8%) रही, जबकि 19 वर्ष की आयु के सबसे कम 19 व्यक्ति (14.6%) थे। यह वितरण दर्शाता है कि सर्वेक्षित समूह में 17 वर्षीय प्रतिभागियों की संख्या अन्य आयु वर्गों की तुलना में अधिक थी।

ग्राफ:1 आयु का ग्राफिकल प्रतिनिधित्व.

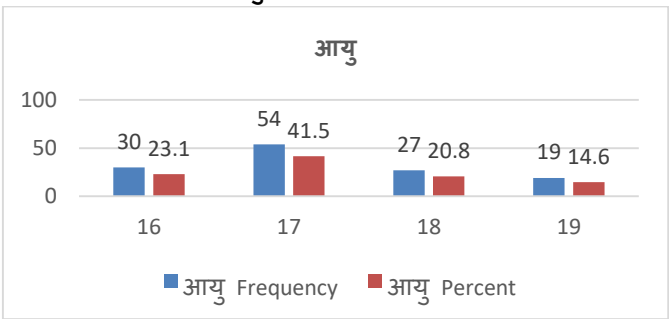

तालिका:2 लिंग की आवृत्ति और प्रतिशत.

लिंग		
	आवृत्ति	प्रतिशत.
पुरुष	80	61.5
महिला	50	38.5
कुल	130	100.0

तालिका 2 दर्शाती है कि सर्वेक्षण में भाग लेने वाले कुल 130 व्यक्तियों में पुरुष प्रतिभागियों की संख्या 80 (61.5%) थी, जबकि महिला प्रतिभागियों की संख्या 50 (38.5%) रही।

ग्राफ: 2 लिंग का ग्राफिकल प्रतिनिधित्व.

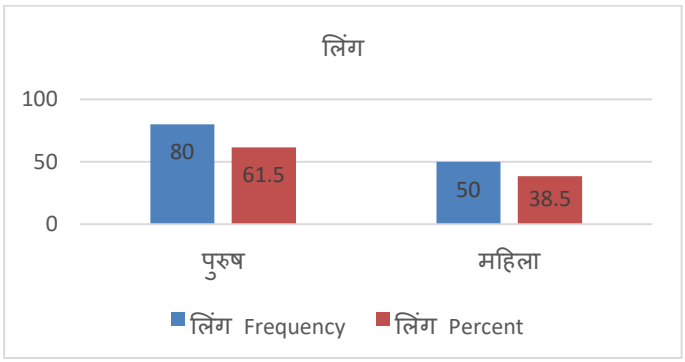

तालिका: 3 संकाय की आवृत्ति और प्रतिशत.

संकाय		
	आवृत्ति	प्रतिशत.
कला	65	50.0
विज्ञान	65	50.0
कुल	130	100.0

तालिका 3 दर्शाती है कि सर्वेक्षण में कला और विज्ञान संकाय के प्रतिभागियों की संख्या समान रही, प्रत्येक संकाय से 65 प्रतिभागी (50.0%) शामिल थे।

ग्राफ: 3 संकाय का ग्राफिकल प्रतिनिधित्व.

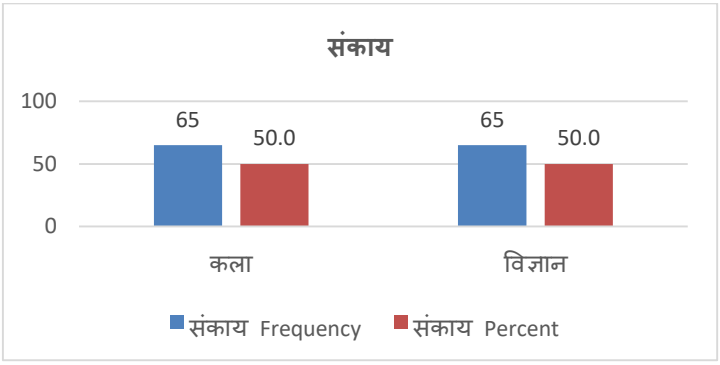

तालिका: 4 कक्षा की आवृति और प्रतिशत.

कक्षा		
	आवृत्ति	प्रतिशत.
11	76	58.5
12	54	41.5
कुल	130	100.0

तालिका दर्शाती है कि सर्वेक्षण में शामिल कुल 130 प्रतिभागियों में से 76 (58.5%) कक्षा 11 के थे, जबकि 54 (41.5%) कक्षा 12 के थे। यह दर्शाता है कि अध्ययन में कक्षा 11 के विद्यार्थियों की भागीदारी कक्षा 12 की तुलना में अधिक थी।

ग्राफ: 4 कक्षा का ग्राफिकल प्रतिनिधित्व.

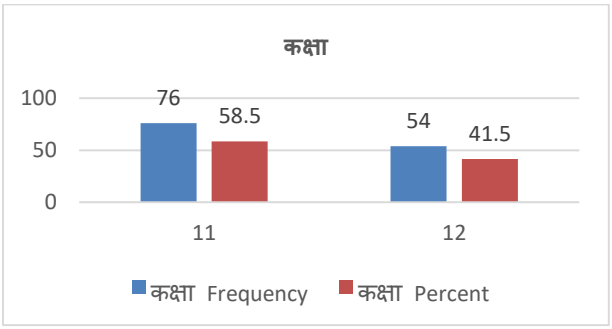

तालिका: 5 टी. टेस्ट.

Group Statistics					
संकाय		N	Mean	Std. Deviation	Std. Error Mean
शैक्षिक प्रेरणा	कला	65	27.8000	7.42294	.92070
	विज्ञान	65	34.2923	6.68422	.82908
शैक्षिक उपलब्धि	कला	65	21.5231	6.29262	.78050
	विज्ञान	65	25.6000	5.98644	.74253

Independent Samples Test										
		Levene's Test for Equality of Variances		t-test for Equality of Means						
									95% Confidence Interval of the Difference	
		F	Sig.	t	df	Sig. (2-tailed)	Mean Difference	Std. Error Difference	Lower	Upper
शैक्षिक प्रेरणा	Equal variances assumed	.510	.477	-5.240	128	.000	-6.49231	1.23898	-8.94383	-4.04078
	Equal variances not assumed			-5.240	126.619	.000	-6.49231	1.23898	-8.94409	-4.04053
शैक्षिक उपलब्धि	Equal variances assumed	.001	.972	-3.784	128	.000	-4.07692	1.07728	-6.20851	-1.94534
	Equal variances not assumed			-3.784	127.683	.000	-4.07692	1.07728	-6.20856	-1.94529

टी-टेस्ट के परिणाम दर्शाते हैं कि विज्ञान और कला संकाय के विद्यार्थियों की शैक्षिक प्रेरणा और शैक्षिक उपलब्धि में महत्वपूर्ण अंतर है। शैक्षिक प्रेरणा के लिए, विज्ञान संकाय (Mean = 34.2923, SD = 6.68422) के विद्यार्थियों का औसत स्कोर कला संकाय (Mean = 27.8000, SD = 7.42294) की तुलना में अधिक था। t-मान (-5.240) और p-मान (.000) दर्शाते हैं कि यह अंतर सांख्यिकीय रूप से अत्यधिक महत्वपूर्ण है ($p < 0.05$)। इसी प्रकार, शैक्षिक उपलब्धि में भी विज्ञान संकाय (Mean = 25.6000, SD = 5.98644) के विद्यार्थियों का औसत स्कोर कला संकाय (Mean = 21.5231, SD = 6.29262) की तुलना में अधिक था। प्राप्त t-मान (-3.784) और p-मान (.000) भी दर्शाते हैं कि यह अंतर सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण है। चूंकि दोनों ही मामलों में p-मान .000 ($p < 0.05$) है, इसलिए शून्य परिकल्पना (H_0) को अस्वीकार किया जाता है। इसका अर्थ है कि माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विज्ञान एवं कला वर्ग के विद्यार्थियों की शैक्षिक प्रेरणा और शैक्षिक उपलब्धि के बीच महत्वपूर्ण अंतर पाया गया।

तालिका: 6 प्रतिगमन परीक्षण.

Model Summary				
Model	R	R Square	Adjusted R Square	Std. Error of the Estimate
1	.743[a]	.552	.549	4.33257
a. Predictors: (Constant), शैक्षिक प्रेरणा				

ANOVA[a]						
Model		Sum of Squares	df	Mean Square	F	Sig.
1	Regression	2965.304	1	2965.304	157.972	.000[b]
	Residual	2402.704	128	18.771		
	Total	5368.008	129			
a. Dependent Variable: शैक्षिक उपलब्धि						
b. Predictors: (Constant), शैक्षिक प्रेरणा						

Coefficients[a]						
		Unstandardized Coefficients		Standardized Coefficients		
Model		B	Std. Error	Beta	t	Sig.
1	(Constant)	4.365	1.574		2.773	.006
	शैक्षिक प्रेरणा	.618	.049	.743	12.569	.000
a. Dependent Variable: शैक्षिक उपलब्धि						

प्रतिगमन परीक्षण के परिणाम दर्शाते हैं कि शैक्षिक प्रेरणा का शैक्षिक उपलब्धि पर महत्वपूर्ण प्रभाव है। मॉडल सारांश में, R का मान .743 दर्शाता है कि शैक्षिक प्रेरणा और शैक्षिक उपलब्धि के बीच उच्च सकारात्मक सहसंबंध है। R Square .552 इंगित करता है कि शैक्षिक उपलब्धि में 55.2% परिवर्तन शैक्षिक प्रेरणा द्वारा समझाया जा सकता है, जो एक मजबूत व्याख्यात्मक शक्ति को दर्शाता है। ANOVA तालिका में, F-मान 157.972 और p-मान .000 ($p < 0.05$) दर्शाते हैं कि प्रतिगमन मॉडल सांख्यिकीय रूप से अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इसका अर्थ है कि शैक्षिक प्रेरणा शैक्षिक उपलब्धि की भविष्यवाणी करने में प्रभावी कारक है। गुणांक (Coefficients) तालिका में, शैक्षिक प्रेरणा के लिए B-मान .618 है, जिसका अर्थ है कि शैक्षिक प्रेरणा में प्रत्येक इकाई वृद्धि के साथ शैक्षिक उपलब्धि में 0.618 इकाई की वृद्धि होगी। t-मान 12.569 और p-मान .000 दर्शाते हैं कि यह प्रभाव सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण है। चूंकि p-मान .000 ($p < 0.05$) है, इसलिए शून्य परिकल्पना (H_0) को अस्वीकार किया जाता है। इसका अर्थ है कि शैक्षिक प्रेरणा का शैक्षिक उपलब्धि पर महत्वपूर्ण प्रभाव पाया गया।

निष्कर्ष

इस अध्ययन के निष्कर्षों से यह स्थापित हुआ कि शैक्षिक प्रेरणा और शैक्षिक उपलब्धि के बीच सकारात्मक और महत्वपूर्ण संबंध है। विज्ञान संकाय के विद्यार्थियों की प्रेरणा और उपलब्धि, कला संकाय के विद्यार्थियों की तुलना में अधिक पाई गई, जिससे यह स्पष्ट होता है कि शैक्षिक प्रेरणा अध्ययन के प्रति रुचि और प्रदर्शन को प्रभावित करती है। प्रतिगमन विश्लेषण के अनुसार, प्रेरणा शैक्षिक उपलब्धि का एक महत्वपूर्ण भविष्यवक्ता है। विद्यालयों को विद्यार्थियों की प्रेरणा बढ़ाने के लिए प्रभावी शिक्षण विधियों और प्रोत्साहन रणनीतियों को अपनाने की आवश्यकता है। यह निष्कर्ष शिक्षकों, नीति निर्माताओं और अभिभावकों के लिए उपयोगी हो सकते हैं, ताकि वे विद्यार्थियों की प्रेरणा को बढ़ाने के उपायों को लागू कर सकें। इस अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष भविष्य में और अधिक व्यापक शोध की आवश्यकता को इंगित करते हैं, जिससे शैक्षिक प्रेरणा के अन्य कारकों की विस्तृत पड़ताल की जा सके।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अमराईकुरोश, मोतलाघशाहरज़ाद इलाही, ज़लानीहमज़ेह अज़ीज़ी, & पारहोनहादी, “द रिलेशनशिप बिटवीन अकादमिक मोटिवेशन एंड एकडेमिक अचिएवेमेंट स्टूडेंट्स”, प्रोसडीए सोशल एंड बिहेवियरल साइंसेज, 2011, 399-402।
2. इमैनुएलअफ्फुम-ओसेई, "अचीवमेंट मोटिवेशन अकादमिक सेल्फ-कांसेप्ट एंड अकादमिक अचीवमेंट अमंग हाई स्कूल स्टूडेंट्स", यूरोपियन जर्नल ऑफ़ रिसर्च एंड रिफ्लेक्शन इन एजुकेशनल साइंसेज, 2014, 24-37।
3. एरलिंडारीता, & देवीसारी रहमा, "अचीवमेंट मोटिवेशन एंड अकादमिक अचीवमेंट डिफ्रेंस ऑफ इंग्लिश स्टूडेंट्स", रिसर्च गेट, 2015, 57-66।
4. ओकिग्बोएबेले चिनेलो, "रिलेशनशिप बिटवीन अकादमिक मोटिवेशन एंड अकादमिक परफॉरमेंस ऑफ़ सेकेंडरी स्कूल स्टूडेंट्स इन मैथमेटिक्स", इन्डोनेशियाई जर्नल ऑफ़ लर्निंग एजुकेशन एंड काउन्सलिंग, 2023, 10-16।
5. कंडावेलके., & वासुदेवनवी, "ए स्टडी ऑन अकाडमिक मोटिवेशन अमंग हाई स्कूल स्टूडेंट्स इन तिरुवन्नामलाई डिस्ट्रिक्ट", जर्नल ऑफ़ पॉजिटिव स्कूल साइकोलॉजी, 2022, 1775-1782।
6. काताकीबिलिना देवी, & चालिहाअसोमी, "ए स्टडी ऑन अकादमिक अचीवमेंट मोटिवेशन एंड अकादमिक अचीवमेंट ऑफ़ द क्लास 10 स्टूडेंट्स ऑफ़ डिब्रूगढ़ डिस्ट्रिक्ट असम", एडलवाइस एप्लाइड साइंस एंड टेक्नोलॉजी, 2024, 1940-1953।
7. कुलदीप, "माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि अभिप्रेरणा का तुलनात्मक अध्ययन", इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ एप्लाइड रिसर्च,2019, 284-287।
8. गुप्ताकिरण, "ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि अभिप्रेरणा का तुलनात्मक अध्ययन", इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ साइंटिफिक रिसर्च इन साइंस एंड टेक्नोलॉजी, 2018, 1991-1996।
9. दलालगौरव, & रूपाली शर्मा, "अकादमिक अचीवमेंट मोटिवेशन एंड स्कूल सेटिस्फैक्शन एमंग एडोलोसैंट्स", द इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ इंडियन साइकोलॉजी, 2023, 1194-1528।
10. बनर्जीगोपा, & घोषडॉ. काजल कांति, "ए स्टडी ऑन इफ़ेक्ट ऑफ़ एकडेमिक मोटीवेसअन ऑफ़ द सेकंडरी स्कूल स्टूडेंट्स आन दा एकडेमिक एचिवेमेंट इन जियोग्राफी", इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ क्रिएटिव रिसर्च थॉट्स,2023, 261-264।
11. मिश्राआरती, & वर्मासंगीता, “उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों की उपलब्धि प्रेरणा के प्रभाव का अध्ययन.”, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ क्रिएटिव रिसर्च थॉट्स, 2023, 388-391।
12. मिश्राएच.पी., "अचीवमेंट मोटिवेशन ऑफ़ सेकेंडरी स्कूल स्टूडेंट्स इन मुर्शीदाबाद डिस्ट्रिक्ट ऑफ़ वेस्ट बंगाल", इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ पीस एजुकेशन एंड डेवलपमेंट, 2017, 15-23।
13. सिवरिकायाअहमत हक्तान, "द रिलेशनशिप बिटवीन अकादमिक मोटिवेशन एंड अकादमिक अचीवमेंट ऑफ़ द सटुडेन्ट्स", एशियाई जर्नल ऑफ़ एजुकेशन एंड ट्रेनिंग, 2019, 309-315।
14. सिंहकुलविंदर, "स्टडी ऑफ़ अचीवमेंट मोटिवेशन इन रिलेशन टू अकादमीक अचीवमेंट ऑफ़ स्टूडेंट्स", इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ एजुकेशनल प्लानिंग & एडमिनिस्ट्रेशन., 2011, 161-171।
15. सैनीप्रीति, & गौतमअंकिता. "अकादमिक अचीवमेंट मोटिवेशन: ए कम्पेरेटिव स्टडी ऑफ गवर्न्मेंट एंड प्राइवेट सेकेंडरी स्कूल स्टूडेंट्स डियूरिंग पांडेमिक ऑनलाइन क्लासेज", इंडियन जर्नल ऑफ़ एजुकेशनल टेक्नोलॉजी, 2024, 40-50।

अयोध्या और काशी में पर्यटन विकासः एक तुलनात्मक अध्ययन

कु.राधिका*

सारांश

भारत के उत्तर - प्रदेश राज्य में स्थित अयोध्या और काशी (वाराणसी) एक पवित्र धार्मिक तीर्थ स्थल है। जो पर्यटन के क्षेत्र में अद्‌वितीय स्थान रखतें हैं। प्राचीन भारतीय संस्कृति में ये मोक्षदायिनी नगरी के रूप में प्रसिद्‌ध थीं। ये भारत के धार्मिक, सांस्कृतिक, समाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक को प्रभावित करती हैं। सरयू नदी के दाएं किनारे पर अयोध्या प्रभु श्री राम की अवतरण भूमी के रूप में, वहीं गंगा नदी के बाएं किनारे पर काशी भगवान शंकर की प्रिय नगरी के रूप में विश्वविख्यात हैं। जहां प्राचीन मंदिर एवं घाट आदि विद्‌यमान हैं। इस लेख में इन दोनों की पर्यटन विकास यात्रा पर प्रकाश डाला गया हैं। घरेलू और विदेशी पर्यटकों को आकर्षित करने में कौन ज्यादा प्रभाव डाल रहा हैं , इसके आंकड़े प्रस्तुत किए गए हैं। उनके संरक्षण के लिए चलाई जा रही समस्त नीतियों के बाद भी बहुत सारे ऐसे घाट और मंदिर हैं जो समाप्त होने की स्थिति में हैं। आवश्यकता है कि उनको भी संरक्षित किया जाएं, और इसके लिए शासकीय प्रबंधन एवं जागरूकता को बढ़ाया जाएं। प्रस्तुत लेख - "अयोध्या और काशी में पर्यटन विकास: एक तुलनात्मक अध्ययन" पर आधारित हैं।

मुख्य बिंदु - पर्यटन, अयोध्या, काशी, विकास, मंदिर, घाट

❖ प्रस्तावना

अयोध्या और काशी (वाराणसी) तीर्थ पर्यटन के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। विगत वर्षों में राजनीतिक हस्तक्षेप के कारण यहां विकास की गति में तीव्रता आई हैं। क्योंकि पिछली सरकारों ने उनके पर्यटन क्षेत्रों में विकास को लेकर बहुत ही शिथिल थीं। लेकिन नयी सरकारों के आने के बाद ही अयोध्या में राम जन्मभूमि मंदिर का निर्माण पूर्ण हो पाया है और काशी में काशी विश्वनाथ कारिडोर का निर्माण होने से धार्मिक पर्यटन में बहुत ही तेजी वृद्‌धि हुई हैं। यें दोनों ही पवित्र स्थल भारत की सांस्कृतिक विरासत हैं। जो धार्मिक तीर्थ यात्रियों को अपनी तरफ तेजी से आकर्षित कर रही हैं। राम मंदिर बनने के बाद अयोध्या में लाखों श्रद्‌धालुओं की भारी भीड़ उमड़ रही हैं, और काशी भी इन आंकड़ों से अछूता नहीं है वहां भी लाखों की संख्या में तीर्थयात्रियों का जमघट लगा रहता है। यह सिर्फ राष्ट्रीय ही नहीं, बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय पर्यटकों को भी अपनी तरफ आकर्षित करने में सक्षम हैं। यहां बहुत सारे मंदिर और घाट है जो प्राकृतिक सुंदरता का बहुत ही मनोरम दृश्य प्रस्तुत करते हैं। यह धार्मिक क्षेत्र के साथ-साथ आर्थिक क्षेत्र में भी वृद्‌धि कर रही हैं। स्थानीय निवासियों के रोजगार को भी बढ़ावा दे रही हैं। ये दोनों नगर केवल उत्तर प्रदेश सरकार को ही आर्थिक रूप से समृद्‌ध नहीं बना रहे, अपितु भारत सरकार के अर्थव्यवस्था में भी वृद्‌धि कर रहे हैं। प्रस्तुत लेख अयोध्या और काशी में पर्यटन विकास के महत्व को दर्शाता है। ये पर्यटकों को आकर्षित करने की क्षमता रखते हैं। जो पवित्र क्षेत्र आवको को कम ज्ञात है, वहां पर्याप्त प्रचार - प्रसार के माध्यम से उनको आकर्षित किया जा सकता है। इससे इन क्षेत्रों में भी आर्थिक वृद्‌धि होगी।

❖ अयोध्या की पर्यटन विकास यात्रा

अयोध्या नगर अयोध्या जिले उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल में अक्षांश $26^0$47‘ 59.08“ उत्तर और देशांतर $82^0$12‘ 18.59“ पूर्व पर स्थित है। अयोध्या नगर एक महत्वपूर्ण तीर्थ स्थान है। यह भारत के सात सबसे पवित्र नगरों में से एक है। अयोध्या जिसे साकेत के नाम से जाना जाता है भारत का एक प्राचीन नगर है, जो भगवान श्री राम की अवतरण भूमी एवं जैनियों के पांच तीर्थंकरों की भी जन्म भूमि है। बौद्‌ध धर्म के गौतम बुद्‌ध भी यहां सोलह ग्रीष्मकाल बिताए थे। सिख धर्म के गुरु गोविंद ने भी यहां निवास किया था। यहां तीर्थ यात्रा के लिए प्रतिवर्ष लाखों

* शोध छात्रा, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, सम्पर्क–8090460372
ई–मेल : radhikakumarigkp36@gmail.com

लोग आते हैं। हिंदू पौराणिक कथाओं में अत्यधिक पूजनीय सरयू के अनुसार, यह विष्णु के मस्तक का प्रतिनिधित्व करता है और भारत के तीर्थों में प्रमुख है। अयोध्या मंदिरों का शहर है। नदी के किनारे स्नान घाट और कई मंदिर हैं। प्रमुख घाट गुप्तार घाट, रामघाट घाट, गोलाघाट, लक्ष्मण घाट, जानकी घाट और राम की पैड़ी हैं। यहां के प्रसिद्ध मंदिर रामजन्म भूमि मंदिर, कनक भवन, हनुमानगढ़ी, नागेश्वर नाथ मंदिर, कालेनाथ मंदिर, देवकाली मंदिर और मणि पर्वत आदि हैं। मान्यता है कि इस नगर को मनु ने बसाया और अयोध्या नाम दिया जिसका अर्थ है अ-युद्ध अर्थात जिसे युद्ध के द्वारा प्राप्त न किया जा सके। इसे कोसल जनपद की राजधानी भी कहा जाता था। कहा जाता है कि कोसल वंश में 125 राजा शामिल थे, जिनमें से 90 ने महाभारत के अंत से पहले तक शासन किया था पांचवीं से छठी शताब्दी ईसा पूर्व में साकेत के नाम से प्रसिद्ध था। उस समय यह बौद्ध केंद्र था। पांचवीं शताब्दी ईसा पूर्व में चीनी बौद्ध भिक्षु फैक्सियन ने उस समय के 100 मठों का उल्लेख किया है। पुरातात्विक और साहित्य साक्ष्य बताते हैं कि वर्तमान अयोध्या की साइट पांचवीं या छठी शताब्दी ईसा पूर्व के बीच में शहरी बस्ती के रूप में विकसित हो गई थी। साइट को प्राचीन साकेत शहर के स्थान से पहचाना जाता है, जो संभवतः दो महत्वपूर्ण सड़कों श्रावस्ती-प्रतिष्ठान उत्तर-दक्षिण सड़क और राजगृह-काशी-श्रावस्ती-तक्षशिला पूर्व-पश्चिम सड़क के जंक्शन पर स्थित एक बाजार के रूप में उभरा। इस अवधि के दौरान शहर वाणिज्यिक राजधानी और तीर्थ स्थान बन गया। गुप्तकाल के दौरान साकेत को इक्ष्वाकु वंश की राजधानी अयोध्या को पौराणिक शहर के रूप में मान्यता दि गई थी। वर्ष 1226 ई. में नवाबों ने कई खूबसूरत इमारतों के साथ अयोध्या की शोभा बढ़ाई उनमें से गुलाब बाड़ी, मोती महल और बहु बेगम का मकबरा उल्लेखनीय है। शुजा-उद्दौला की पत्नी प्रसिद्ध बहु बेगम थी जो मोती महल में रहती थी। इनका मकबरा जवाहर बाग में मोती महल के पास हैं, जहां उन्हें 1816 में उनकी मृत्यु के बाद दफनाया गया था। दरब-अली-खान बेगम के मकबरे के उपर से शहर का नजारा देखा जा सकता है। बहु बेगम मर्यादा धारण करने वाली महान और विशिष्ट महिला थी। अयोध्या की अधिकांश इस्लामी इमारतों का श्रेय उन्हीं को जाता है। 1816 में बहु बेगम की मृत्यु की तारीख से अवध के विलय तक अयोध्या शहर धिरे-धिरे क्षय में गिर गया। प्राचीन काल में अयोध्या में बस्तियां रामकोट, वशिष्ठ कुंड, चक्र तीर्थ और निर्मोचन घाट तक सीमित थीं। हालांकि मुस्लिम सम्राटों के शासन के दौरान अयोध्या का विकास गोलाघाट, लक्ष्मण किला, स्वर्ग द्वार, तुलसी चैराहा, हनुमानगढ़ी और कटरा तक बढ़ा। ब्रिटिश काल में अयोध्या को रामगंज, श्रृंगार हाट, अयोध्या रेलवे स्टेशन, प्रमोद वन, तुलसी बाग, छोटी छावनी आदि तक विकसित किया गया। आजादी के बाद भी अयोध्या में कोई बड़ा विकास नहीं देखा गया। अयोध्या में विकास की प्रक्रिया बहुत धीमी और स्थिर गति से विकसित हुई। रामचरितमानस, जानकी महल, श्रीराम चिकित्सालय, साकेत महाविद्यालय, वाल्मीकि भवन, साकेत पथिक निवास जैसे क्षेत्रों में विकास देखा गया और 1965 में सरयू नदी पर पुल का विकास किया गया। श्रीराम जन्मभूमि आंदोलन की पृष्ठभूमि रही अयोध्या को बहुत सारी बाधाओं के बाद श्री राम जन्मभूमि को अंततः 5 नवंबर 2019 को न्याय मिला और श्री राम की जीत हुई और प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने 5 अगस्त 2020 को जब राम मंदिर की आधारशिला रखी तो उसी दिन ही अयोध्या के नवनिर्माण की भी नींव पड़ गई थी। जैसे-जैसे राममंदिर निर्माण का कार्य आगे बढ़ा, उसी के सामानांतर अयोध्या को आस्था के साथ-साथ वैश्विक पर्यटन नगरी बनाने के भी प्रयास तेजी से हुए। केन्द्र व प्रदेश सरकार रामनगरी को विश्वस्तरीय सुविधाओं से लैस करने की योजना पर गंभीर है। सरकार का प्रयास है कि रामनगरी की पौराणिकता एवं प्राचीनता को अक्षुण्ण रखते हुए अयोध्या को विश्वस्तरीय नगरी के रूप में नगरी पहचान दीलाई जाएं। इसके लिए सरकार ने विजन डाक्यूमेंट बनाया है। जिसमें रामनगरी की पौराणिक धरोहरों को सहेजते हुए पर्यटन की दृष्टि से विकास की योजनाएं बनाई गई है। इसी योजना के फलस्वरूप पर्यटन विकास के करोड़ों की योजनाओं पर काम जारी है। आकर्षक व विश्वस्तरीय सड़कें, अंतरराष्ट्रीय बस अड्डा, महर्षि वाल्मीकि अंतरराष्ट्रीय एयरपोर्ट अयोध्या धाम, रेलवे स्टेशन अयोध्या धाम, 1200 एकड़ में नव्य अयोध्या, भजन संध्या स्थल, कोरिया पार्क, मल्टीलेवल पार्किंग, और घाटों की भव्यता सहित अन्य कई योजनाएं रामनगरी की गरिमा को विश्व पटल पर नई पहचान दिलाने में

सहायक साबित होंगी। चैदह कोसी एवं पंचकोसी परिक्रमा मार्गों को यात्री सुविधाओं आच्छादित करने का काम जारी है। इनमें से बहुत सारी योजनाएं पुरी हो गई है, बहुत सारी नई योजनाएं भी सरकार ला रही है। इसी बीच 22 जनवरी 2024 नव निर्माणाधिन मंदिर में रामलला की प्राण-प्रतिष्ठा के साथ अयोध्या पुरे विश्व के लिए आकर्षण का केंद्र बन गई। 2024 में यह वैश्विक नगरी वर्ल्ड क्लास सीटी के रूप में स्थापित हो गई। रामनगरी का सपना साकार होने के साथ अयोध्या में 31 हजार करोड़ से ज्यादा की परियोजनाओं में अधिकतर 2024 में पूरी हो रही है।

❖ **अयोध्या पर्यटन विभाग की प्रस्तावित निर्माणाधीन परियोजनाएं**

सीडीपी के तहत पर्यटन विकास हेतु निम्न परियोजनाओं के निर्माण सौन्दर्यीकरण प्रस्तावित है

- ग्रीनफील्ड टाउनशिप ।
- पर्यटन सुविधा केंद्र ।
- मुख्य सड़क अयोध्या और राम जन्मभूमि मंदिर के लिए संपर्क मार्ग।
- सरयू नदी के किनारे का विकास ।
- धर्म पथ-स्मार्ट रोड ।
- पंचकोसी परिक्रमा मार्ग ।
- चैदह कोसी परिक्रमा मार्ग ।
- सामुदायिक सुविधाएं एवं तीन स्थानों पर पार्किंग की सुविधाओं का विकास ।
- स्पैशियल स्ट्रक्चर प्लान एवं आर्थिक क्रियाओं हेतु प्रस्ताव तैयार किया जाना ।

❖ **काशी में पर्यटन विकास यात्रा**

काशी शहर जिसे वाराणसी के नाम से जाना जाता है, उत्तर प्रदेश के वाराणसी जिले में गंगा नदी के बाएं किनारे पर स्थित है। यह शहर धार्मिक प्रथाओं और भक्ति का केंद्र और तीर्थ स्थल रहा है। वाराणसी या काशी दुनिया के सबसे पुराने जीवित शहरों में से एक है वाराणसी में लगभग 1000 ई. पू. पहली मानव बस्ती दर्ज की गई, हालांकि शहर मुख्य रूप से 18 वीं शताब्दी के दौरान विकसित हुआ। दुनिया भर के अन्य प्राचीन शहर साम्राज्यवादी और औपनिवेशिक हमलों के बाद मुश्किल से बचें हैं। जबकि वाराणसी शहर सदियों से फलता-फूलता रहा है। आधुनिकीकरण के युग में भी शहर ने अपने प्राचीन आकर्षण और समृद्ध संस्कृति को सफलता पूर्वक बनाएं रखा है। 8 वीं शताब्दी के दौरान, आदि शंकराचार्य ने इस स्थान पर शिव की पूजा शुरू की थी। बाद में 1780 में काशी विश्वनाथ का मंदिर इंदौर की रानी अहिल्याबाई होल्कर के द्वारा बनाया गया था। इसे स्वर्ण मंदिर के रूप में में भी जाना जाता है। और यह वाराणसी के सबसे प्रसिद्ध मंदिरों में से एक है। वाराणसी शहर के मुख्य आकर्षक इसके नदी तट और सीढ़ियों वाले घाट है। नदी तट का विरासत क्षेत्र नदी लगभग 200 मीटर अंदर की ओर और गंगा नदी के किनारे 6.8 किमी तक फैला हुआ है। गंगा नदी तट का यह विरासत वाला हिस्सा अर्धचंद्राकार है और दक्षिण में आशी नाला और उत्तर में वराना नदी के संगम के बीच स्थित है। इस विरासत वाले नदी तट के भीतर कुल 84 घाट स्थित है। घाटों पर विशाल पुरानी इमारतें, मंदिर और धार्मिक स्थल है, जिन्हें मुख्य रूप से 18 वीं और 20 वीं शताब्दी के बीच राजाओं और सामंतों के संरक्षण में बनाया गया था। वाराणसी के घाटों का विशेष महत्व है, क्योंकि वे विरासत को रोजमर्रा की जिंदगी से जोड़ते हैं। सदियों पुराने घाट और आस पास के स्मारक स्थानीय निवासियों के साथ साथ पर्यटकों और तीर्थ यात्रियों की रोजमर्रा के जिंदगी का हिस्सा है। नदी तट सांस्कृतिक विरासत का एक अमूर्त हिस्सा भी है, क्योंकि यह शहर के हर अनुष्ठान और त्योहार का एक जरूरी हिस्सा है। सभी अनुष्ठान घाटों पर गंगा नदी में पवित्र स्नान के साथ शुरू होते हैं। काशी के घाटों का जीर्णोद्धार और पुनर्निर्माण के लिए हाल ही में एक और रचनात्मक प्रस्ताव सामने आया है, जिसे रिवर फ्रंट डेवलपमेंट प्रोजेक्ट रुप में जाना जाता है। इस परियोजना के परिणामस्वरूप रिवर फ्रंट और घाट क्षेत्रों में महत्वपूर्ण परिवर्तन होने का अनुमान है, घाटों के नदी से दुसरी ओर परियोजनाओं में चार लेन की एलिवेटेड सड़क शामिल है। जो आठ किलोमीटर लंबी है। परियोजना

के अनुसार तीन अतिरिक्त पुलों का निर्माण किया जाएगा यह अनुमान है कि इस परियोजना के समाप्त होने के बाद पर्यटन फलेगा फुलेगा। काशी विश्वनाथ मंदिर परियोजना का उद्देश्य विश्वनाथ मंदिर को गंगा के घाटों से जोड़ना था। मार्ग मणिकर्णिका और ललिता घाट को मंदिर से जोड़ेगा। और मंदिर नदी के सामने से दिखाई देगा। मंदिर जो घाटों से 400 मीटर की दूरी पर स्थित है। आगंतुकों के लिए केवल भीड़ भरे इलाके से होकर संकरी गलियों से ही पहुंचा जा सकता था। परियोजना में मुख्य रूप से घाटों से मंदिर तक एक चौड़ी और साफ सड़क और चमकदार रोशनी वाली सीढ़ियां बनाने पर ध्यान केंद्रित किया गया था। क्योंकि पर्यटक और तीर्थ यात्री मुख्य रूप से शहर के पुराने हिस्से (यानी गंगा घाट और विश्वनाथ मंदिर) को देखने के लिए काशी आते हैं। एक कनेक्टिविटी कारिडोर उनके लिए बहुत काम का होगा। मंदिर की तीर्थ यात्रीयों और पर्यटकों के लिए तीर्थ मार्ग से सुलभ बनाकर पर्यटक खिड़कियां घाट और राजघाट से नाव की सवारी के माध्यम से घाट तक पहुंच सकते हैं। विश्वनाथ मंदिर का यह बड़ा बदलाव 1780 के बाद पहला था। इंदौर की मराठी रानी अहिल्याबाई होल्कर ने विश्वनाथ मंदिर और उसके आस-पास के क्षेत्र का जीर्णोद्धार कराया था लेकिन तब से इस क्षेत्र में कोई बड़ा बदलाव नहीं हुआ है। इस परियोजना को 2018 में लांच किया गया था और मार्च 2019 में काम शुरू हुआ था। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने 13 दिसंबर 2021 भव्य काशी विश्वनाथ कारिडोर का लोकार्पण किया था। काशी विश्वनाथ मंदिर विस्तारीकरण, सौन्दर्यीकरण योजना रुप में जानी जाने वाली इस परियोजना का अनुमान 400 करोड़ रुपए था। लेकिन इसके निर्माण में 900 करोड़ रुपए खर्च हुए और यह 5 लाख वर्ग फिट में बना है। पुनर्विकास की योजना के अनुसार नदी और प्राचीन मंदिर के बीच के सभी निर्माण को ध्वस्त करके 43,636 वर्ग मीटर का क्षेत्र खाली कर दिया गया था। योजना को पुरा करने के लिए एक विकास बोर्ड बनाया गया था। इस विशाल स्थान को बनाने के लिए चयनित संपत्तियों को हासिल करने के लिए कुल 390 करोड़ रुपए खर्च किए गए। 390 करोड़ रुपए में से इस क्षेत्र में रहने वाले 1,400 लोगों के पुनर्वास के लिए आवंटित किए गए थे। परियोजनाओं के लिए ध्वस्त की गई संकरी गलियों और आस पास के क्षेत्रों को लाहौरी टोला , नीलकंठ और ब्रह्मनाल के नाम से जाना जाता था। लाहौरी टोला का पड़ोस शहर के सबसे पुराने हिस्सों में से एक है। महाराज रणजीत सिंह के शासन काल के दौरान पहले निवासी लाहौर से इस स्थान पर आके बसे थे। वर्तमान में मूल निवासियों की छठी पीढ़ी इस क्षेत्र में रह रही है। परियोजना में इससे प्रभावित लोगों के लिए विशिष्ट योजना है। अधिकारियों के अनुसार रामनगर में आठ एकड़ सरकारी भूमि पर पुनर्वास गृह बनाए जाने हैं। प्रक्रिया से प्रभावित दुकानदारों को परियोजना को पुरा होने के बाद मंदिरों के पास दुकानें आवंटित की जानी है। परियोजना का उद्देश्य न केवल मंदिर को घाट से जोड़ने वाला एक विस्तृत गलियारा बनाना है, बल्कि विभिन्न पर्यटन उद्देश्यों के लिए कई भवनों का विकास भी करना है। योजना के पुरा होने के बाद काशी विश्वनाथ मंदिर परिसर में 23 नई संरचनाएं होंगी। एक नए मंदिर चैक के निर्माण के साथ इन संरचनाओं में एक पर्यटक सुचना केन्द्र, मोक्ष गृह, सीटी गैलरी, गेस्ट हाउस बहुउद्देशीय हाल, लाकर रुम भोग शाला, पर्यटक सुविधा केंद्र, मुमुक्षु भवन, वैदिक केंद्र, सीटी म्यूजियम, फुड कोर्ट, व्यूइंग गैलरी और टायलेट शामिल होंगे। अधिकारियों के अनुसार मंदिर चैक तीर्थ यात्रियों के आराम करने और ध्यान करने की जगह होगी और पुरे मंदिर परिसर का स्थान एक बार में 50000-75000 तीर्थ यात्रियों को संभालने में सक्षम होगी। जबकि पहले यह संख्या कुछ सौ थी। परियोजना में हरित आवरण के महत्व पर भी विचार किया गया है। और यह निर्णय लिया गया है कि कुल 5.50 लाख वर्ग फुट का 70% हिस्सा हरित होगा। इस पर्यटन परियोजना के पुरा होने के बाद पर्यटन को बढ़ावा मिला और पर्यटकों में 10 गुना की वृद्धि हुई। शहर की पर्यटन का आकर्षण काफी हद तक बढ़ गया है।

❖ **अयोध्या में पर्यटकों के वार्षिक आंकड़े**

वर्ष	घरेलू	अंतर्राष्ट्रीय	कुल
2015	15432558	19077	15451635
2016	15482456	20979	15503435

2017	17549633	23926	17573559
2018	19217570	27043	19244613
2019	20122436.	26956	20149392
2020	6193537	2611	6196148
2021	-----	-----	-----
2022	23909014	1465	23910497
2023	57562428	8468	57570896
2024	109969702	2851	109972553

(2024- जनवरी से जून)

स्रोत - पर्यटन विभाग अयोध्या 2020,GIC BASED MASTER PLAN 2031, GOOGLE

काशी में पर्यटकों के वार्षिक आकड़ें

वर्ष	घरेलू	अंतर्राष्ट्रीय	कुल
2015	5000000	150000	6500000
2016	5500000	200000	5700000
2017	29952373	354646	30307019
2018	30129122	382378	30511500
2019	32141564	434516	32576080
2020	6291200	51973	6343173
2021	12715964	29985	12745931
2022	40349140	329090	40678230
2023	53787000	13700	85473633
2024	45982313	133999	16116312

(2024- जनवरी से जून) ***स्रोत*** *- chatgpt*

अयोध्या और काशी के पर्यटक आकड़ो का अध्ययन करने पता चलता है कि कभी वाराणसी अयोध्या से आगे थी पर्यटको को आकर्षित करने में। लेकिन 2024 के जो आंकड़े मिले वह चैकाने वाले हैं। अयोध्या ने वाराणसी को पीछे छोड़ उत्तर-प्रदेश का सबसे बड़ा पर्यटन आकर्षण केन्द्र बनने का गौरव हासिल किया। साल 2024 जनवरी से जून महीने में अयोध्या में लगभग 11 करोड़ देशी और विदेशी पर्यटक पहुंचे, जबकि वाराणसी में 4.61 करोड़ देशी और विदेशी पर्यटक आएं।

❖ **निष्कर्ष**

पर्यटन विकास की तुलना अगर की जाएं तो अयोध्या और काशी दोनों ही अभूतपूर्व रुप से चार से पांच वर्षों में बहुत ही तेज गति से पर्यटन के क्षेत्र में विकसित हुआ है। अयोध्या में श्रीराम जन्मभूमि मंदिर के निर्माण के साथ-साथ अन्य ऐसे मंदिर और घाटों को विकसित किया गया जो अपने अस्तित्व को खो रहे थे। वहीं काशी में काशी विश्वनाथ कारिडोर के साथ-साथ विभिन्न घाटों और मंदिरों को विकसित किया गया हैं। जिससे पर्यटन विकास में अभूतपूर्व वृद्धि हुई हैं। जहां तक अयोध्या और काशी की तुलना की बात है तो दोनों ही सनातन धर्म में बहुत ही महत्व के स्थान है। इसमें न कोई किसी से आगे है, न कोई किसी से पीछे है। सनातनियों के भावात्मक मन में

दोनों का ही समान स्थान है। आवश्यकता है उसे अक्षुण्ण बनाए रखने की, क्योंकि विकास के साथ-साथ बहुत सारी समस्याओं का सामना करना पड़ेगा इन शहरों को जिससे निपटने के लिए शासकीय प्रबंधकों को उचित प्रबंध करना होगा। तभी जाके इन दोनों शहरों की शोभा बनी रहेगी।

संदर्भ :

1. Narada Purana. (n.d). Gita press Gorakhpur
2. Ayodhya development Authority https://ayodhya.in Ayodhya Master Plan 2031v1.
3. https://www.amarujala.com/Uttar-pradesh/faizabad/with-the-construction-of-ram-tempal-the-posisibilities.of-tourism-development-are-being-expanded-Faizabad-news-lko597715982.
4. https://www.etvbharat.com/Hindi/Uttar-pradesh/state/ayodhya/vogi-government-released-complete-details-of-development-work-of-ramnagri-in-year-2024-ayodhya-will-devlop-as-an-international-spritual-and-tourist-city/up202401032041234094093 47.
5. उपरोक्त
6. अनन्या पति एवं मुजाहिद,विरासत सरक्षण और पर्यटन विकास पर लोगों के दृष्टिकोणः वाराणसी का एक केस अध्ययन,
7. https www.aajtak.in india uttar-pradesh story kashi-vishwanath-dham-kashi-vishwanath-corridor-10-bigshghlights-pm-modi-varanasi-nte-1372690-2021-12-13
8. उपरोक्त
9. Chat gpt
10. https www.jagranjosh.com/current-affairs ayodhya-has-becom-the-first-choice-of-tourist-check-top-5-cities-1726385406-2

काशी एक सांस्कृतिक नगरी के रूप में: मेले, त्यौहार, लोक कलाएँ, खान–पान, समारोह, रंगमंच के विशेष संदर्भ में

राकेश कुमार यादव*
प्रो. डॉ. भूकन सिंह**

सारांश

काशी जिसे वाराणसी भी कहा जाता है साथ ही जातक कथाओं और बौद्ध साहित्यों में वाराणसी के लिए बनारस या बनारसी का प्रयोग किया गया है। काशी दुनिया के प्राचीन नगरों में से एक है जिसे हिंदुओं की सांस्कृतिक राजधानी होने का गौरव भी प्राप्त है। वस्तुत: यह नगर अपनी समृद्ध परंपराओं, मेले, त्योहार, लोक कलाओं, भोजन, समारोह, रंगमंच के लिए प्रसिद्ध है। यहां के त्यौहार न केवल धार्मिक महत्व रखते हैं, बल्कि सामाजिक एकता और सांस्कृतिक विविधता का भी प्रतीक है। काशी में हर साल विभिन्न मेले, त्यौहार मनाया जाते हैं जैसे की गणेश पूजन, गंगा दशहरा, तुलसी घाट का नागनथैया मेला, काली पूजन, बुढ़वामंगल तथा दुर्गा पूजन, सरस्वती पूजन, देव दीपावली इत्यादि तथा नवभारत टाइम्स एवं उत्तर प्रदेश सरकार के द्वारा प्रायोजित गंगा महोत्सव तथा ध्रुपद गायन जैसे शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रम पूरे भारत के अतिचीन और वर्तमान की विविधतापूर्ण संस्कृति संगम के गवाह हैं। जहां काशी का सवेरा यहां की कचौड़ी-जलेबी से शुरू होती है वही शाम का अंत एक कुल्हड़ मलाई से। यहां का बनारसी पान और मिठाइयां विशेष रूप से प्रसिद्ध है। काशी के रंग मंच पर नाटक और नृत्य की प्रस्तुतियां होती हैं जो सामाजिक मुद्दों को उठाती हैं और दर्शकों को सोचने पर मजबूर करते हैं। वस्तुतः यहां का हर त्यौहार, हर कला रूप और हर व्यंजन एक कहानी कहता है, जो काशी की आत्मा को जीवंत रखता है।

संकेत शब्द :-मेले, **त्यौंहार**, **लोक कलाएँ**, **खान-पान**, **समारोह**, **रंगमंच ।**

काशी के मेलें एवं त्यौहार

काशी एक ऐसा अद्भुत नगर है जहां दिन के शुरू होते ही कोई ना कोई मेले या त्यौंहार की शुरुआत हो जाती है। इनमें से अधिकांशत: या तो यहां के लिए अनन्य होते हैं या एक विशिष्ट स्थानीय शैली में मनाए जाते हैं।[1] हिंदी में एक कहावत है- **'काशी का अद्भुत व्यवहार, सात वार नौ त्यौंहार।'** अगर कोई काशी में दो एक साल रह जाए तो यकीन मानिए इन त्योहारों में खर्च करते-करते करोड़पति की भी लुटिया डूब जा सकती है। बनारस वाले खाने के अधिक शौकीन हैं। पहनने के शौकीन इसलिए नहीं है कि खाने से अधिक पैसा बच ही नहीं पता क्या करें बेचारे।[2]

वस्तुत : वाराणसी में प्रत्येक दिन एक न एक पर्व मनाया जाता है परंतु वास्तव में यह अनुपात भी कम ही है क्योंकि कहा जाता है कि वाराणसी में सप्ताह के सात दिनों में 13 पर्व और साल के 365 दिनों में 563 पर्व होते हैं। काशी की संस्कृति इस संकल्प पर अटल रही है कि कोई भी प्राचीन उत्सव को बंद नहीं किया जाएगा अपितु उसमें एक नया उत्सव जोड़ा जा सकता है त्योहारों के माध्यम से जीवन में उमंग एवं उत्साह बना रहता है तथा निरसता में परिवर्तन आ जाता हैं। जिससे व्यक्ति का मन पौराणिक और वर्तमान युग के बीच उमड़ता हुआ अत्यंत आनंदित हो जाता है। वर्ष पर्यंत काशी में किसी न किसी स्थान पर कोई ना कोई त्यौंहार एवं उत्सव मनाया जाता है। काशी के कुछ लोकप्रिय पर्व और मेले निम्नवत हैं-

चैत्र नवरात्रि:-भारतीय नव वर्ष का शुभारंभ चैत्र मास (मार्च-अप्रैल) के प्रथम दिन से होता है और इसी दिन से चैत्र नवरात्रि पर्व आगे के नौ दिनों तक चलता रहता है। इसके अंतर्गत विशेष पूजन तथा नौ गौरियों की यात्रा का विशेष महत्व है।

रामनवमी:- चैत्र मास की नवमी तिथि प्रभु श्रीरामचंद्र जी के जन्मोत्सव के रूप में मनाई जाती है।

नरसिंह मेला:- इसका आयोजन 6 दिनों तक प्रह्लाद घाट पर किया जाता है। यह वैशाख मास के शुक्ल पक्ष के दसवें दिन से आरंभ होकर पूर्णिमा तक चलता है।

गंगा दशहरा:- यह गंगावतरण का प्रतीक है। जिसका आयोजन ज्येष्ठ मास (मई-जून) के शुक्ल पक्ष के दसवें दिन होता है।

गाजी मियां का ब्याह:- जेष्ठ के प्रथम रविवार को गाजी मियां के विवाह की स्मृति में एक मेला होता है ।

रथ यात्रा:- यह पुरी की जगन्नाथ रथ यात्रा की प्रतिकृति है। यह आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष (जून-जुलाई) की सप्तमी तिथि से प्रारंभ होकर तीन दिन तक चलती है। काशी की रथ यात्रा की अपनी ही एक रोचक कथा है।

दुर्गा जी का मेला:- श्रावण मास (जुलाई-अगस्त) के प्रत्येक मंगलवार को दुर्गा जी का मेला लगता है और श्रावण का अंतिम मंगलवार दुर्गा जी का दिन होता है। यह मेला दुर्गाकुंड स्थित दुर्गा जी के मंदिर के चारों ओर लगता है।

* **यूजीसी- जे.आर.एफ. शोधार्थी - इतिहास विभाग, शम्भू दयाल**, **पी. जी. कॉलेज**, **गाजियाबाद** (**उ.प्र.**). **चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय**, **मेरठ** (**उ.प्र.**)

** **प्रोफेसर**,**इतिहास विभाग, शम्भू दयाल**, **पी. जी. कॉलेज**, **गाजियाबाद** (**उ.प्र.**), **चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय**, **मेरठ** (**उ.प्र.**)

[1] सहाय, गीता लाल, 1998, भारत दर्शन, मोती लाल बनारसी दास,पृ. 28.

[2] मुखर्जी, विश्वनाथ, (1958)1994, बना रहे बनारस, विश्वविद्यालय प्रकाशन पृ. 91.

नागपंचमी:- श्रावण मास की शुक्ल पंचमी (जुलाई-अगस्त) को नाग कुआं पर यह मेला लगता है। नाग कुआं को कर्कोटक नाग तीर्थ के नाम से भी पुकारा जाता है।
रक्षाबंधन:- इस त्यौंहार पर बहनें भाइयों की कलाई पर रंगीन धागों से बनी राखी बांधकर अपनी सुरक्षा हेतु उनसे वचन लेती हैं।
कृष्ण जन्माष्टमी:- यह पर्व भाद्रपद के कृष्ण पक्ष की अष्टमी (अगस्त-सितंबर) तिथि को मनाया जाता है।
लोलार्क छठ मेला:- लोलार्क छठ मेला भाद्रपद मास की शुक्ल षष्ठी (अगस्त-सितंबर) के दिन आयोजित होता है।
शंकुल धारा मेला:- यह कर्क संक्रांति अर्थात 16 जुलाई को लगता है।
सोरहीया मेला:- इसे लक्ष्मीकुंड मेला भी कहते हैं।
कजरी मेला:- यह मेला मुख्यतः महिलाओं के लिए है।
झूला:- यह वैष्णवों का मुख्य पर्व है।
ढेला चौथ:- भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी को यह मेला लगता है।
शरद पूर्णिमा:- यह मेला आश्विन पूर्णिमा के अवसर पर लगता है।
दुर्गा पूजा या दशहरा:- इस समारोह का आयोजन आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा (सितंबर-अक्टूबर) से प्रारंभ होकर अगली नौ रात तक चलता है। इसलिए इसे नवरात्रि कहते हैं।
धनतेरस:- कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी को धनतेरस मनाया जाता है।
हनुमान जयंती:- कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को (अक्टूबर-नवंबर) सभी हनुमान मंदिर में पांच दिवसीय संगीत कार्यक्रम होता है।
दीपावली:- कार्तिक मास की अमावस्या की रात को मनाया जाता है।
कार्तिक पूर्णिमा या देव दीपावली:- देव दीपावली या गंगा महोत्सव कार्तिक एकादशी से लेकर पूर्णिमा तक चलता है।
बुढ़वा मंगल:- होली के पश्चात चैत्र के प्रथम मंगलवार को इस मेले का आयोजन होता है।[3]

हमें इस बात का गर्व है कि काशी के अलावा हिंदुस्तान के किसी भी शहर में इतने प्रेम एवं सद्भाव से इतने अधिक त्यौंहार नहीं मनाया जाते। भले ही उनका स्वरूप यहां साधारण हो अधिक टीम-टाम, ठाट-बाट ना हो और उनमें ऐश्वर्य के दर्शन ना हो, लेकिन त्यौंहार तो श्रद्धा, भक्तिभाव और संस्कृति के अंग होते हैं, उसमें ऐश्वर्य के दर्शन का अर्थ केवल दिखावा मात्र होता है।[4]

काशी की संगीत परंपरा

वीतराग-प्रिय काशी संगीत में इन सात विषयों के लिए प्रसिद्ध है-

1. चैती कजली पूरबी की स्थानीय गायकी।
2. ठुमरी दादरे की गायकी।
3. टप्पे की गायकी।
4. ख्याल और ध्रुपद की पक्की गायकी।
5. तबला वादन।
6. शहनाई
7. कथक नृत्य और भाव बताने के लिए।[5]

शिवजी नटराज के रूप में तांडव नृत्य करते हैं और काशी उनकी प्रिय नगरी है। इसलिए इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि यह नगरी नट (नृत्य) तथा नाट्य (नाटक) की जन्मस्थली है। काशी संगीत की भी जन्मभूमि है, क्योंकि बिना संगीत के नृत्य अथवा नाट्य संभव नहीं है। काशी में संगीत के प्रसार-प्रचार के अनेक कारण हैं जिनमें से कुछ निम्नलिखित है-

सर्वप्रथम, प्राचीन काल से काशी संगीतज्ञों, कलाकारों तथा विद्वानों की जन्मभूमि के साथ ही साथ आश्रय स्थल भी रही है। दूसरा कारण यह है कि इस पवित्र-पावन नगरी के धार्मिक वातावरण तथा सांस्कृतिक परिवेश ने इन कलाकारों को अपनी प्रतिभा प्रदर्शित करने का उत्तम अवसर प्रदान किया। बनारस के रईसों ने अपने मनोरंजन के साधनों में सदा शिष्टता को पसंद किया और साथ ही उन्होंने साधारण गणिकाओं के व्यवसाय को भी ऊंचा उठाकर उसे गायिकाओं और नित्यांगनाओं के समकक्ष लाने में सहायता की। तीसरा- आपसी परंपराओं में तथा अन्य परंपराओं के आदान-प्रदान के रूप में इस क्षेत्र में निरंतर प्रयोग होते रहे हैं। काशी के संगीतज्ञ प्रत्येक काल में शासकों द्वारा संरक्षित रहे हैं। चौथा कारण है- महाराज बनारस कलाकारों को अपने दरबार में प्रोत्साहित करते रहे। पांचवा कारण है- बनारस की कुशल गायिकाओं का लोक संगीत के प्रति आकर्षण और मधुरता को गले लगाना।

---

[3] चंद्र मौली, के., 2012 आनंद कानन काशी, वाराणसी. पृ. 220-236.
[4] मुखर्जी, विश्वनाथ, (1958)1994, बना रहे बनारस, विश्वविद्यालय प्रकाशन पृ. 91.
[5] पांण्डेय, दीनबंधु, 1998, वाराणसी पर्यटन : विविध आयाम, सोविनियर, बी.एच.यू. पृ. 16

इन्होंने लोक संगीत में नवीनता और ताजगी भर दी, उनमें एक अनोखी मिठास जगाई । इस तरह शास्त्रीय संगीत के साथ-साथ लोक संगीत जैसे कजरी, चैती, होरी, बिरहा आदि भी अत्यंत लोकप्रिय हुए । छठवां, संगीत तथा नृत्य के विकास में कथकों का योगदान अमूल्य रहा है । इन्होंने उन्हें शास्त्रीय स्पर्श दिया । साथी उन्होंने गणिकाओं के नाच-गाने प्रदर्शनों से भोंडापन और अश्लीलता को हटाकर उसमें कलात्मकता का सृजन किया ।[6]

काशी द्वारा भारतीय संगीत को जो गौरवपूर्ण देन है, जिसके अंतर्गत हम कजली, चैती, पूरबी आदि को देखते हैं, उसकी एक प्रमुख विशेषता यह है कि यह सभी लोकधुनों के परिष्कृत रूप हैं जो काशी के रंगीन गायक-गायिकाओं के गले से आकर्षक बन गए हैं। तब यह भी संभावना होती है की ठुमरी भी कोई ऐसी लोक रंगत तो नहीं थी जो कुछ रसीली रागिनियो में बनारस के गायको द्वारा प्रतिष्ठित की गई ? आज भी काशी की ठुमरी का बड़ा नाम है। इसी शती में मुइजुद्दीन खां भी काशी के प्रसिद्ध ठुमरी गायक हुए।[7]

काशी के संगीतजों का लगभग 200 वर्षों का इतिहास मिलता है । 18 वीं सदी के प्रसिद्ध गायक प्रसिद्ध महाराज थे । प्रसिद्ध महाराज ध्रुपद, ख्याल व टप्पा के सर्वश्रेष्ठ गायक थे। उनकी नियुक्ति नेपाल के दरबार में हुई थी। उनके पुत्र रामसेवक मिश्र थे जो बंगाल चले गए। रामसेवक मिश्र के पुत्र पशुपति मिश्र थे जो ध्रुवपद ख्याल के गायक थे साथ ही वे स्वरबहार एवं वीणा के वादक भी थे, जिसे उन्होंने मोहम्मद हुसैन खां से सीखा था।

शिवपशुपति भी बनारस के प्रसिद्ध गायको में से रहे हैं जो ध्रुवपद एवं धमार के अच्छे गायक थे। वह कथक घराने के थे और नेपाल के दरबारी गायक नियुक्त हुए थे। जगदीप मुख्यतः ठुमरी की गायकी के कारण विख्यात हो गए उनकी प्रतिभा के परिणाम स्वरुप बनारसी ठुमरी का जन्म हुआ जिसका नाम है 'बोल बनाव की ठुमरी', जो विलंबित लय में गाई जाती है। शिवसेवक मिश्र ख्याल, ध्रुवपद एवं टप्पा के गायक थे जिनका जन्म 1884 में हुआ बाद में कोलकाता चले गए।

आशिक अली 19वीं शती के सितारवादकों में प्रसिद्ध है। वह सीतार एवं वीणा दोनों के कुशल वादक थे। ठुमरी के प्रसिद्ध गायको में मिठाई लाल, बड़े सियाजी एवं छोटे सियाजी, सिद्धेश्वरी देवी, गिरिजा देवी, मोतीबाई, काशीबाई, विद्याधारी देवी एवं बड़े-छोटे रामदास रहे हैं। मौजुद्दीन खां को सियाजी महाराज कोलकाता से बनारस लाये। वह 20वीं शती के सर्वोत्तम ठुमरी गायको में थे। तबलावादकों में उल्लेखनीय है पंडित कठे महाराज जिनका जन्म 1880 ईस्वी में काशी में हुआ। शहनाई में अमरुद्दीन बिस्मिल्लाह जिनका जन्म 1908 में हुआ, भारत के सबसे सर्वोत्तम वादक है। ध्रुवपद के गायको में मन्नूजी (मृदंग-वादक गोपाल मंदिर) को भुलाया नहीं जा सकता।

सारंगी-वादन में सियाजी मिश्र को भुलाया नहीं जा सकता। आज के सारंगीवादन में गोपाल मिश्र का नाम भी उल्लेखनीय है।[8] प्रसिद्ध वीणावादकों में श्री महेशचंद्र सरकार, संतु बाबू एवं पंडित लालमणि मिश्र की विद्धता से विदेशी भी चकित थे, और उनसे सीखने आते थे। वायलिन वादकों में जी एन. गोस्वामी, जोई श्रीवास्तव, कृष्ण विनायक भागवत आदि तथा देश की महिला वायलिन वादिका के रूप में अत्यंत लोकप्रिय डॉक्टर श्रीमती एन. राजम अपनी अलग पहचान बन चुकी है। बांसुरी वादन में श्यामलाल, राजेश प्रसन्ना, रघुनाथ प्रसन्ना, भोलानाथ आदि प्रसिद्ध हुए। पखावज वादन में जोधसिंह, मदनमोहन जी, भोलानाथ पाठक, मन्नू जी आदि ने अपनी विशेष पहचान बनाई। सारंगी वादकों में उस्ताद आशिक अली खां, झल्लन खां, चंदा खां, तज्जु खां आदि प्रसिद्ध रहे। ढोलवादन क्षेत्र में बहादुर, काली प्रसाद, सचिताराय, सुरजन सिंह, गोपाल आदि लोकप्रिय हुए।[9]

वाराणसी के आधुनिक गायकी में सिद्धेश्वरी देवी तथा गिरजा देवी के नाम को भुलाया नहीं जा सकता । इनका योगदान उल्लेखनीय है। दोनों शास्त्रीय संगीत में दक्ष रही हैं। गिरजा देवी 'सैनी' घराने से संबंधित बतलाई जाती हैं। ख्याल, ठुमरी के साथ-साथ पूर्वी लोकगीत, भजन आदि की यह प्रसिद्ध गायिका थीं। वाराणसी में एक से बढ़कर एक वादक भी हुए हैं। सितारवादकों में रविशंकर का नाम अविस्मरणीय है । यह उस्ताद अलाउद्दीन खां के शिष्य थे। इनका सितार वादन विश्वविख्यात है। शहनाई वादकों में नंदलाल का नाम प्रसिद्ध है।[10] काशी की मुख्य देन है बोल बनाव की ठुमरी, जो अभिनयात्मक संगीत है एवं जिसके द्वारा हृदय के भाव को स्वर के माध्यम से व्यक्त किया जा सकता है । काशी की दूसरी देन लोकगीतों का शास्त्रीयकरण । उदाहरण के रूप में कजली के बोल हैं "कासे कहूं जियरा का हाल रे अरे सांवरिया" और चैती के बोल हैं- "चैत की निंदिया रे जियरा अलसाने हो रामा"।[11]

वस्तुत: भारतवर्ष की प्रसिध्द ऐतिहासिक नगरी काशी को अति प्राचीनकाल से ही देश की सांस्कृतिक केंद्र स्थल होने का सौभाग्य मिला है। शिल्प हो अथवा कला, धर्म हो अथवा दर्शन, साहित्य हो अथवा संगीत सभी क्षेत्रों में इस अनूठी नगरी की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका रही, जिसने संपूर्ण विश्व को अपने पांडित्य की गरिमा से विमुग्ध कर मार्गदर्शक होने का गौरव अर्जित किया है।

---

[6] चंद्र मौली, के., 2012 आनंद कानन काशी, वाराणसी. पृ. 309-310.
[7] पांण्डेय, दीनबंधु, 1998, वाराणसी पर्यटन : विविध आयाम, सोविनियर, बी.एच.यू. पृ.18
[8] चंद्र सरस्वती, वैद्यनाथ, 2000, भोग - मोक्ष समभाव काशी का सामाजिक- सांस्कृतिक स्वरुप.पृ. 256-259
[9] मिश्र, कामेश्वर नाथ, 2018 काशी की संगीत परंपरा
[10] पांण्डेय, उमा, 1980,भारत के सांस्कृतिक केंद्र वाराणसी. पृ.85
[11] चंद्र सरस्वती, वैद्यनाथ, 2000, भोग - मोक्ष समभाव काशी का सामाजिक- सांस्कृतिक स्वरुप.पृ. 259.

काशी नगरी के जीवनकाल में एक समय ऐसा भी था, जब घरानेदार संगीतज्ञों के गढ़ के रूप में काशी का संपूर्ण क्षेत्र चार भागों में विभाजित था । इसमें एक घराना 'तेलियानाला घराना (बीनकार, सितारवादक उस्ताद आशिक अली ख़ां) दूसरा 'पियरी-घराना (प्रसिद्ध मनोहर मिश्र), तीसरा रामपुरा मुहल्ले का घराना 'शिवदास प्रयाग मिश्र (जो बाद में कबीर चौरा मुहल्ले में आ बसे) और चौथा सबसे विराट घराने के रूप में 'संपूर्ण कबीर चौरा मुहल्ला' जहां के पग-पग पर पुरी काशी के लब्धप्रतिष्ठ, विश्व-विश्रुत गुणी-गंधर्वों का दो तिहाई से अधिक समुदाय निवास करता था ।

काशी के गौरवपूर्ण संगीत-इतिहास को सदियों तक अपनी कला साधना से जीवंत बनाए रखने में यहां की कला-समर्पित, संगीतसाधिका गायिकाओं का विशेष योगदान रहा है । जिनका उल्लेख बौद्ध कालीन जातक-कथाओं में वर्णित काशीराज ब्रह्मदत्त शासनकालीन चित्रलेखा, श्यामा, सुलसा आदि नगरवधुओं से लेकर बाद की पीढ़ी की ख्यातिनामा विद्याधरी, बड़ी मैना, हुस्ना, जद्दन, बड़ी मोती, राजेश्वरी, काशी, सिद्धेश्वरी सरीखी रससिद्ध गायिकाओं की अटूट श्रृंखला के रूप में प्राप्त होता रहा है।[12]

लोक संगीत की मधुरता

नगर की अनेक गायिकाओं या गणिकाओं ने संगीत और नृत्य की परंपरा को कई सदियों तक अक्षुण्ण रखा। यद्यपि जातक काल से ही काशी को अनेक संगीतज्ञों के सृजन का श्रेय प्राप्त है, परंतु 17 वीं तथा 18 वीं सदी तक इनके योगदान का कोई विवरण प्राप्त नहीं होता। इन सदियों में गणिकाओं ने अनेक प्रकार के लोक संगीत, जैसे - होरी, चैती, कजरी आदि, को शास्त्रीय-उपशास्त्रीय संगीत का अंग बनाने में सहायता प्रदान की।

कत्थक का योगदान:- 17वीं-18वीं सदी के वाराणसी संगीत का इतिहास आसानी से कथकों के इतिहास में ढूंढा जा सकता है। कथक एक जाति, एक परंपरा तथा व्यक्तियों का एक वर्ग है जिन्होंने अपना संपूर्ण जीवन ईश्वर की कथाओं को नृत्य और संगीत के माध्यम से प्रसारित किया। कथक लोग अपने-आपको सामवेदी ब्राह्मण कहते हैं, जो मंदिरों में ईश्वर की स्तुति में गायन प्रस्तुत किया करते थे। ऐसा माना जाता है कि इस पवित्र परंपरा का सूत्रपात ब्रह्मा, सरस्वती, नारद आदि ने किया और सूत, मागध, चारण तथा बंदीजनों ने उसका परिपालन किया । यह लोग संगीत के साथ-साथ ईश्वर की कृतियों से संबंधित कथाओं का भी प्रसारण करते हैं।

वाराणसी में बाबा कीनाराम ने एक गणिका के नृत्य के समय एक कथक को वाद्य बजाने को कहा। इस रूढ़िवादी कथक ने नम्रतापूर्वक बाबा की आज्ञा को अस्वीकार कर दिया, जिससे बाबा ने क्रोधित होकर सभी कथकों को यह श्राप दे दिया कि वह अपनी जीविका के लिए गणिकाओं से संबद्ध रहेंगे।[13] कथक नृत्य में श्रीमती मधुरानी, रुक्मणी, मधु पाटेकर, रूबी चटर्जी, सरल गुप्ता आदि ने अपनी साधना से सफलता एवं ख्याति अर्जित की । भरतनाट्यम् के सुप्रसिद्ध एवं पारंगत कलाकार सी·वी· चंद्रशेखर, श्रीमती जया चंद्रशेखर एवं उनकी पुत्री एवं पी·सी· होम्बल से सभी सुपरिचित हैं, उन्होंने नगर के संगीत प्रेमियों को इस अभिनव नृत्य शैली से परिचित कराने में अपनी विशेष भूमिका का निर्वाह किया है।[14]

शास्त्रीय संगीत

हवेली संगीत:- हवेली संगीत पूर्णतया भक्ति-संगीत है, जो वाराणसी के वैष्णो मंदिरों में गाया जाता है। इस गायन में कृष्ण की लीलाओं तथा दिनचर्या का ध्रुपद शैली में वर्णन होता है। हवेली संगीत को वृंदावन के स्वामी हरिदास जी ने समृद्ध किया था। हवेली संगीत ब्रजभाषा में होता था, उसकी रचना अष्टछाप कवियों द्वारा हुई थी।

ध्रुपद:- ध्रुपद प्राय: बहुत पुराना पुरातन तथा गांभीर्य-शैली की हिंदुस्तानी संगीत पद्धति है । शास्त्रीय संगीत में ध्रुपद का विशिष्ट स्थान है । यह तो पुरानी शैली प्रबंध से आरंभ हुआ है । ध्रुव (स्थिर) और पद (गीत) से 'ध्रुपद' शब्द उत्पन्न हुआ है । पद्म को यथावत संगीत में उतार लाना ही ध्रुपद है । इसको ख्याल आदि अन्य शैलियों का आधार माना जाता है । ध्रुपद मुख्यतः भक्ति-प्रेरित होने पर भी (पुराण और दैवी-लीला का वर्णन) सृष्टि के सौंदर्य और वीरगति का विवरणात्मक गायन भी है । पद्य का मंद गति से आलाप करते-करते बहुत स्पष्ट, मधुर तथा क्रमबद्ध राग-विस्तार करना ध्रुपद की विशेषता है । यह गायन नाद का गुण-स्तर और कंठ की प्रौढ़िमा को दर्शाता है । यहां पर राग को आगे बढ़ाने की तुलना हाथी की चाल से की जाती है । अर्थात ध्रुपद की गति में हाथी की शक्ति, राज-वैभव, गंभीरता और धुन दिखाई पड़ने पर भी, उसकी गति में एक प्रकार की मोहकता तथा संवेदना पाई जाती है । यह तान-तराने और दूसरे अलंकार के बिना अपनी मंद गति के द्वारा ध्यान-चिंतन का वातावरण निर्मित करता है। ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर (1486 ई से 1517 ई) का इस शैली को दरबारी ध्रुपद तथा जनप्रिय बनाने में विशेष योगदान रहा है ।

धमार:- होरी पद की तुलना ध्रुपद से ही की जाती है। प्रधानतया यह होली तथा जन्माष्टमी के त्योहारों पर गाया जाता है। बनारस में अनेक सुप्रसिद्ध ध्रुपद गायक तो हैं, परंतु ध्रुपद घराने के नाम से अलग घराना नहीं है। रींवा राजदरबार के रामगुलाम अपने शिष्य और फूफा बक्तावर व दौलत के साथ बनारस आए और काशी नरेश ईश्वरीनारायण सिंह के आश्रय में ठहरे। बक्तावर ध्रुपद और धमार के अनभिषिक्त सम्राट नाम से प्रसिद्ध हुए।

---

[12] मिश्र, कामेश्वर नाथ, 2018 काशी की संगीत परंपरा.

[13] चंद्र मौली, के., 2012 आनंद कानन काशी, वाराणसी. पृ. 314-315.

[14] मिश्र, कामेश्वर नाथ, 2018 काशी की संगीत परंपरा

ख्याल:- ख्याल का अर्थ है - भावगीत, एक कल्पना लहरी। ख्याल गायन में मुख्यतः गायक की कल्पना द्वारा लाया जाने वाला परिवर्तन, नयापन प्रमुख तत्व है। मुगलों के दरबारों में संगीत के लिए इसकी अत्यधिक प्रधानता रही। उस समय ध्रुपद गायक सांप्रदायिक अनुशासन से दूर रहे तथा उससे भी लघु माना जाने वाला ख्याल संगीत अधिक जनप्रिय था। ध्रुपद के शब्द तरंगों की अपेक्षा ख्याल में गीत और उसका अर्थ मुख्य माना जाता है। ख्याल में गीत एक सीमा है, लता के समान उसके चक्कर लगाना उसका अलाप है, तान-तराना और संगीत के अन्य कौशल तो छोटे-मोटे काम है। यदि ध्रुपद की तुलना हाथी की मंद गति से की जाती है तो ख्याल की तुलना घोड़े की तेज गति तथा नाच व खुशी से की जाती है। आजकल ख्याल-कल्पना, विहार और भावना-लहरियो को बिंबित करने वाली बहुत यशस्वी तथा जनप्रिय संगीत शैली बन गई है।

शास्त्रीय संगीत के घराने

बनारसी संगीत के कुछ प्रमुख प्रसिद्ध घराने हैं-

- **पियारी - पंडित दिलाराम मिश्र (16वीं सदी)**
- **शिवदास-प्रयागजी**
- **जगदीप मिश्र (19वीं सदी)**
- **जयकरण मिश्र (जिनके जमाता बड़े रामदास थे)**
- **छन्नूजी-स्वरूपजी मिश्र**
- **बख्तावर मिश्र**
- **ठाकुर प्रसाद मिश्र**
- **पंडित दरगाही मिश्र घराना**
- **मथुराजी मिश्र**
- **तेलियनाला घराना।**

उप शास्त्रीय संगीत

ठुमरी:- ठुमरी संगीत उपशास्त्रीय गेय-विद्या है जिसका अभिजात्य वर्ग के मनोरंजन हेतु विकास हुआ। इस गायन शैली में भाव, श्रृंगार रस और नृत्य-गीत प्रधान होते हैं। इसलिए ठुमरी को मुख्य रूप से वेश्याओं से जोड़ते हैं। सुंदर पद में लिपटी हुई रसभरी भावनाओं को सुरों की लहरों में ठुमक-ठुमकाते व सुनने वालों के मन को भी नचाने वाले संगीत को 'ठुमरी' कहा जाता है। ठुमकने या लय का धोतक है 'ठुम' और रिझाने या अंतरंग भाव को महकाने का धोतक है 'री'।

टप्पा : -बनारस के सुप्रसिद्ध टप्पा गायको में थे अकबर अली (जो अंतिम मुगल बादशाह बहादुरशाह जफर के साथ काशी आए थे) गामू और उनके पुत्र शादी खां तथा उन्ही की शिष्या चित्राबाई तथा इमामबांदि थे। शोरी मियां ने पंजाबी लोक संगीत को शास्त्रीय संगीत में ढालकर टप्पा का सूत्रपात किया।[15]

बनारसी खान पान

काशीवासी खानपान में भी नाना-नाना प्रकार के व्यंजनों का प्रयोग करते हैं और कई वस्तुओं के लिए वैसे भी काशी विशेष रूप से प्रसिद्ध है। जहां काशी का सबेरा यहां की कचौड़ी-जलेबी से शुरू होती है, वही शाम का अंत एक कुल्हड़ मलाई से। काशी के घाटों की सड़के हो या गालियां, नुक्कड़ हो या शहर, सभी स्थानों पर कचौड़ी-जलेबी की सुगंध से यहां की सुबह सुगंधित हो जाती है। इसके साथ-साथ यहां की अति स्वादिष्ट मिठाइयां काशी के लोगों के खान-पान के अलग अंदाज की सूचक हैं। यहां की मिठाइयों में मगदल, रसमलाई, मलाई-गिलोरी, बेसन के लड्डू, पेड़े, इमरती, लस्सी आदि का विशेष रूप से महत्व है। काशी के विशिष्ट व्यंजनों में मलइयों का भी नाम सम्मिलित है। यह मुख्यतः दूध से बना खाद्य-पदार्थ होता है, जो रात भर ओस की बूंदों में रखकर तैयार किया जाता है। सुबह बड़ी-बड़ी कढ़ाईयों में बिकने वाला मलइयों 'पूस-माघ का मिठाई' कहा जाता है। इन लुभावने एवं स्वादिष्ट व्यंजनों के अलावा काशीवासी विभिन्न तरह के तरल एवं भोज्य-पदार्थ का प्रयोग करते हैं। सभी पेय व्यंजनों में बनारसी ठंण्डई का कोई जोड़-तोड़ नहीं। काशीवासियों को गंगा में गोता, दिव्य भोजन और भांग-बूटी मिल जाए तो बड़ी से बड़ी नवाबी को भी लात मार सकते हैं।[16]

संपूर्ण भारतवर्ष में बनारसी पान प्रसिद्ध है । बनारसी पान के बिना बनारस की कल्पना ही नहीं की जा सकती । यह एक दिव्य आनंद है । मुंह में पान घुलाना बनारस की संस्कृति और रईसी का अहम हिस्सा है । सभी शुभ अवसरों पर, हार्दिक स्वागत के तौर पर, किसी का सम्मान करते समय, प्रेम या स्नेह का इजहार करते समय, तथा सैनिकों को युद्ध क्षेत्र में भेजते समय पान दिया जाता है । भारतेंदु हरिश्चंद्र ने एक बनारसी गुरु की व्याख्या इस प्रकार की है- **'हाथ में डंडा, मुंह में पान, बनारसी गुरु की यही पहचान।'**[17]

---

[15] चंद्र मौली, के., 2012 आनंद कानन काशी, वाराणसी. पृ. 316-323.

[16] यादव, डॉ. सत्यपाल, 2019, 19वीं एवं 20वीं में काशी के गंगा घाट सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में. पृ. 90.

[17] चंद्र मौली, के., 2012 आनंद कानन काशी, वाराणसी. पृ. 353

काशी का रंगमंच एवं समारोह

काशी की रंग परंपरा भी कम प्राचीन नहीं है। बौद्ध युग के पूर्व से ही उसके भी अस्तित्व के प्रमाण मिलते हैं, किंतु वाराणसी में नाट्यकला के अस्तित्व का प्रमाण जातक-युग प्रायः (ईसा पूर्व तीसरी सदी) में मिलता है। जातक की कथाओं में अनेक बार ऐसे उल्लेख आए हैं जिनसे ज्ञात होता है कि उस समय वाराणसी के परिवेश में रंगमंचीय क्रियाएं पर्याप्त रूप से उपस्थित थी। इन उल्लेखों का विश्लेषण करने से यह प्रकट होता है कि उस समय एक प्रकार के लोक रंगमंच का भी अस्तित्व था जिसे 'समज्ज मंडल' कहां जाता था। इसमें घूमंतू पेशेवर नट मुख्यतः संगीत मूलक अभिनय करते थे।[18]

काशी की लोक कलाओं में खिलौना रूप अधिक प्रचलित और जनलोकप्रिय है। इनसे समाज का प्रत्येक वर्ग जुड़ा है। काशी की लोक कलाओं के विषय अनंत हैं साथ ही इनके माध्यम अनेक हैं। सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं लोक जीवन से जुड़ी घटनाएं इसके प्रमुख विषय होते हैं। हिन्दू देवी-देवताओं के अनेक लघु रूप जैसे- गणेश, शिव, पार्वती, विष्णु, लक्ष्मी, दुर्गा, काली, भैरव हनुमान कृष्ण-राधा आदि प्रदर्शित होते है। इसी प्रकार विभिन्न पौराणिक घटनाओं का अंकन भी यहां की लोक कला में प्रचलित है।[19]

काशी को भारत की विभिन्न संस्कृतियों का म्यूजियम कहा जाए तो कुछ अनुचित न होगा। भारत की ये विभिन्न संस्कृतिया काशी में कुछ बिंदुओं पर एकीकृत और समन्वित होकर अखिल भारतीय संस्कृति का भी मार्ग प्रशस्त करती हैं। रंगमंच एवं समारोह जैसे सांस्कृतिक सम्मिलन के लिए काशी उर्वर भूमि प्रस्तुत करती है। काशी की हिंदी रंगमंच के विकास में बंगालियों का बहुत बड़ा योगदान है। स्वयं भारतेंदु की मूल प्रेरणा बंगला रंगमंच से उद्वभूत हुई थी और हिंदी रंगमंच पर काम करने वाले में बंगाली रंग कर्मियों का महत्वपूर्ण स्थान है। काशी में ही शायद सबसे अधिक बंगाल से अनूदित नाटक खेले गए हैं। इसी प्रकार मराठी और गुजरातियों का भी काशी के रंगमंच को योगदान है। इस दिशा में एक महत्वपूर्ण संभावना यह हैं कि विभिन्न भारतीय भाषा-भाषी काशीवासी अपनी-अपनी भाषा में नाटक तैयार कर खेलें और उन्हें हिंदी में भी खेले जो उनके लिए संभव है क्योंकि वे सब द्विभाषी हैं। इस प्रकार नाटक के प्रस्तुतीकरण का व्यय तो कम होगा ही विभिन्न संस्कृतियों का आदान-प्रदान और भी अधिक सघन हो सकेगा।[20]

निष्कर्षत: यह कहा जाए कि हिंदुस्तान का असली रूप देखना हो तो काशी अवश्य देखें। बनारस को प्यार करने वाले कम है, उसके नाम पर डिंग हांकने वाले अधिक हैं। सभ्यता-संस्कृति की दुहाई देकर आज भी बहुत लोग जीवित हैं, पर वे स्वयं क्या करते हैं, यह बिना देखे नहीं समझा जा सकता। अंतत: मैं यह कह देना आवश्यक समझता हूं कि बनारस बहुत अच्छा भी है और बहुत बुरा भी।

चना चबैना गंग जल जो पूरवै करतार।
कासी कभी न छोड़िये विश्वनाथ दरबार।।[21]

सन्दर्भ ग्रन्थ - सूची

1. सहाय, गीता लाल, 1998, भारत दर्शन, मोती लाल बनारसी दास, नई दिल्ली.
2. मुखर्जी, विश्वनाथ, (1958) 1994, बना रहे बनारस, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी.
3. चंद्र मौली, के., 2012 आनंद कानन काशी, वाराणसी.
4. पाण्डेय, दीनबंधु, 1998, वाराणसी पर्यटन: विविध आयाम, सोविनियर, बी.एच.यू., वाराणसी.
5. सरस्वती, वैद्यनाथ, 2000, भोग - मोक्ष समभाव काशी का सामाजिक- सांस्कृतिक स्वरुप, डी. के. प्रिंट वर्ल्ड प्रा. लि., नई दिल्ली.
6. मिश्र, कामेश्वर नाथ, 2018 काशी की संगीत परंपरा.
7. यादव, डॉ. सत्यपाल, 2019, 19वीं एवं 20वीं में काशी के गंगा घाट सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में.
8. अग्रवाल, कुंवरजी, 1986, काशी का रंग परिवेश, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी.
9. पांण्डेय, उमा, 1980,भारत के सांस्कृतिक केंद्र वाराणसी, मैकमिलन लिमिटेड, दिल्ली.
10. डॉ. मोतिचन्द्र (1962), काशी का इतिहास .
11. मुखर्जी, विश्वनाथ, यह वाराणसी है, वाराणसी.

◀◀ ▶▶

[18] अग्रवाल, कुंवरजी, 1986, काशी का रंग परिवेश, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी पृ.7.
[19] पांण्डेय, दीनबंधु, 1998, वाराणसी पर्यटन: विविध आयाम, सोविनियर, बी.एच.यू., वाराणसी. पृ. 44.
[20] चंद्र सरस्वती, वैद्यनाथ, 2000, भोग - मोक्ष समभाव काशी का सामाजिक- सांस्कृतिक स्वरुप.पृ. 270.
[21] मुखर्जी, विश्वनाथ, (1958)1994, बना रहे बनारस, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ.96.

बनारस की जरदोजी कला व कलाकार

राकेश कुमार*

सारांश

उत्तर प्रदेश में स्थित वाराणसी जनपद विभिन्न प्रकार के हस्तनिर्मित कलाओं के सृजनात्मकता के लिए जाना जाता है । वाराणसी को आस्था की नगरी तो कहा ही जाता है लेकिन इसके साथ ही साथ कला की नगरी भी कहा जाता है क्योंकि वाराणसी (काशी) प्राचीन समय से ही विश्वप्रसिद्ध बनारसी वस्त्र, गुलाबी मीनाकारी, लकड़ी के खिलौने, भित्ति चित्र इत्यादि से सम्बंधित कला उत्पादों के लिए जाना जाता है । इन सभी कलाओं के बीच बनारस की जरदोजी कला अपने सुन्दर एवं आकर्षक कशीदाकारी शैली के लिए विश्वप्रसिद्ध है, इस कला में एक खास प्रकार की सुई का इस्तेमाल करके, चमकदार रेशम के धागों के साथ चांदी व सोने की जरी के धागों का प्रयोग करके विभिन्न प्रकार के वस्त्र-परिधान तैयार किये जाते है ।

इस लघु शोध पत्र में, बनारस की पारंपरिक जरदोजी कढ़ाई कला, कलाकार, अलंकरण, तकनीक का अध्ययन किया गया है इसके साथ ही वर्तमान कलाकारों के साथ साक्षात्कार किया गया है, प्राप्त जानकारी के अनुसार जरदोजी कढ़ाई कला के महत्व व इसके कार्यविधि का सक्षिप्त विवरण को इस पत्र में प्रस्तुत किया गया है।

शब्द कुंजी- जरदोजी, परिचय, इतिहास, बनारस, कढ़ाई, अलंकरण, औजार, तकनीक, परिधान, कलाकार

परिचय

भारत में प्राचीन काल से ही समृद्ध जीवनशैली रही है जिसमें विभिन्न संस्कृतियों का समावेश रहा है । भारतीय जीवनशैली में परिधान और अलंकरण की बहुत बड़ी भूमिका रही है । जब हम परिधानों एवं विभिन्न प्रकार के वस्त्रों की बात करते हैं, तो हम परिधानों में प्रयोग किये जाने वाले अलंकरणों के बारे में भी बात करते हैं । वस्त्रों को सुन्दर एवं आकर्षित बनाने के लिए विभिन्न प्रकार के तकनीकों का इस्तेमाल करके अलंकरणों का प्रयोग किया जाता है । तकनीकों में मुख्य रूप से बुनाई के द्वारा, रंगाई के द्वारा एवं विभिन्न प्रकार की छपाई (प्रिंटिंग), इत्यादि के द्वारा कपड़े को सजाया जाता है जो देखने में काफी खुबसूरत लगते है । इन तकनीकों के आलावा वस्त्र के ऊपर कशीदाकारी शैली भी शामिल है । कशीदाकारी की कला को भारत, चीन, जापान, एशिया माइनर और अरब देशों में सदियों से जाना जाता रहा है। प्राचीन समय में कशीदाकारी ग्रामीण महिलाओं की, स्वयं की अभिव्यक्ति होती थी, जिसमें विभिन्न प्रकार के दैनिक जीवन से सम्बंधित चित्रों को सुई के माध्यम से वस्त्रों के ऊपर प्रस्तुत किया जाता था । यह एक ऐसा शिल्प है जो भारत की सांस्कृतिक परंपराओं को प्रदर्शित करती है । यह कला ग्रामीण महिलाओं से उत्पन्न हुई है, जिन क्षेत्रों में इस कला की शुरुआत हुई, उस क्षेत्र के लोग बड़े पैमाने पर कृषि और पशुपालन व्यवसाय से सम्बंधित थे, महिलाएं खाली समय में कशीदाकारी का काम करती थी जो खुद के लिए या किसी और को उपहार स्वरुप भेंट में देने के उद्देश्य से बनाती थी ।

कशीदाकारी कला शैली एक शानदार विशिष्ट कलाकृति है, जिसमें काफी श्रम की आवश्यकता होती है, भारत में कशीदाकारी शैली के कई प्रकार हैं एवं प्रत्येक का तरीका अलग है और इसकी अपनी भव्यता और सुंदरता है । कढ़ाई को 4 प्रकारों में वर्गीकृत किया जाता है- दरबारी कशीदाकारी, व्यापार के लिए की गयी कशीदाकारी, लोक कशीदाकारी, मंदिरों के लिए की गयी कशीदाकारी प्रमुख रूप से है । भारत में कशीदाकारी की विभिन्न शैलियाँ मुख्य रूप से है जिनका प्रयोग भारतीय वस्त्र परिधानों में इस्तेमाल किया जाता है-

- पंजाब की फुलकारी कशीदाकारी
- बंगाल की कांथा कशीदाकारी

* शोध छात्र, टैक्सटाइल डिजाइन, चित्रकला विभाग, दृश्य कला संकाय, बी0एच0यू0 वाराणसी
ईमेल- rk7715875@gmail.com

- जम्मू और कश्मीर की कश्मीरी कशीदाकारी
- उत्तर प्रदेश की चिकनकारी और ज़रदोज़ी कशीदाकारी
- कर्नाटक की कसुती कशीदाकारी
- राजस्थान की गोटा-पट्टी
- गुजरात की गुजरती कशीदाकारी (मोचीभरत, काठियावाड़ और सिंधी)
- हिमाचल की चम्बा रुमाल इत्यादि ।

जरदोजी

जरदोजी कला, कढ़ाई की एक शैली है, जो दो फारसी शब्दों से मिलकर बना है पहला जार जिसका अर्थ सोना एवं दूसरा तोजी जिसका अर्थ कशीदाकारी (कढ़ाई) से है । कशीदाकारी कला शैलियों में जरदोजी कला का प्रमुख स्थान है जिसमें एक श्रमसाध्य कारीगरी शामिल है, ज़रदोज़ी का काम करने के लिए, हाथों द्वारा एक खास प्रकार की सुई का इस्तेमाल करके एक सुन्दर एवं आकर्षक परिधान तैयार किया जाता है । इस शैली की तकनीक एवं इसमें प्रयोग किये जाने वाले सामग्रियों से बनाये गये उत्पाद, बाकि कशीदाकारी शैलियों में बनाये गये उत्पाद से अपने आप को अलग करते है । जरदोजी को आम तौर पर सलमासितारेकाकम के नाम से जाना जाता है । इस कला के लिए कलाकार प्रकृति और धर्म से प्रेरणा लेकर अलंकरणों का निर्माण करते थे, अलंकरण में आमतौर पर पुष्प, पशु-पक्षी, ज्यामितीय व आध्यात्मिक चित्र मुख्य रूप से रहे हैं ।

इतिहास

वैदिक साहित्य, रामायण और महाभारत में इसके उल्लेख मिलते हैं लेकिन जरदोजी कला के लिखित साक्ष्य मुग़ल काल से प्राप्त होते है, कुछ कला इतिहासकारों द्वारा माना जाता है कि मुग़ल शासक पर्शिया के दरबार से कई कलाओं को भारत लाये जिसमें जरदोजी कला भी शामिल थीं, विभिन्न कलाओं की तरह मुगल शासकों ने इस कला के लिए भी कार्यशालाएं शुरू करवाई थी, इस कार्यशाला में पुरुष एवं महिलाओं द्वारा विभिन्न प्रकार के बारीक जरदोजी किया हुआ परिधान तैयार किया जाता था । मुग़ल शासकों द्वारा इस कला को काफी प्रोत्साहन मिला एवं इस कला का काफी विकास हुआ । नवावों के शहर से ज्यादर मांग होने के कारण लखनऊ जरदोजी तकनीक में उत्पादित परिधानों का मुख्य केंद्र बना ।

मुग़ल भारत में, इस कला द्वारा तैयार वस्त्रों का प्रयोग शाही टेंट के रूप में, दीवारों पर सजाने के लिए, घोड़े व हाथियों को सजाने के लिए आभूषण के रूप में प्रयोग किया जाता था, इसके साथ ही साथ मुग़ल शासक, परिधान के रूप में जरदोजी किये हुए वस्त्रों का प्रयोग करते थे । 16वीं व 17वी शताब्दी तक मुग़ल सम्राट अकबर के संरक्षण में यह कला भारत में काफी विकसित हुई, परन्तु औरंगजेब के शासनकाल के दौरान इस कला से सम्बंधित शाही कारखानों को बंद कर दिया गया जिससे कारखानों में काम करने वाले कलाकारों को जीविका चलाने के लिए गंभीर संकट का सामना करना पड़ा, काम की तलाश में वो भारत के विभिन्न क्षेत्रों में पहुचें और उनके साथ जरदोजी कला भी भारत के विभिन्न शहरों में पहुंची । 18वी और 19वी शताब्दी के दौरान औधोगिकी क्रांति आने से, इस कला को काफी नुकसान हुआ । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत सरकार ने जरी की कढ़ाई के विकास में विभिन्न प्रकार की योजनाओं की शुरुआत उसके बाद ये कला फिर से जीवित हो पायी ।

प्रारंभ में जरदोजी कढ़ाई रेशम, साटन और मखमल जैसे कपड़ों के आधार पर शुद्ध सोने और चांदी के तारों (धागों) के साथ रंग-बिरंगी विभिन्न प्रकार के मोती एवं कीमती पत्थरों का प्रयोग करके वस्त्र तैयार किया जाता था

जो काफी मूल्यवान हुआ करता था, हालाँकि आज के समय में जरदोजी कलाकार सुनहरे एवं चांदी के पॉलिश किये हुए रेशमी धागों के साथ तांबे के तारों का प्रयोग कर रहे है ।

प्रमुख केंद्र

भारत में जरदोजी कला के मुख्य केंद्र- उत्तरप्रदेश (वाराणसी, बरेली, लखनऊ, चंदौली, आगरा, शाहजहाँपुर, फर्रुखाबाद), हैदराबाद, दिल्ली, जम्मू-कश्मीर, सूरत, कोलकाता, इत्यादि है जहाँ जरदोजी कशीदाकारी द्वारा उत्पाद तैयार किया जाता है ।

अलंकरण

प्राचीन समय में ग्रामीण महिलाओं द्वारा कशीदाकारी में प्रयोग किये गये अलंकरणों में दैनिक जीवन एवं अध्यात्मिक चित्रों से सम्बंधित अलंकरणों को महत्त्व दिया गया, इस कला के लिए ग्रामीण महिलायें स्वयं ही डिज़ाइनर की भूमिका निभाती थी क्योंकि इस समय ये कला लोककला के अंतर्गत आती थी । धीरे-धीरे इस कला को राजसी संरक्षण मिलने लगा और मुग़ल शासकों द्वारा इस कला से सम्बंधित कार्यशालाओं की शुरुआत की गयी, इन कार्यशालाओं में जरदोजी कला के वस्त्र मुख्य रूप से राजाओं एवं उच्च वर्ग के लोगों के लिए बनाये गये । मुग़ल काल के समय इस कला के लिए डिज़ाइनर होते थे जिन्हें मास्टर डिज़ाइनरों द्वारा प्रशिक्षित किया जाता था । इस समय के जरदोजी के द्वारा तैयार किये गये वस्त्रों के अलंकरणों में फुल-पत्ती, पशु-पक्षी एवं विभिन्न प्रकार के मुग़ल कालीन ज्यामितीय पैटर्न बनाये गये जो यथार्थवादी रूपों से प्रभावित थे ।

मुग़ल काल के पतन के बाद इस कला द्वारा तैयार वस्त्रों को, व्यापार के उद्देश्यों से बनाया जाने लगा जिसका निर्यात अन्य देशों में किया जाता था । आधुनिक प्रभावों के साथ अलंकरण के पैटर्न भी बदलने लगे और ग्राहकों की मांग के अनुसार ही वस्त्रों पर अलंकरण, उनके पसंद के बनाये जाने लगे । वर्तमान समय में ग्राहक अपने बजट और पसंद के अनुसार स्वयं पैटर्न और रूपांकन का चयन करता है और उन्ही के अनुसार, जरदोजी कलाकार वस्त्रों पर कशीदा करता है ।

जरदोजी कला में प्रयुक्त उपकरण एवं सामग्री

जरदोजी कला में निम्नलिखित सामग्री एवं उपकरण का प्रयोग किया जाता है-

1. अड्डा (फ्रेम) 2. सुई 3. कैंची 4. मेटल वायर
5. अलंकरण हेतु आवश्यक सामग्री (धागे, मोती एवं कीमती पत्थर)

अड्डा (फ्रेम)

अड्डा एक प्रकार का लकड़ी या धातु का बना होता है, ये अड्डा चौकोर व गोलाकार दोनों आकार का होता है। इसके लम्बाई और चौड़ाई को आवश्यकतानुसार निर्धारित किया जाता है जो उत्पाद पर निर्भर करता है । इस फ्रेम को स्थानीय भाषा में कारचोभ कहा जाता है । इस फ्रेम पर जरदोजी करने वाले कपड़े (आधार वाले कपड़े) को सुई व पॉलिस्टर के धागों से टांक कर फ्रेम में कसकर सेट किया जाता है एवं आवश्यकतानुसार कसा जाता है ताकि कसा हुआ कपड़ा, सुई की तेज गति एवं स्पष्ट चित्र को कढ़ाई करते समय परिणाम अच्छे आये ।

सुई

कढ़ाई करने के लिए एक विशेष प्रकार की सुई का प्रयोग करते है जिसे स्थानीय भाषा में अरी कहते है । यह सुई बाजार में नम्बर (साइज़) के हिसाब से मिलती है, अरी की साइज़ व नम्बर, जरदोजी में अलग-अलग अलंकरण और अलग-अलग काउंट (आकार) के धागों पर भी निर्भर करता है जिसके अनुसार अरी का प्रयोग करते है इसके साथ कभी-कभी जरुरत पड़ने पर साधारण सुई का भी इस्तेमाल किया जाता है । अरी सुई बाजार में 5 रुपये से लेकर 80 रुपये तक का मिलता है ।

कैंची

जरदोजी कढ़ाई करते समय कैंची एक आवश्यक उपकरण की भूमिका निभाता है जो अनावश्यक धागों को काट कर अलंकरण में फिनिशिंग लाने का काम करता है ।

मेटल वायर

मेटल वायर, धातु की सिल्लियों को पिघलाकर एक छिद्रित स्टील शीट से पास कराकर, तार के रूप का आकार दिया जाता है ये आकार आवश्यकतानुसार पतला या मोटा हो सकता है । स्थानीय कलाकारों के अनुसार एक सादे तार को बिल्ला कहा जाता है एवं इसी बिल्ले को अलग-अलग आकार में बदले हुए रूप को कासब कहा जाता है इसके अलावा बिल्ले से बने डॉट्स को मुकिश (मुकेश) कहा जाता है । मुकेश के नाम से बनारस में एक और कढ़ाई शैली प्रचलित है जिसको मुकेश की कढ़ाई (Mukesh Embroidery) कहते है ।

अलंकरण हेतु आवश्यक सामग्री (धागे, मोती एवं कीमती पत्थर)

जरदोजी के अलंकरणों के लिए कई प्रकार के सामग्री का प्रयोग किया जाता है जिसमें कौड़ी, दबका (एक विशेष प्रकार का धागा), कोरा, कटोरी, टिकना, सेक्विन, सितार, सोने एवं चांदी के तार एवं विभिन्न रंग के रेशम व सूती धागों का प्रयोग किया जाता है । इसके साथ-साथ अच्छी गुणवत्ता के प्लास्टिक की पतली एवं आवश्यकता के अनुसार मोटी मालाओं का भी प्रयोग किया जाता है । इनके प्रयोग से जरदोजी में बना वस्त्र काफी वजनदार एवं महंगा होता है ।

वर्तमान समय में कलाकार सोने-चांदी के जरी के स्थान पर विभिन्न प्रकार के सस्ते रेशमी धागों का भी प्रयोग कर रहे है जो मूल्य में कम होते है और आम लोगों के लिए भी सुविधाजनक होता है । बनारस के कलाकार ये सारी वस्तुएं स्थानीय बाजार से ही खरीदते है ।

चित्र (उपकरण एवं अलंकरण सामग्री)

तकनीक प्रक्रिया

वस्त्र के ऊपर जरदोजी कशीदाकारी करने के लिए विभिन्न प्रक्रिया होती है जो निम्नलिखित है-

1. अड्डा फ्रेम की सेटिंग
2. अलंकरण प्रक्रिया
3. कपड़े पर अलंकरण की ट्रेसिंग
4. जरदोजी कशीदाकारी प्रक्रिया

सबसे पहले यह तय किया जाता है कि उत्पाद किस उद्देश्य से बनाना है उसके अनुसार लकड़ी या धातु के अड्डा फ्रेम के आकार का चयन करते है- जैसे किसी परिधान को बनाना है तो बड़े फ्रेम की आवश्यकता होगी और कोई छोटा सजावटी उत्पाद बनाना है तो छोटे फ्रेम की आवश्यकता होगी । इसके बाद कपड़े का चयन भी उत्पाद के अनुसार छोटा या बड़ा करके अड्डा फ्रेम में कस लिया जाता है और इस प्रकार कशीदाकारी करने के लिए कपड़ा तैयार हो जाता है ।

जिस डिज़ाइन को कपड़े के ऊपर बनाना है, को पेपर पर रेखाचित्र के माध्यम से बनाते है फिर बनाये गये डिज़ाइन को ट्रेसिंग फिल्म पेपर पर ट्रेस किया जाता है, ट्रेसिंग पेपर पर छपे डिज़ाइन को साधारण सुई की मदद से डिज़ाइन के अनुसार छिद्र किया जाता है और इस प्रकार ट्रेसिंग फिल्म पेपर पर छिद्र की मदद से अलंकारण बन जाता है । एक विशिष्ट प्रकार के घोल (मिटटी के तेल के साथ ब्लू रोबिन या सफ़ेद चौक का घोल) तैयार किया जाता है जिसको एक सूती कपड़े या धागे की मदद से, ट्रेसिंग फिल्म पेपर पर बने अलंकारण को, अड्डा फ्रेम पर सेट किये कपड़े के ऊपर ट्रेस (छापाई) किया जाता है । इस प्रकार डिज़ाइन कपड़े पर ट्रेस हो जाता है ।

छपे हुए डिज़ाइन को एक विशेष प्रकार की सुई (अरी/हुक) की सहायता से, विभिन्न प्रकार के धागे, मोतियों, विभिन्न आकार वाले कांच एवं कई प्रकार के कीमती पत्थरो का प्रयोग करते हुए कशीदा करते है । परिधान या किसी भी प्रकार के उत्पाद में कशीदा सामग्री ग्राहकों के अनुसार की कारीगरों द्वारा प्रयोग की जाती है ।

परिचर्चा

वाराणसी में हिन्दू एवं मुस्लिम, दोनों समुदाय के लोगों द्वारा जरदोजी कला का काम किया जाता है । मेरे साक्षात्कार के दौरान बनारस के कई कलाकारों से बात-चीत हुई जिन्होंने जरदोजी कला से सम्बंधित जानकारियां मुझसे साझा किया । बनारस के कलाकारों में एकलामुद्दीन (औरंगाबाद), हर्ष वर्धन (दुर्गाकुंड) एवं सैय्यद निषाद अली (सोनारपुरा) प्रमुख है जो कई पीढ़ियों से जरदोजी कढ़ाई के कार्य में संलग्न है ।

बनारस के सबसे पुराने जरदोजी कलाकार एकलामुद्दीन जिनकी उम्र लगभग 68 वर्ष के आसपास है, के द्वारा यह कला कम उम्र से ही सीखते है और 8 से 10 वर्ष बाद कलाकार के हाथों में इस कला के प्रति निखार आता है, ज्यादा उम्र के लोग सीख तो सकते है लेकिन इस कला में उतना अच्छा निखार नहीं आएगा । इनका कहना था कि जब से भारत सरकार ने 18 वर्ष के कम बच्चों को काम करने पर रोक लगा दी तब से इस काम में कमी आई है, 18 वर्ष के बाद के लोग इस कला से परिचित नहीं होते हैं और न ही इस काम को सीखना चाहते है । एकलामुद्दीन के परिवार पारंपरिक रूप से इस कार्य में लगे हुए थे परन्तु सरकार द्वारा बाल्यावस्था पर रोक लगने के बाद इन्होनें अपने बच्चों को भी इस कार्य से वंचित कर दिया, धीरे-धीरे इनका कारखाना बंद हो गया ।

सैय्यद निषाद अली जो जरदोजी के बारीक से बारीक अलंकरण बनाने के लिए जाने जाते है, इनका खुद का कारखाना है जहाँ 8 से 10 जरदोजी के कारीगर कार्य करते है, इनके द्वारा बनाये गये उत्पाद देश एवं अन्य देशों में भी निर्यात किये जाते हैं । इनके आलावा बनारस में कुछ ही ऐसे परिवार है जो इस कला से जुड़े हुए हैं ।

वर्तमान परिदृश्य

स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले जरदोजी के बने उत्पादों में महंगे एवं कीमती सामग्रियों का प्रयोग किया जाता था, इनसे बने उत्पाद काफी भारी एवं महंगे होते थे लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के उत्पादों में परिवर्तन किया गया

जिसमें सोने-चांदी के तारों की जगह पॉलिश किया हुआ तांबे के तार (धागे), कीमती मोतियों की जगह रंग-बिरंगी सस्ते मोतियों का प्रयोग इनके आलावा विभिन्न प्रकार के धागों का इस्तेमाल किया जाता है जो पहले की अपेक्षा हल्के और कम मूल्य के होते हैं ।

बनारस के कलाकारों द्वारा तैयार उत्पादों में शादी-विवाह के परिधान, फैशन के लिए (पर्श, पोटली, बेल्ट, जूते), बैच (मिलिट्री के जवानों या किसी ऑफिसर के लिए) एवं प्रतीक-चिह्न के रूप में इत्यादि से सम्बंधित उत्पाद तैयार किये जाते है, इनके अलावा घरेलु उपयोगों में कुशन कवर, वाल-हैंगिंग, टेबल कवर और आजकल आभूषणों में भी जरदोजी कढ़ाई का प्रयोग किया जा रहा है ।

जरदोजी एक प्रकार की कढ़ाई शैली है जिसको मुग़ल शासकों ने पर्शिया से भारत लाया, मुग़ल शासकों के संरक्षण में ये कला विकसित हुई एवं भारत के विभिन्न राज्यों में इसका केंद्र स्थापित हुआ । मुग़ल शासक औरंगजेब के समय में कला के लगभग सभी कलाओं को बंद कर दिया गया जिसके फलस्वरूप जरदोजी कला का पतन होने लगा । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत सरकार ने विभिन्न योजनाओं की शुरुआत की । कुछ वर्ष पहले ओ0डी0ओ0पी0 (एक जनपद एक उत्पाद), मुद्रा लोन मुख्य है इनके अलावा सरकार ने उत्तरप्रदेश के हर एक जनपद में जिला उद्योग एवं प्रोत्साहन केंद्र की स्थापना की, इस केंद्र के द्वारा सरकार कलाकार को हस्तनिर्मित उत्पादों से सम्बंधित आने वाली समस्याओं का निवारण करती है । समस्याओं में मुख्य रूप से उत्पाद तैयार करने के लिए आवश्यक सामग्री, उत्पादों के निर्यात में समस्या उत्पन्न होना इत्यादि का निवारण करती है इसके अलावा हस्तनिर्मित उत्पादों को बढ़ावा देने के लिए सरकार विभिन्न कार्यशालाओं का भी आयोजन करवाती है जिससे कलाकारों की संख्या में बढ़ोत्तरी हो और हस्तनिर्मित कलाओं का विकास हो । इन योजनाओं के लाभ से उत्तर प्रदेश के कई जिलों में जरदोजी कला के द्वारा वस्त्र परिधान, सजावटी वास्तु, एवं कई प्रकार के प्रतीक चिह्न व बैच बनाये जा रहे है । बनारस, चंदौली, आगरा, बरेली, शाहजहांपुर और लखनऊ मुख्य शहर है जहाँ जरदोजी कला के काम आज भी हो रहे है ।

बनारस के कलाकारों द्वारा बनाया गया उत्पाद

निष्कर्ष

बनारस की पारंपरिक कलाओं में से एक जरदोजी कला भी अपने अलग तकनीक द्वारा तैयार वस्त-परिधानों के लिए जाना जाता है । इस कला के विकास में मुग़ल शासकों की अहम् भूमिका थी जिन्होनें इस कला को प्रोत्साहित किया । मुग़ल के शासक औरंगजेब के समय के बाद इस कला का पतन होने लगा, 1947 स्वतंत्रता प्राप्ति

के बाद सरकार द्वारा, इस कला से सम्बंधित विभिन्न प्रकार की कार्यशालाओं का संचालन किया गया और ये कला एक बार फिर से जीवित हुई ।

समय के साथ-साथ इस कला के उत्पाद भी बदलते रहे, मुगल भारत में परिधान के रूप में, घोडें एवं हाथियों को सजाने के लिए आभूषण के रूम में एवं विभिन्न प्रकार के सजावटी वस्तुओं के रूप में इस कला का प्रयोग किया जाता था । वर्तमान समय में वस्त्र-परिधान के साथ-साथ इसे आज के फैशन ट्रेन्ड में भी शामिल किया गया है इनके आलावा जरदोजी कला के द्वारा बैच, प्रतीक चिह्न एवं विभिन्न प्रकार के उत्पाद तैयार किये जा रहे है ।

आज भी जरदोजी कला द्वारा तैयार वस्त-परिधान एवं अन्य उत्पाद को लोगों द्वारा पसंद किया जा रहा है इसका मुख्य कारण है कलाकारों की श्रमसाध्य कलात्मकता जो लोगों को इस कला के प्रति आकर्षित करती है ।

सन्दर्भ ग्रन्थसूची

1. Rosemary Crill, Indian Embroidery.
2. Charu Smita Gupta, Zardozi (Glittering Gold Emroidery)
3. Dr. Sanjana singh, Historical review of Zardozi.
4. John Gillow and Nicholas Barnard, Traditional Indian Textile, Thames and Hudson Ltd, London.
5. Jasleen Dhamija, Asian Embroidery, ISBN 81-7017-450-3, Craft council of India.
6. Deendayal Hastkala Sankul (Trade Facilitation Centre & Craft Museum), Office of the Development Commissioner (Handicrafts), Ministry of Textiles, Govt. of India, Badalalpur, Varanasi -221007, Uttar Pradesh
7. डॉ. कैलाश कुमार मिश्र, बनारस की वस्त्र कला
8. YASHODHARA AGRAWAL, SILK BROCADES.
9. https://zardozifashion.com
10. https://www.culturalindia.net
11. https://thedesigncart.com/blogs/news/zardozi-a-timeless-embroidery
12. https://www.tradeindia.com/products/customized-embroidery-work-services-5484074.html
13. https://gulfnews.com/lifestyle/zardozi-workers-struggle-to-make-ends-meet-1.2253404
14. https://khammaghani.in/best-batwa-potli-bags-design-in-rajasthani-style/
15. साक्षात्कार (बनारस के जरदोजी कलाकार)

ऐतिहासिक ग्रंथों में काशीः सन्दर्भों और महत्त्व का विश्लेषण

ऋषभ त्रिपाठी*

शोध सारांश:

इस शोध पत्र में काशी (वाराणसी) के प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक ग्रंथों में वर्णित संदर्भों और उनके महत्व का गहन विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। काशी, जिसे वाराणसी भी कहा जाता है, भारतीय संस्कृति और धर्म का एक प्रमुख केन्द्र रहा है। काशी को भारतीय संस्कृति में ज्ञान और आध्यात्म का महत्वपूर्ण केंद्र माना गया है। इस शोध में यह स्पष्ट किया गया है कि कैसे काशी ने न केवल धार्मिक जीवन को प्रभावित किया, बल्कि कला, वास्तुकला, और सामाजिक मूल्यों में भी योगदान दिया। विभिन्न धार्मिक, साहित्यिक और ऐतिहासिक ग्रंथों में काशी का उल्लेख मिलता है, जो इसके सांस्कृतिक और आध्यात्मिक महत्व को दर्शाता है। ग्रंथों में काशी के बारे में जो विविध संदर्भ मिलते हैं, वे इस महत्त्व को भलीभांति परिलक्षित करते हैं कि काशी सिर्फ एक भौगोलिक स्थान नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक नगर है, जो भारतीय इतिहास में निरंतरता और धरोहर का प्रतीक है। काशी की ऐतिहासिक प्रासंगिकता को समझना न केवल भारत के धार्मिक और सांस्कृतिक इतिहास को समझने के लिए आवश्यक है, बल्कि समकालीन संदर्भ में भी इसकी महत्ता को रेखांकित करता है। इस अध्ययन में काशी के विभिन्न पक्षों, जैसे उसके धार्मिक अनुष्ठान, ऐतिहासिक घटनाएँ, और सांस्कृतिक परम्पराएं, को संदर्भित ग्रंथों के माध्यम से स्पष्ट किया गया है। परिणामस्वरूप, यह शोध काशी की ऐतिहासिकता को समझने और उसकी सांस्कृतिक पहचान का पुनर्विश्लेषण करने में सहायक सिद्ध होगा।

मुख्य शब्द : काशी, वाराणसी, बनारस, शिव, प्राचीन भारतीय ग्रंथ, ऐतिहासिक, महत्त्व, पवित्र, तीर्थ क्षेत्र, धार्मिक।

काशी, वाराणसी या बनारस गंगा के पश्चिमी तट पर बसा हुआ एक अद्वितीय शहर है जो कि विश्व के प्राचीनतम बसे शहरों में से एक माना जाता है। काशी के विषय में उसके महत्व को रेखांकित करते हुए भारतीय ग्रंथों में कहा गया है – ***'मरणम मंगलम यत्र विभूतिश्च विभूषणं, कौपीनं यत्र कौशेयं सः काशी केन मीयते।'*** जोनाथन पैरी के अनुसार, 'काशी अपने दिव्य परिप्रेक्ष्य में ब्रम्हाण्ड का एक सूक्ष्म जगत है, जहां सृजन निरंतर दोहराया जाता है।'[1] पौराणिक कथाओं के अनुसार यह प्राचीन शहर सृष्टि के आरम्भिक काल का है। यद्दपि पौराणिक कथानक मिथक हो सकते हैं तथापि राजघाट में पुरातात्विक उत्खनन से इस क्षेत्र में पहली सहस्राब्दी पूर्व से आधुनिक समय तक एक सतत सांस्कृतिक अनुक्रम के अस्तित्व का पता चलता है।[2] काशी की भौतिक प्राचीनता वेदों के समय तक प्राचीन है क्योंकि वारणावती (वरुणा) नदी का उल्लेख अथर्ववेद में प्राप्त होता है।[3] पुराणों से ज्ञात होता है कि इस नगर का नाम वाराणसी इसलिए पड़ा क्योंकि यह दो नदियों वरुणा और अस्सी के बीच में बसा हुआ है। इसका उल्लेख जाबालोपनिषद तथा शतपथ ब्राह्मण में भी मिलता है। वाराणसी को आमतौर से बनारस नाम से भी जाना जाता है। 24 मई 1956 को बुद्ध पूर्णिमा के अवसर पर इसका नाम आधिकारिक तौर पर वाराणसी कर दिया गया। प्राचीन धर्म ग्रन्थों में काशी के एक सुविसित नगर के रूप में अस्तित्व के अनेक संदर्भ मिलते हैं। काशी पर शासन करने वाले सबसे पुराने राजवंश ने मनु से अपने वंश का दावा किया है। इस वंश के सातवें राजा काश ने काशी को इसका नाम दिया।[4] प्राचीन भारतीय ग्रंथों में काशी के विविध संदर्भों की बात करें तो इसका उल्लेख वेदों उपनिषद, स्मृतियों, महाभारत, रामायण तथा पुराणों में अनेकानेक बार प्राप्त होता है। बौद्ध और जैन साहित्य में भी काशी का उल्लेख मिलता है। छठी शताब्दी ईसा पूर्व में इसका विशेष राजनीतिक महत्व भी था; महाजनपद के रूप में यह कोशल और मगध तथा अवंती के साथ-साथ महत्वपूर्ण राजनीतिक केंद्र के रूप में जाना जाता था। काशी महाजनपद के पश्चिम में वत्स, उत्तर में कोशल और पूर्व में मगध था।[5]

प्रसिद्ध विद्वान पी वी काणे ने 'धर्मशास्त्र का इतिहास' में वाराणसी का उल्लेख इस प्रकार किया है- *'विश्व में कदाचित ही ऐसा कोई शहर होगा जो बनारस से अधिक प्राचीन और अधिक लोकप्रिय श्रद्धा का दावा कर सके। बनारस तीस शताब्दियों से पवित्र शहर रहा है। भारत में कोई भी नगर हिंदुओं की भावनाओं को उतना नहीं जगाता जितना काशी जगाता है।'*[6] काशी का पवित्र स्थान के रूप में उल्लेख वेदों[7], पुराणों[8], रामायण[9], महाभारत[10] तथा बौद्ध एवं जैन ग्रंथों[11] में प्राप्त होता है। यह एक पवित्र तीर्थ क्षेत्र था। वाराणसी में सबसे पहले मानवीय निवास का संकेत अथर्ववेद में प्राप्त होता है कि यह स्थान काशी (अर्थात उज्जवल), जो एक भारतीय स्थानीय जनजाति है, का निवास स्थान रहा था; इसी कारण इस क्षेत्र को काशी के नाम से जाना जाता है।[12] पाणिनि भी 'काशी' शब्द का उल्लेख एक जनजाति के संदर्भ में करते हैं।[13] अपनी प्राचीन ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और धार्मिक विरासत के कारण ही इसे 'मोक्षदायिनी सप्तपुरियों' में सबसे पवित्र माना गया है।[14] महाभारत के समय से काशी को आकार देने वाली कुछ निश्चित ऐतिहासिक घटनाएं प्रारम्भ हुई जिनमें काशी के राजा को पांडवों का सहयोगी बताया गया है। पहली सहस्राब्दी ईसा पूर्व की शुरुआती शताब्दियों में काशी, मगध, कोशाम्बी, कोशल, उत्तर पंचाल और हस्तिनापुर के साथ-साथ फली-फूली। बुद्ध के आगमन से बहुत पहले काशी ने काफी महत्व प्राप्त कर लिया था। यह सातवें जैन तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ तथा तेइसवें जैन तीर्थंकर श्रीपार्श्वनाथ का जन्म स्थान रहा है। बुद्ध के आगमन के समय भी काशी का सांस्कृतिक महत्व चरम पर रहा। काशी के निकट सारनाथ में बुद्ध में अपना प्रथम उपदेश दिया था और कालांतर में भी यह बौद्ध धर्म के में एक महत्वपूर्ण स्थान के रूप में प्रतिष्ठित था। दृष्टव्य है कि व्यावहारिक रूप से भारत के लगभग सभी धर्म प्राचीनकाल से ही काशी से जुड़े रहे हैं किंतु हिंदू धर्म में एक प्रमुख तीर्थ स्थल और मोक्षदायनी नगरी के रूप में इसका विशेष महत्व माना गया।

पुराणों में शिव को काशी से विशेष रूप से जुड़ा हुआ बताया गया है। पुराणों में शिव पुराण, लिंग पुराण, पद्म पुराण, ब्रह्म पुराण, पुराण नारद, मत्स्य पुराण, स्कंद पुराण, विष्णु पुराण इत्यादि में इसके विविध उल्लेख मिलते हैं। मत्स्य पुराण के काशी-महात्म्य में काशी की महत्ता के उल्लेख मिलते हैं। मत्स्य पुराण के अनुसार काशी को भगवान शिव का नित्य विहार स्थल माना गया है। मत्स्य पुराण के अनुसार काशी की लम्बाई पूर्व-पश्चिम में ढाई योजन तथा उत्तर-दक्षिण में आधा योजन है। ऐसा माना जाता है कि एक बार ब्रह्महत्या के पाप से पीड़ित शिव कपाली बनाकर सभी तीर्थों में घूम रहे थे; अंत में यहीं आकर उनका कपाल हजारों टुकड़ों में टूट गया जिसके कारण काशी को 'कपालमोचन तीर्थ' भी

* शोध छात्र (ICHR-JRF), प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्त्व विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय
ईमेल – rishabh.arch96@gmail.com, Mo.no.9696181717.
पता – नरोत्तम नगर दक्षिणी निकट माँ सुशीला क्लीनिक, सिधौली सीतापुर, उ. प्र., 261303

कहा गया है।[15] मत्स्य पुराण के अनुसार शिव ने देवी पार्वती से कहा कि मैं कभी इस क्षेत्र को नहीं त्यागता इसलिए इसे 'अविमुक्त क्षेत्र' भी कहते हैं।[16]

स्कंद पुराण जो की सबसे बड़ा और महत्वपूर्ण पुराण है, के सात खण्डों में एक काशीखण्ड[17], काशी और उसकी महत्ता का विस्तृत वर्णन करता है। काशी की महिमा का वर्णन भगवान शिव ने देवी पार्वती से किया था जिसे कार्तिकेय ने देवी की गोद में बैठे हुए सुना था। बाद में कार्तिकेय के द्वारा महर्षि अगस्त्य को काशी की महिमा का वर्णन किया गया जो कि इस काशीखण्ड में मिलता है। यह घटना सतयुग में घटित हुई बताई जाती है। काशी खण्ड में 100 अध्याय हैं जो की काशी की प्राचीनता, उसकी स्थापना, महत्व, तीर्थों इत्यादि पक्षों का वर्णन करते हैं; जैसे की विभिन्न मंदिरों एवं शिवलिंगों और उनके अस्तित्व में आने के प्रकरणों, देवी-देवताओं इत्यादि का उल्लेख मिलता है। इसमें शिव और देवी के 324 रूपों का उल्लेख किया गया है।[18] यह नगर भगवान शिव को आनंद प्रदान प्रदान करता है इसलिए इसे 'आनंदवन' कहा गया गया है। ग्रंथों में काशी की भौगोलिक स्थिति युगों के साथ बदलती हुई बताई गई है; सतयुग में काशी त्रिशूल के आकार में थी, त्रेता युग में यह चक्र की भांति थी, द्वापर में इसने एक रथ का आकार ग्रहण किया और कलयुग में इसका आकार शंख का है। पद्म पुराण के अनुसार काशी एक ऐसा क्षेत्र है जो पंचकोशी क्षेत्र के रूप में जाना जाता है। प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में वाराणसी का नागरिक इकाई के रूप में उल्लेख न होकर केवल सदैव धार्मिक क्षेत्र के रूप में ही वर्णन मिलता है। काशी या वाराणसी के धार्मिक परिदृश्य को विभिन्न पुराणों में निर्दिष्ट भूगोल के आधार पर समीकृत किया जा सकता है।[19] पुराणों में इसके चार नाम का उल्लेख किया गया है- प्रथम काशी (मध्यमेश्वर से दिल्ली विनायक के मध्य जो कि अब पंचकोसी परिक्रमा के रूप में प्रचलित होती है), द्वितीय वाराणसी (वरुणा और अस्सी नदियों के बीच), अविमुक्त (स्कंद पुराण के अनुसार मध्यमेश्वर के चारों ओर एक कोस) तथा अंतरगृह (पूर्व में मणिकर्नेश्वर और पश्चिम में गोकर्णेश्वर, उत्तर में भरभूतेश्वर और दक्षिण में ब्रह्मेश्वर के बीच का स्थान)। प्रत्येक धर्म क्षेत्र का अपना विशेष धार्मिक महत्व बताया गया है।[20] वाराणसी को पुनः तीन भागों में बांटा गया है- ओमकार खण्ड, विश्वेश्वर खण्ड तथा केदार खण्ड। पुराणों में इन खण्डों का भी सीमांकन वर्णित किया गया है और कहा गया है कि काशी का केंद्र मध्यमेश्वर महादेव का विग्रह है। काशी का भी विभाजन 'शिवकाशी' और 'विष्णुकाशी' नामक दो खण्डों में किया गया है तथा यह मणिकर्णिका घाट से विभाजित होते हैं। अस्सी से मणिकर्णिका तक का भाग 'शिवकाशी' तथा मणिकर्णिका से वरुणा नदी तक का भाग 'विष्णुकाशी' माना जाता है।[21]

प्राचीन ग्रंथो में काशी के घाटों का भी उल्लेख मिलता है। सुप्रसिद्ध दशाश्वमेध घाट के विषय में स्कंद पुराण के काशी खण्ड में कहा गया है कि पहले तीर्थ को 'रूद्रसरस' कहा जाता था लेकिन ब्रह्मा के द्वारा यहां दस अश्वमेध यज्ञ आयोजित किए जाने के कारण इसे 'दशाश्वमेध घाट' कहा जाने लगा।[22] मणिकर्णिका घाट के विषय में भी उल्लेख है कि ब्रम्हाण्ड की रचना हेतु विष्णु ने शिव और पार्वती की रचना की थी। विष्णु ने अपने चक्र से एक कुण्ड निर्मित किया और उसे अपनी तपस्या के पसीने से भर दिया। जब शिव वहां पहुंचे और उन्होंने विष्णु को तप की अग्नि में जलते हुए देखा तो प्रसन्न हो गए। इस समय विष्णु के कान की बाली कुण्ड में गिरने से इस घाट का नाम 'मणिकर्णिका' पड़ा।[23] पुराणों में वर्णित है कि इस घाट पर स्थित 'तारकेश्वर महादेव' मृत व्यक्ति के कान में 'तारक मन्त्र' का उच्चारण करते है जिससे उसे 'मोक्ष' की प्राप्ति होती है। अतः इस घाट को 'मुक्तिक्षेत्र' भी कहा जाता है।[24]

इस प्रकार प्राचीन भारतीय ग्रंथों और ऐतिहासिक उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि प्राचीन समय से ही काशी का एक धार्मिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक एवं दार्शनिक क्षेत्र के रूप में विशेष महत्त्व स्थापित रहता है। हिंदू धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मों के लिए भी यह विकास की एक पृष्ठभूमि उपलब्ध कराता है। पांचवीं शताब्दी में फाह्यान और सातवीं शताब्दी में ह्वेनसांग ने भी यहां की यात्रा की थी तथा बौद्ध धर्म के तत्वों के अध्ययन के साथ हिंदू धर्म की मान्यताओं को भी जाना समझा। फाह्यान यहाँ अनेक बौद्ध मठों और मंदिरों का उल्लेख करता है जिनमें भिक्षु और पुजारी निवास करते थे। काशी क्षेत्र प्रारम्भ से ही शिव के साथ विशेष रूप से सम्बन्धित रहा है जिसके प्रमाण भारतीय साहित्यिक ग्रंथों, पुराणों इत्यादि से मिलते हैं। यद्दपि ऐसा प्रतीत होता है कि यहां के आराध्य-देव 'शिव' का नाम समय-समय पर बदलता रहा है जैसे कि फाह्यान के समय यह महेश्वर था; बाद में विश्वेशर और वर्तमान में विश्वनाथ, जो की सबसे लोकप्रिय नाम है। हिंदू धर्म में काशी की विशेष ख्याति है; यह पण्डितों की सभा के लिए भी प्राचीन काल से ही प्रसिद्ध रहा है जो सामाजिक धार्मिक महत्व के विषयों पर शास्त्रार्थ का आयोजन करती थी। काशी के पण्डितों की सभा के निर्णय को आज भी पूरे समाज के द्वारा आदर्श रूप में स्वीकार किया जाता है। काशी में शिव को आगंतुकों को मोक्ष प्रदान करने वाला माना गया है क्योंकि काशी को 'मोक्षदायिनी शिव' कहा गया है।[25] काशीखण्ड में वर्णित प्राचीन काशी की परम्पराओं को ब्राह्मण और काशी के राजाओं के द्वारा संरक्षण दिया जाता रहा है जिन्होंने युगों-युगों एवं शताब्दियों से धार्मिक गतिविधियों को यहां सुगम बनाया। पंचकोसी परिक्रमा का मार्ग स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि तीर्थ यात्राओं के पौराणिक क्रम का पालन किया जाता है और तीर्थ यात्री एक ऐसे मार्ग पर चलते हैं जो काशी क्षेत्र की सीमा को एक शंख का आकार देता है, जैसा कि स्कंद पुराण में वर्णित है। इस प्रकार विश्वनाथ और काशी के अन्य तीर्थ स्थान से जुड़ी पूजा पद्धतियां आज भी वही है जिनका वर्णन शताब्दियों पहले किया गया है। काशी की महत्ता को वर्णित करते हुए स्कंद पुराण के काशी खण्ड में कहा गया है कि ***'करोड़ों यज्ञ करने से भी वैसी धर्मराशि नहीं मिल सकती जैसे कि वाराणसी की गलियों में घूमने से पद-पद पर आप ही प्राप्त हो जाती है।'***[26]

Notes and References

1. पी. जोनाथन पैरी, *डेथ इन बनारस,* कैम्ब्रिज, 1994, पृष्ठ 11,32.
2. ए के नारायण, टी एन राय, *एक्सवेशंस एट राजघाट* (1957-58 तथा 1960-65). बीएचयू वाराणसी, 1976.
3. मोतीचंद्र, *काशी का इतिहास,* द्वितीय संस्करण, विश्वविद्यालय प्रकाशन,1995, पृष्ठ 21.
4. बैद्यनाथ सरस्वती, *काशी : मिथ एंड रिअलिटी ऑफ़ अ क्लासिकल कल्चरल ट्रेडिशंस,* इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ़ एडवांस स्टडी, 1975. पृष्ठ 5.
5. अंगुत्तर, भाग 1, पृष्ठ 213.
6. पी वी काणे, *धर्मशास्त्र का इतिहास,* भाग 4, ओरिएण्टल रिसर्च इंस्टिट्यूट, पुणे, 1991, पृष्ठ 618.
7. *अथर्व वेद*,4, 7.1.
8. *विष्णु पुराण,* V. 34.1.4.; *ब्रम्हाण्ड पुराण,* III.67,26-62.
9. *रामायण,* आदिखण्ड सर्ग 13, उत्तरखण्ड, अध्याय 56,81.25.
10. *महाभारत,* V. 117.

11. *वैदिक इंडेक्स*, भाग 2 पृष्ठ 116 (V.22.14 देखें)
12. (विस्तृत विवरण के लिए देखें) एम ए शेरिंग, *बनारस: द सेक्रेड सिटी ऑफ़ हिन्दूस इन एनसिएंटएंड मॉडर्न टाइम्स*, दिल्ली, 1868, पुनर्मुद्रित 1975, पृष्ठ XXIII.
13. पाणिनि, *अष्टाध्यायी*, IV.1.168.
14. *गरुण पुराण*, XVI.114
15. *मत्स्य पुराण*, 183.103.
16. *मत्स्य पुराण*, 180.54.
17. *स्कन्द पुराण*, भाग 10-11, *काशीखण्ड*, 1996-1997, जीवी तगरे द्वारा अनुवादित एवम् व्याख्यायित, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली.
18. पूर्ववत्, पृष्ठ 26-28.
19. पूर्ववत्
20. कुबेरनाथ सुकुल, *वाराणसी डाउन द एजेज*, पटना, वाराणसी, 1975, पृष्ठ 163-164.
21. बैद्यनाथ सरस्वती, पूर्ववत्, पृष्ठ 11.
22. *स्कन्द पुराण*, पूर्ववत्, पृष्ठ 66-68.
23. पूर्ववत्, अध्याय 28.
24. पी वी काणे, पूर्ववत्, पृष्ठ 635-636.
25. वी एल सिंह, सेक्रेड एंड प्रोफेन इन द रिलिजिओसिटी ऑफ़ ब्राम्हेनिकल बनारस: पास्ट टू प्रेजेंट, *जर्नल ओग हिस्टोरिकल आर्केओलोजी एंड एंथ्रोपोलोजिकलसाइंस*, 2019;4(3), पृष्ठ 98.
26. *स्कन्द पुराण*, पूर्ववत्,अध्याय 86, श्लोक 32.

प्राचीन नगरी काशी का वैभव–विकास एवं ऐतिहासिक शहर राजमहल के मध्य व्यापारिक संबंध

संदीप कुमार*

सारांश

पतितपावनी गंगा नदी के तट पर अवस्थित अतिप्राचीन नगरी काशी जिसे 'बनारस' तथा वर्तमान में 'वाराणसी' के नाम से जाना जाता है, का ऐतिहासिक, सामरिक, भौगोलिक, आर्थिक और व्यापारिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण शहर राजमहल जिसे बौद्ध काल में 'कजंगल', कनिंघम के अनुसार 'कांकजोल', आईन-ए-अकबरी में 'गंगजुक', मानसिंह द्वारा 'अकबरनगर' एवं ब्रिटिश काल में 'दामिन-ई-कोह', 'जंगल महाल', 'जंगल तराई', के नाम से जाना जाता था, के मध्य व्यापारिक संबंधों ने काशी के वैभव एवं विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वाराणसी उत्तर प्रदेश एवं राजमहल झारखंड राज्य के संताल परगना संभाग के साहेबगंज जिले में दोनों पतितपावनी गंगा नदी के किनारे अवस्थित एक ऐतिहासिक शहर है। वाराणसी प्राचीन काल में काशी महाजनपद की राजधानी थी, वहीं राजमहल मध्यकाल 1592 ईस्वी में सम्पूर्ण तत्कालिन बंगाल की राजधानी थी। संख जातक से ज्ञात होता है कि वाराणसी के व्यापारी नौकाओं द्वारा राजमहल में रुकने के बाद ताम्रलिप्ति होते हुए सुवर्ण भूमि (वर्मा), ढाका (बांग्लादेश), सुदूर पश्चिमी देशों यूनान, रोम एवं महासागरों के किनारे बसे नगरों से व्यापार करते थे। 11वीं सदी ईस्वी तक में वाराणसी के कुल सोलह व्यापारिक मार्गों में से एक स्थल मार्ग अयोध्या, वाराणसी, पटना, मुंगेर, भागलपुर होते हुए राजमहल तक पहूँचती थी। मध्यकाल में राजमहल से वाराणसी आम, दलहनी फसलें, सवाई घास, कीमती लकड़ियाँ, औषधियाँ, कपास, हाथी दांत, कच्चा माल और बर्फ जिसका उत्पादन सिर्फ गंगा के किनारे अवस्थित राजमहल क्षेत्र में होता था, का आयात किया जाता था। वहीं वाराणसी से राजमहल रेशमी साड़ियाँ, पीतल के बर्तन, तांबे के बने पदार्थ, हाथीदांत से बनी वस्तुएं, ग्लास, चूड़ियाँ, लकड़ी, पत्थर और मिट्टी के खिलौने, स्वर्ण आभूषण, भदोही कालीन, संगीत वाद्ययंत्र आदि निर्यात की जाती थी। इस प्रकार राजमहल ने प्राचीन नगरी काशी के वैभव-विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।

कुंजी शब्द:- आर्थिक, कांकजोल, कजंगल, गंगजूक, जंगल महाल, जंगल तराई, दामिन-ई-कोह, पतितपावनी, भदोही कालिन, महाजनपद, सामरिक

भूमिका

वाराणसी प्राचीन काल में काशी महाजनपद की राजधानी थी,[1] वहीं राजमहल मध्यकाल 1592 ईस्वी में सम्पूर्ण तात्कालिन बंगाल जिसमें बिहार, उड़ीसा, झारखंड एवं बांग्लादेश सम्मिलित थी, की राजधानी थी, जिसे अकबर के हिन्दू सेनापति मानसिंह द्वारा बनाई गई थी।[2] भारत 2600 ईसा पूर्व से व्यापार में समृद्ध रहा है। प्राचीन भारत में हड़प्पा सभ्यता के समय से ही व्यापार होता रहा है। व्यापार किसी भी देश की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक विकास का आधार होती है। प्राचीन काल से ही काशी, पाटलीपुत्र, उज्जैन, पुहार, मथुरा आदि प्रमुख व्यापारिक शहर के रूप में स्थापित हो चुके थे। जैन धर्म में व्यापार की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। जैन धर्म के 23 वें तीर्थकर पाश्वनाथ भगवान का जन्म 872 ईसा पूर्व में पौष कृष्ण दशमी को विशाखा नक्षत्र में वाराणसी में हुआ[3] एवं पाश्वनाथ के साथ 20 तीर्थकरों ने झारखंड के गिरीडीह जिले में छोटानागपुर पठार के पूर्वी भाग में स्थित पारसनाथ पर्वत पर निर्वाण प्राप्त किया। इस प्रकार जैन धर्म से भी उत्तर प्रदेश और झारखंड एक दूसरे से संबंधित रहे है। मध्यकाल में राजमहल पूर्वी भारत के एक प्रमुख शहर के रूप में विकसित हुआ। बनारस, पटना, वर्दवान, हुगली, ढाका, चटगाँव, जैसे बड़े शहरों के साथ राजमहल की गणना होती थी।[4] मानव जीवन की समस्त वैकासिक भूमिका यातायात और व्यापार के साधनों पर आधारित है। प्राचीन काल से नगरों के उदय एवं विकास में व्यापार एवं व्यापारिक मार्गों (स्थल एवं जल) का अति महत्वपूर्ण स्थान रहा है, जो उसे सुदूर देशों से जोड़कर उसकी सभ्यता एवं संस्कृति तथा जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के विकास में

* एम.फिल., यू.जी.सी.नेट, शोधार्थी, विश्वविद्यालय इतिहास विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची
मोबाईल नंबर:- 8210540699, ई-मेल:-sandeepku0114@gmail.com

सहायक सिद्ध हुए थे। वाराणसी भी उन अति प्राचीन नगरों में से एक है जिसकी सातत्यता, अखंडता, प्राचीनता एवं धार्मिक समरसता त्रिसहस्राधिक वर्षों से अद्यावधि अक्षुण्ण है। पौराणिक अनुश्रुतियों के अनुसार वरणा और असि नाम की नदियों के बीच बसने के कारण इस नगर का नाम वाराणसी पड़ा।[5] इस प्राचीन नगर के राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक विकास में निश्चित रूप से व्यापार एवं व्यापारिक मार्गों का अति महत्वपूर्ण स्थान रही थी।

व्यापारिक मार्गों की भूमिका

राजमहल एवं वाराणसी दोनों गंगा नदी के पश्चिमी किनारे पर अवस्थित एक ऐतिहासिक शहर है। तेलियागढ़ी 'बंगाल की कुंजी' या 'गेटवे ऑफ़ बंगाल' का प्रसिद्ध मार्ग राजमहल से कुछ दूरी पर अवस्थित है। राजमहल अपनी भौगोलिक, सामरिक एवं व्यापारिक स्थिति के कारण प्रारंभ में संपूर्ण भारत की राजनीति, कूटनीति तथा युद्ध विद्या से संलग्न रहा था। गंगा नदी के किनारे अवस्थित रहने के कारण व्यापारिक दृष्टिकोण से राजमहल की महत्ता प्रमाणित है।[6] मालदा, मुर्शिदाबाद और ढाका से राजमहल का व्यापार काफ़ी बड़े पैमाने पर होता था। राजमहल के इन नगरों से जुड़े होने के कारण पूर्व के क्षेत्रों से व्यापारिक लाभ सीधा वाराणसी को प्राप्त होता था, क्योंकि वाराणसी सीधे तौर पर जल मार्ग और स्थल मार्ग से राजमहल से जुड़ा हुआ था। पश्चिम की ओर गंगा और यमुना के रास्ते वाराणसी के व्यापारी जहाँ मथुरा पहुंचते थे वहीं पूरब की ओर चम्पा (भागलपुर) एवं राजमहल होते हुए ताम्रलिप्ति के बंदरगाह तक जाते थे।[7] राजमहल, वाराणसी को सुगम्य व्यापारिक जलमार्गों से सुदूर पूर्वी क्षेत्रों ताम्रलिप्ति, सुवर्ण भूमि (वर्मा), ढाका (बांग्लादेश) एवं महासागरों के किनारे बसे नगरों से जोड़ती है, फलस्वरूप व्यापार को बढ़ावा मिला। संख जातक से ज्ञात होता है कि वाराणसी के व्यापारी नौकाओं द्वारा राजमहल बंदरगाह पर रुकते थे, इसके बाद ताम्रलिप्ति होते हुए सुवर्ण भूमि (वर्मा), ढाका (बांग्लादेश), महासागरों के किनारे बसे नगरों एवं सुदूर पश्चिमी देशों यूनान, रोम से विभिन्न व्यापारिक वस्तुओं का आयात-निर्यात करते थे। 11 वीं सदी ईस्वी की वाराणसी पूर्व में स्थल मार्गों से भी जुड़ी हुई थी। वाराणसी के कुल सोलह व्यापारिक मार्गों में से एक सड़क अयोध्या, वाराणसी, पटना, मुंगेर, भागलपुर होते हुए राजमहल तक पहूँचती थी, जिसका उपयोग ताम्रलिप्ति तक होता था, जिससे काशिक चंदन और वस्त्र के द्वारा वाराणसी की व्यापारिक महत्ता सम्पूर्ण देश में फैली थी।

प्राचीन नगरी काशी का वैभव-विकास एवं व्यापार

सुदूर प्राचीन काल में वाराणसी की स्थापना का आधार धार्मिक न होकर आर्थिक और व्यापारिक था। यह शहर अर्द्धचंद्राकार में गंगा नदी के पश्चिमी किनारे पर एक ऊँचे कंक्रीले स्थान जहाँ बाढ़ का खतरा नहीं है, पर अवस्थित है। इस शहर में एक ओर वरना नदी तथा दूसरी ओर गंगा नदी है, साथ ही जंगल और विंध्याचल की पहाड़ियाँ बनारस की सुरक्षा कवच का कार्य करती है। नगर और व्यापार के बीच संबंधों ने मानव सभ्यता के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। प्राचीन नगरों में मुख्यतः दुर्ग, महल, मंदिर और बाज़ार होते थे, इन सब मुख्य आधार व्यापार थी। मध्य काल में भी नगरों का प्रशासन जैसे राजा, स्थानीय शासक, नगरों की व्यवस्था, सैनिकों के रख रखाव आदि में व्यापार की महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। प्राचीन नगर काशी के वैभव जैसे कला, साहित्य, तीर्थस्थल, मंदिरों, चित्रकला, गीत-संगीत परंपराओं, कलात्मक आमोद-प्रमोद एवं मनोरंजन के साधनों, धर्म, कला एवं संस्कृति के संगम, मुक्ति की जन्मभूमि, घाट, विभिन्न पर्व-त्योहार, काशी की महान विभूतियों आदि के विकास में काशी या वाराणसी का विभिन्न नगरों से जिनमें से एक महत्वपूर्ण नगर राजमहल से व्यापारिक संबंधों ने अहम भूमिका निभाई थी। सबसे महत्वपूर्ण राजमहल और काशी के मध्य व्यापारिक संबंधों ने काशी को सुदूर पूर्व, दक्षिण और पश्चिम के नगरों से संपर्क स्थापित करने में सहायता प्रदान की, फलस्वरूप काशी के वैभव-विकास में गति आयी।[8]

साहित्यिक विवरणों में राजमहल एवं काशी

कृत्यकल्पतरु, ब्रह्य पुराण, मतस्य पुराण, स्कन्द पुराण, लिंग पुराण, अग्नि पुराण आदि ग्रंथों में वाराणसी शहर का विवरण मिलता है। इसके अतिरिक्त विभिन्न जातकों, बौद्ध ग्रंथों, जैन साहित्यों, विदेशी यात्रियों के यात्रा वृतांतों से वाराणसी और राजमहल के मध्य व्यापारिक संबंधों की जानकारी प्राप्त होती है। चीनी यात्री फ़ाहियान, ह्वेनसांग, बौद्ध साहित्यों दिव्यावदान, संख जातक, सुसंधि जातक, बाबेरु जातक, पुरातात्विक साक्ष्यों, अल्बरूनी की विवरणों, फारसी साहित्यों, विभिन्न आधुनिक औपनिवेशिक-ब्रिटिश अधिकारियों और विद्वानों जैसे सर जॉन मार्शल, बुकानन, कैप्टन शेरविल, टैवर्नियर, बर्नियर

आदि के विवरणों में वाराणसी और राजमहल के मध्य व्यापार का वर्णन मिलता है। जनवरी 1666 ईस्वी में टैवर्नियर ने राजमहल की यात्रा की थी। टैवर्नियर ने लिखा है कि इस समय राजमहल व्यापार का एक मुख्य केंद्र बन गया था। ईस्ट इंडिया कंपनी के फॉक्टर जॉन मार्शल 8 अप्रैल 1670 को राजमहल पहुंचे और वहां वें 3 दिनों तक ठहरे। उन्होंने अपनी यात्रा डायरी में पुनः 13 अप्रैल 1671 ईस्वी को राजमहल के संबंध में विभिन्न ऐतिहासिक तथ्यों का उल्लेख किया है। निकोलस डी ग्रेएफ, डच वेस्ट इंडिया के सर्जन, सितंबर 1670 ईस्वी में राजमहल पहुंचे और 8 दिनों तक विभिन्न स्थानों का निरीक्षण किया। विलियम होजेज भी अपने यात्रा विवरण में काशी और राजमहल के बीच व्यापारिक संबंधों का उल्लेख करते हैं। राजमहल का बंगाल की राजधानी बनने से पूर्व भी ह्वेनसांग ने उल्लेख किया है। वह वाराणसी होते हुए राजमहल आया था। मैकफर्सन ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि सातवीं शताब्दी में चीनी यात्री ह्वेनसांग के समय राजमहल तुलनात्मक रूप से उच्च सभ्यता का केंद्र स्थल था।

काशी और राजमहल के मध्य व्यापारिक संबंध

वर्तमान में झारखण्ड के साहेबगंज जिले में गंगा नदी के पश्चिमी किनारे पर इतिहास प्रसिद्ध राजमहल अवस्थित है। साहेबगंज शहर गंगा नदी के किनारे 25.15 डिग्री उत्तर अक्षांश एवं 87.38 डिग्री पूर्वी देशांतर में अवस्थित है।[9] जिले का भौगोलिक क्षेत्रफल 1599.00 वर्ग किलोमीटर है। भौगोलिक दृष्टी से राजमहल का इलाका उतार-चढ़ाव एवं खाई का इलाका है। इस इलाके में काफी उपजाऊ जमीन है, जिसमें अच्छी फसल होती है। राजमहल क्षेत्र में गंगा, गुमानी, बाँसलोई, कझिया, धूलिया आदि नदी प्रवाहित होती है। राजमहल क्षेत्र की सबसे प्रमुख नदी गंगा नदी है जिसके द्वारा पटना होते हुए वाराणसी तक राजमहल से विभिन्न व्यापारिक वस्तुओं का आदान-प्रदान होता था।[10]

गंगा नदी की अवस्थिति के कारण बनारस और राजमहल मुगलकाल में मुख्य व्यापारिक केंद्र थी। खाद्यान्नों के साथ काओलिन, मेटल स्टोन और रस्सी बनाने के धागा यहां से वाराणसी भेजे जाते थे। तिलहन, सरसों, तंबाकू आदि वस्तुएं मुख्य तौर पर निर्यात होती थी। मुगलकाल में राजमहल से मालदा, मुर्शिदाबाद, पटना, बनारस, ढाका आदि नगरों के साथ व्यापार काफी बड़े पैमाने पर होता था। वर्तमान में भारत सरकार द्वारा राजमहल का व्यापारिक-आर्थिक महत्व देखते हुए गंगा के ऊपर सड़क और रेल मार्ग निर्माण कार्य चल रहा है।

वाराणसी जहाँ प्राचीन काल में काशी महाजनपद की राजधानी थी तथा वर्तमान में भारत की सांस्कृतिक राजधानी है वहीं मध्यकाल में राजमहल संपूर्ण अविभाजित बंगाल की राजधानी हुआ करती थी।[11] अंग्रेजी यात्री राल्फ फिच के अनुसार अकबर के शासन काल में अकबर का सारा ध्यान बंगाल पर था, जिसकी राजधानी राजमहल थी। राल्फ फिच के अनुसार मुगलकाल में 1567 ईस्वी तक अकबर ऐतिहासिक शहर बनारस से नाराज रहे लेकिन बाद में अकबर की धार्मिक उदारता, टोडरमल और मानसिंह के प्रयत्नों से बनारस पुनः एक बार चमक उठा। फिच के अनुसार मुग़लकाल में बनारस एक बहुत बड़ा शहर था। यहाँ सूती वस्त्रों का बहुत बड़ा व्यवसाय था और सम्पूर्ण मुग़लकालीन भारत में मुग़लों के लिए पगड़ियाँ यही बनती थी।[12] मुगलकाल में राजमहल मिट्टी के बर्तन बनाने, रस्सी बनाने, बीडी उद्योग, लोहा तथा लकड़ी के खिलौने बनाने की प्रमुख औद्योगिक केंद्र थी। जलमार्ग द्वारा राजमहल और वाराणसी के मध्य व्यापारिक वस्तुओं का आदान-प्रदान होता था।

यह विवरण भी मिलता है कि राजमहल के कजंगल नामक स्थान पर सम्राट हर्षवर्धन ने अपना दरबार किया था। इसके पूर्व महात्मा बुद्ध के द्वारा भी कजंगल भ्रमण का विवरण मिलता है।[13] बाद में मुगल काल में 1505 ईस्वी में प्रसिद्ध वैष्णव संत चैतन्य महाप्रभु ने राजमहल क्षेत्र का भ्रमण किया था।[14] वें राजमहल के निकट कन्हैया स्थान गांव तक गए थे। कन्हैया स्थान में निर्मित एक मंदिर में चैतन्य महाप्रभु के पैर के चिन्ह अंकित है। धार्मिक दृष्टिकोण से भी राजमहल की महत्ता है।

हस्तशिल्प और उद्योगों के केंद्र होने के कारण राजमहल में निर्मित वस्तुओं की विशिष्टता और गुणवत्ता के कारण देशों और विदेशों में भी प्रसिद्धि प्राप्त कर ली थी। बंदरगाह होने के कारण राजमहल का व्यापारिक नगर के रूप में उदय हुआ।[15] बंगाल की अधिकांश आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में रहने के बावजूद शिल्प, कृषि और पशुधन उत्पादों के कारण राजमहल से बनारस तक जुड़ी हुई थी। मुगलकाल में नगरों के मुख्य प्रकार धार्मिक-सांस्कृतिक नगर, राजनीतिक-प्रशासनिक नगर और औधोगिक-व्यापारिक नगर के रूप में थी। राजमहल में इन तीनों प्रकार के नगरों की विशेषता थी। शाहशुजा की पराजय के बाद राजमहल की ऐतिहासिक श्रेष्ठता और महत्ता का पतन हो गया लेकिन शाहशुजा की पराजय के बाद 1661 ईस्वी में राजमहल में सिक्का ढालने का काम होता

था। व्यापारियों द्वारा यहां सोने की प्लेटें सिक्के ढालने के लिए भेजी जाती थी।[16] उस समय राजमहल "ए मिंट टाउन" के रूप में विकसित हो चुका था।

जब राजमहल शाहशुजा की राजधानी थी, तब वहां डॉक्टर गेब्रियल बाउटन नामक अंग्रेजों का एक अनधिकारिक प्रतिनिधि था, जो शाहशुजा के काफी निकट था। कहा जाता है कि उसने शाहशुजा के परिवार की किसी महिला को एक भयानक रोग से मुक्त किया था। साथ ही शाहजहां की पुत्री का सफलतापूर्वक ऑपरेशन करने के फलस्वरुप शाहशुजा का इस अंग्रेज डॉक्टर पर काफी प्रभाव था। डॉक्टर बाउटन ने शाहशुजा से फरमान लेने में सफलता पाई और इस प्रकार अंग्रेजो को भारत में व्यापार करने की अनुमति मिली।[17] राजमहल में ही डॉक्टर बाउटन का देहांत हुआ। उनकी कब्र भी राजमहल में बनाई गई। इस प्रकार अंग्रेजों ने अपने एक व्यापारिक केंद्र के रूप में बंगाल का चयन किया। राजमहल से जुड़े होने के कारण वाराणसी को बंगाल की आर्थिक गतिविधियों का लाभ मिला।

सौभाग्य से इसके बाद मुर्शिद कुली खां बंगाल का दीवान नियुक्त हुआ और मृत्यु पर्यत बंगाल की बागडोर संभाले रहा और बनारस से व्यापारिक संबंध बनाए रखा। इनके शासनकाल में बंगाल इतना अधिक समृद्ध हो गया कि इसे 'बंगाल का स्वर्ग' कहा जाने लगा। इसके पश्चात आगे बंगाल की बागडोर अलीवर्दी खां के हाथों में आई। अलीवर्दी खां 1728 ईस्वी में अकबरनगर (राजमहल) के एक चकला का पहले फौजदार नियुक्त हुआ था।18 अलीवर्दी खां को अंग्रेजों के षड्यंत्र का पता चल गया था अतः उसने अपने धेवते सिराजुद्दौला को अंग्रेजों से सावधान रहने की सलाह दी थी। नवाब ने राजमहल से अपनी सेना को कलकत्ते की ओर मोड़ दिया और अंग्रेजों को दंडित किया। परंतु प्लासी के युद्ध 23 जून 1757 ईस्वी में अपने सेनापति मीरजाफर द्वारा विश्वासघात किए जाने के कारण सिराजुद्दौला की निर्णायक हार हो गई। सिराजुद्दौला ने राजमहल में शरण ली पर राजमहल में फकीर जीवन व्यतीत कर रहे दानाशाह नामक एक आदमी जिसके सिराजुद्दौला ने समाज विरोधी आचरण के अपराध में नाक-कान कटवा दिए थे ने सिराजुद्दौला को पहचान लिया। दानाशाह ने राजमहल के फौजदार मीर दाऊद, मीरजाफर के भाई को इसकी सूचना दे दी। सिराजुद्दौला को बचाने के लिए एक फौजी टुकड़ी राजमहल पहुंची, परंतु इसके पहले ही मीर मुहम्मद ने सिराजुद्दौला को गिरफ्तार कर मुर्शिदाबाद भेज दिया। मुर्शिदाबाद में मीरजाफर के पुत्र मीरन ने मुहम्मद बेग से सिराजुद्दौला की हत्या करवा दी।

1760 ईस्वी में मीरन पर चंपारण में बिजली गिरने के कारण उसका देहांत हो गया। मिरन की कब्र राजमहल में बनाई गई। 5 सितंबर 1763 ईस्वी को राजमहल से 6 मील की दूरी पर अवस्थित उधवानाला में मीरकासिम और अंग्रेजों में संघर्ष हुआ।[19] पराजित होने के बाद मीरकासिम को राजमहल से पटना भागना पड़ा। 23 अक्टूबर 1764 ईस्वी को बक्सर के निर्णायक युद्ध में अंग्रेजो ने मीरकासिम, मुगल सम्राट शाहआलम द्वितीय और वाराणसी के निकट अवस्थित अवध के नवाब वजीर शुजाउद्दौला को पराजित कर दिया। इसके पश्चात राजमहल पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। 1769 ईस्वी में विलियम हार्वुड को प्रथम निरीक्षक नियुक्त किया गया। इनका मुख्यालय राजमहल में था।

निष्कर्ष

स्पष्ट है कि प्राचीन काल में काशी, मध्यकाल में बनारस, वर्तमान में वाराणसी के नाम से प्रसिद्ध इस ऐतिहासिक शहर के वैभव-विकास में व्यापार की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। ऐतिहासिक शहर वाराणसी एवं राजमहल के बीच मुख्यतः मध्यकाल में व्यापारिक संबंधों ने काशी के वैभव-विकास के साथ-साथ सम्पूर्ण भारत की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। राल्फ फिच के अकबर के शासन काल में अकबर का सारा ध्यान बंगाल पर था, जिसकी राजधानी राजमहल थी। अंग्रेजी यात्री राल्फ फिच के अनुसार मुगलकाल में 1567 ईस्वी तक अकबर इस ऐतिहासिक शहर बनारस से नाराज रहे लेकिन बाद में अकबर की धार्मिक उदारता, टोडरमल और मानसिंह के प्रयत्नों से बनारस पुनः एक बार चमक उठा। फिच के अनुसार मुग़लकाल में बनारस एक बहुत बड़ा शहर था, यहाँ सूती वस्त्रों का बहुत बड़ा व्यवसाय था और सम्पूर्ण मुग़लकालीन भारत में मुग़लों के लिए पगड़ियाँ यही बनती थी। वाराणसी से राजमहल के बिच व्यापारिक संबंधों का सबसे बड़ा लाभ वाराणसी को यह मिला कि वाराणसी का व्यापार सुदूर बंगाल मे अवस्थित ताम्रलिप्ति होते हुए सुवर्ण भूमि (वर्मा), ढाका (बांग्लादेश), महासागरों के किनारे बसे नगरों, एवं सुदूर पश्चिमी देशों यूनान, रोम आदि से होने लगा। वही मध्य काल में राजमहल को यह लाभ मिला कि राजमहल को सम्पूर्ण बंगाल की प्रांतीय

राजधानी बनाई गई। राजमहल ब्रिटिश सत्ता का केंद्र रहे कलकत्ता से निकट अवस्थित होने के कारण ब्रिटिश काल में भी वाराणसी के आर्थिक, व्यापारिक, सांस्कृतिक विकास में सहायक रही।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मोतिचंद्र, काशी का इतिहास, वैदिक काल से अर्वाचीन युग तक का राजनैतिक-सांस्कृतिक सर्वेक्षण, हिन्दी ग्रंथ-रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड, बंबई, 1962, पृष्ठ संख्या 43-49
2. सुरेश्वर नाथ एवं दिनेश नारायण वर्मा, राजमहल थ्रू द ऐजेस, प्रभात प्रिंटर्स, बरहरवा (साहिबगंज), 1990, पृष्ठ संख्या 13
3. मोतिचंद्र, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ संख्या 1
4. सुरेश्वर नाथ एवं दिनेश नारायण वर्मा, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ संख्या 3
5. ए. कनिंघम, एन्शेंट ज्योग्राफी ऑफ़ इंडिया, ट्रबनर एंड कंपनी, लंदन, 1871, पृष्ठ संख्या 499
6. सुरेश्वर नाथ एवं दिनेश नारायण वर्मा, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ संख्या 2
7. मोतिचंद्र, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ संख्या 2
8. विलियम फॉस्टर, अर्ली ट्रैवल्स इन इंडिया, ट्रबनर एंड कंपनी, लंदन, 1921, पृष्ठ संख्या 176
9. सुरेश्वर नाथ एवं दिनेश नारायण वर्मा, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ संख्या 1
10. मैकफर्सन, दी फाइनल रिपोर्ट ऑफ दी सर्वे एंड सेटलमेंट ऑपरेशंस इन द डिस्ट्रिक्ट ऑफ संताल परगनास, कलकत्ता, 1910, पृष्ठ संख्या 22-34
11. डी.आर.पाटिल, एंटीक्वेरियन रीमेंस इन बिहार, काशी प्रसाद जायसवाल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पटना, 1963, पृष्ठ संख्या 473
12. विलियम फॉस्टर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ संख्या 176
13. सुरेश्वर नाथ एवं दिनेश नारायण वर्मा, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ संख्या 9
14. वही, पृष्ठ संख्या 10
15. वही, पृष्ठ संख्या 2
16. मॉन्टगोमेरी मार्टिन, दी हिस्ट्री, एंटीक्विटीस, टोपोग्राफी एण्ड स्टेटिस्टिक्स ऑफ ईस्टर्न इंडिया, कॉस्मो पब्लिकेशन, दिल्ली, 1838, पृष्ठ संख्या 8
17. सुधीर पाल एवं रणेन्द्र (संपादित), झारखंड इनसाइक्लोपीडिया हूलगुलानों की प्रतिध्वनियां, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृष्ठ संख्या 93
18. वही, पृष्ठ संख्या 94
19. श्री ब्रूम, हिस्ट्री ऑफ द राइज एंड प्रोग्रेस ऑफ बंगाल आर्मी, स्मिथ एल्डर एंड कंपनी, लंदन, 1850, पृष्ठ संख्या 56-67

काशी का ऐतिहासिक वैभव

सानु जायसवाल*

संध्या यादव**

सारांश

काशी, जिसे बनारस, वाराणसी, आंदनवन, अविमुक्त क्षेत्र और महाश्मशान के नाम से भी जाना जाता है, भारत की साँस्कृतिक और ऐतिहासिक धरोहर का एक जीवंत प्रतीक है। वरुणा नदी और अस्सी नदी के बीच के क्षेत्र को काशी कहते है तथा वरुणा और अस्सी नदियों पर स्थित होने के कारण इसका नाम वाराणसी पड़ा । विश्व के सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद में काशी का उल्लेख मिलता है,इसके अलावा हमारे पौराणिक कथाओं, महाकाव्यों,पुराणों में भी काशी का उल्लेख है ,इससे काशी की प्राचीनता सिद्ध होती है कि कितनी प्राचीन स्थली है ,हमारी काशी। यह नगरी न केवल हिंदू धर्म का प्रमुख तीर्थस्थल है, बल्कि प्राचीन काल से लेकर आधुनिक युग तक विभिन्न सभ्यताओं, धर्मों, और संस्कृतियों का संगम रही है। यह लेख काशी के ऐतिहासिक वैभव को विभिन्न कालखंडों–वैदिक युग, बौद्ध और जैन काल, मध्यकाल, और औपनिवेशिक युग–के संदर्भ में विश्लेषित करता है।वाराणसी के घाटों का दृश्य बड़ा ही मन को मोह लेना वाला है ,इस पर एक कहावत भी है "शाम ए अवध सुबहे बनारस"। गंगा के तट पर बसी काशी ,जो इसकी संस्कृति, सभ्यता,परंपरा को बनाए रखी है और काशी को जीवंत रूप देती चली आ रही है।।धर्म ,शिक्षा और व्यापार से काशी का विशेष सम्बन्ध होने के कारण काशी नगर का इतिहास राजनैतिक न रहकर ऐसी संस्कृति और सभ्यता का इतिहास बन गया है ,जिसमें भारतीयता का पूर्ण दर्शन देखने को मिलता है। इस नगरी ने शिक्षा, कला, दर्शन, संगीत, और व्यापार के क्षेत्र में भी अपार योगदान दिया है। लेख में काशी की विशिष्टता,काशी का निरालापन ,काशी के संत-महात्मा,काशी के घाटों, मंदिरों, और सांस्कृतिक परंपराओं के साथ-साथ इसके ऐतिहासिक विकास को भी रेखांकित किया गया है, जो इसे विश्व की प्राचीनतम जीवित नगरी बनाता है।

मुख्य शब्द- काशी ,संस्कृति, वैभव, ऐतिहासिक, वैदिक युग ,बौद्ध-जैन काल, औपनिवेशिक युग।

प्रस्तावना

"काशी इतिहास से भी पुरानी है, परंपराओं से पुराना है ,किवदंतियों से भी प्राचीन है और जब इन सब को एकत्र कर दे तो संग्रह से भी दोगुना प्राचीन है।"

- मार्क ट्वेन[1]

बनारस, जिसे प्राचीन ग्रंथों में "काशी" कहा गया, यह शहर न केवल भारत की आध्यात्मिक राजधानी है, बल्कि इसकी तुलना विश्व के प्राचीनतम अन्य नगरों जैसे रोम, जेरुसलेम, एथेन्स,एवं पीकिंग से की गई है, जो प्राचीन काल से आज तक निरंतर बसी हुई हैं।[2] बनारस का शाब्दिक अर्थ है - बनारस अर्थात “वह स्थान जहाँ जीवन का रस सदैव बना रहता है”।[3] काशी हिंदुओं के लिए मोक्ष प्रदान करने वाली नगरी है, क्योंकि यहाँ मृत्यु को मोक्ष का द्वार माना जाता है। काशी वह भूमि है जहां मनुष्य और देवता एक ही धरातल पर मिलते हैं और यह एक सच्चे तीर्थ को दर्शाता है।

---

* शोधार्थी, इतिहास विभाग, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी

** शोधार्थी,शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

[1] यादव, सत्यपाल, 19वीं एवं 20वी सदी में काशी के गंगा घाट सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में, वाराणसी, 2019, पृ. v

[2] एकर्ट, डायना एल, बनारस :सिटी आफ लाइट, नई दिल्ली, 1982, पृ. 5.

[3] राणा पी० वी० सिंह, बनारस रिजन : अ स्प्रिचुअल एण्ड कल्चरल गाइड, नई दिल्ली, 2002. पृष्ठ 29

काशी में जन्म लेना जिस तरह से सौभाग्य का प्राप्त होना है, उसी तरह काशी में मृत्यु को प्राप्त करना भी सौभाग्य की बात है। काशी के लोगों की उत्सव प्रियता आज भी बहुत प्रसिद्ध है। काशी की प्रसिद्ध कहावत है 'सात वार नौ त्यौहार '। हमें देखने को मिलता है काशी में काफी त्यौहार मनाया जाते थे। काशी में दिवाली बहुत धूमधाम से मनाई जाती है। काशी का ऐतिहासिक वैभव केवल इसके धार्मिक महत्व तक सीमित नहीं है; यहाँ की गलियाँ, घाट, और मंदिर समय की परतों में दबी कहानियों को समेटे हुए हैं। यह लेख बनारस के ऐतिहासिक विकास, सांस्कृतिक योगदान, और इसके वैश्विक प्रभाव को विभिन्न कालखंडों के माध्यम से प्रस्तुत करता है।इस शहर का नाम बनारस 24 मई 1956 तक प्रचलन में रहा, जब सरकार के एक आदेश द्वारा इसका नाम परिवर्तित कर वाराणसी कर दिया गया।[4]

1. वैदिक युग में काशी: प्राचीन सभ्यता का केंद्र

वैदिक साहित्य में काशी का उल्लेख एक प्रमुख नगर के रूप में मिलता है। काशी नाम सबसे प्राचीन है, जिसका सर्वप्रथम विवरण अथर्ववेद से प्राप्त होता है, जिसका शाब्दिक अर्थ है-**Concentration of Cosmic light**.[5] काशी नगरी ने जिस क्षेत्र में सबसे अधिक उन्नति और विकास किया है वह है वेदों का अध्ययन एवं अध्यापन एवं वैदिक ग्रंथों की रचना। हमारे प्राचीन पुराणों में इस बात के साक्ष्य प्राप्त होते हैं कि काशी नगरी शिव का प्रधान क्षेत्र है और यह आज से नहीं बल्कि सृष्टि के आरंभ से है।काशी न केवल एक राजनीतिक केंद्र थी, बल्कि शिक्षा और दर्शन का भी गढ़ थी।काशी नगरी का उद्धव ही धार्मिक विशेषता के साथ हुई है। प्राचीन काल से ही काशी महान संतो महात्माओं की जन्मस्थली और कर्मस्थली रही है ।यहाँ के विद्वानों ने उपनिषदों और ब्राह्मण ग्रंथों की रचना में योगदान दिया।इसी काशी की पावन धरती पर गोस्वामी तुलसीदास ने हिंदू धर्म का परम पूजनीय ग्रंथ श्री रामचरितमानस का संकलन किया था। काशी का प्राचीन नाम "वरणावती" गंगा की सहायक नदियों वरुणा और अस्सी के संगम से प्रेरित है।[6] इस काल में काशी ने व्यापार के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। गंगा नदी के माध्यम से यह नगर पूर्वी और दक्षिणी भारत के साथ व्यापारिक संबंध स्थापित करता था। राजघाट से प्राप्त पुरातात्विक साक्ष्यों के अध्ययन से यह पता चलता है की काशी के इतिहास में ईस्वी की प्रारामभिक तीन शताब्दीयों का समय काफी समृद्ध एवं उन्नत था, जिसका मुख्य करण यहां होने वाला व्यापार तथा उससे होने वाला लाभ था ।[7] प्राचीन काल से ही काशी भारतीय सभ्यता , संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती आ रही है।

2. बौद्ध और जैन काल में बनारस

बौद्ध धर्म के प्रमुख ग्रंथ अंगुतरनिकाय मे काशी का वर्णन 16 महाजनपदों में किया गया । ईसा पूर्व छठी शताब्दी में बनारस बौद्ध और जैन धर्म का प्रमुख केंद्र बन गया। बुद्ध के समय में वाराणसी स्वतंत्र महाजनपद की राजधानी नहीं रह गई थी फिर भी काशी की प्रसिद्धि सारे भारतवर्ष में था। भगवान बुद्ध ने अपना पहला उपदेश ऋषिपतनम (आधुनिक सारनाथ) में दिया, जो बनारस से कुछ ही किलोमीटर दूर है। सारनाथ में महात्मा बुद्ध ने साठ अनुयायियों के साथ मिलकर अपने प्रथम संघ की स्थापना की तथा फिर उन्हें अनुयायियों को भारत के विभिन्न राज्यों में धर्म प्रचार के लिए भेज दिया था।[8] काशी में उपदेशित बुद्ध का यह प्रथम उपदेश विश्व के कोने कोने में फैल गया ,और जनहित का आवाहन किया। बौद्ध साहित्य में काशी को एक समृद्ध और सांस्कृतिक

---

[4] समाचार टाइम्स (वाराणसी), प्रगति अंक, 1974, पृ० 45.

[5] राणा पी० वी० सिंह एण्ड प्रवीण एस. राणा, बनारस रिजन : अ स्प्रीचुअल एण्ड कल्चरल गाइड, नई दिल्ली, 2002, पृ० 28.

[6] एकर्ट, डायना एल. "बनारस: सिटी ऑफ लाइट", नई दिल्ली,1982, पृ. 23.

[7] गुणाकार मुले, भारतीय इतिहास में काशी, प्रकाशित काशी नगरी एक रूप अनेक, संपादक ओम प्रकाश केजरीवाल, नई दिल्ली, 2010,पृ6.

[8] यादव, सत्यपाल, 19वीं एवं 20 वीं सदी में काशी के गंगा घाट सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में, वाराणसी,2019,पृ० 34

रूप से जीवंत नगर के रूप में वर्णित किया गया है। बौद्ध साहित्य में काशी का वर्णन उसके व्यापार और रेशम के बने वस्त्रों जिसे काशीय कहा गया है ,के कारण भी है ।महाजनपद काल में काशी में जैन धर्म के 23वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ का जन्म हुआ । जैन कथाओं के अनुसार उनके पिता आश्वसेन बनारस के राजा थे। 30 वर्ष की उम्र में इन्होंने श्रमण धर्म स्वीकार किया और 70 वर्ष तक धर्म उपदेश देते हुए अंत में उन्होंने सम्मेद गिरि पर निर्वाण प्राप्त किया। वर्तमान में काशी के भेलूपुर में हमें पार्श्वनाथ का जन्मस्थल एक जैन तीर्थ के रूप में देखने को मिलता है ।इस काल में बनारस ने धार्मिक सहिष्णुता का उदाहरण प्रस्तुत किया, जहाँ हिंदू, बौद्ध, और जैन परंपराएँ एक साथ फली-फूलीं। काशी के सारनाथ में महान मौर्य सम्राट अशोक द्वारा स्थापित स्तूप और धर्मराजिका स्तूप आज भी इस काल की छवियों को चित्रित करता है।[9]

3. **मध्यकाल: इस्लामी प्रभाव और सांस्कृतिक पुनर्जन्म**

मध्यकाल में काशी की प्रसिद्ध तीर्थ क्षेत्र एवं विद्या के केंद्र के रूप में थी।मध्यकालीन यात्री बर्नियर ने बनारस को शिक्षा के क्षेत्र में **'भारत का एथेन्स'** कहा है।मध्यकाल में बनारस पर इस्लामी शासकों का प्रभाव पड़ा। सल्तनत काल और मुगल काल में शासकों ने यहाँ के मंदिरों को नष्ट किया, लेकिन काशी की आध्यात्मिक चेतना, आस्था, दर्शन और बनारसीपन कभी कम नहीं हुई। मोहम्मद तुगलक के काल में काशी की अवस्था पर जिनप्रभु सूरी कृत विविधतीर्थकल्प से काफी प्रकाश पड़ता है। जिनप्रभु सूरी एक प्रसिद्ध श्वेतांबर जैन आचार्य थे और उनका मोहम्मद तुगलक पर प्रभाव था। जिनप्रभु सूरी ने काशी यात्रा की और इस तीर्थ का वर्णन उन्होंने अपनी पुस्तक विविधतीर्थकल्प किया है।[10] सोलहवीं शताब्दी में अकबर के शासनकाल में बनारस को धार्मिक सहिष्णुता का लाभ मिला। काशी विश्वनाथ मंदिर का पुनर्निर्माण और तुलसीदास जैसे संतों का उदय इस काल की विशेषता है।काशी में अनेक भक्ति संतों का उद्भव हुआ, जिन्होंने केवल काशी में सामाजिक सुधार आंदोलन नही किया बल्कि पूरे भारत में भक्ति आंदोलन को एक महत्त्वपूर्ण दिशा प्रदान की ।इन्हें हम ,महान संत रामानंद ,रविदास ,कबीर दास और तुलसीदास के नाम से जानते है।यहाँ की गंगा आरती और घाटों की परंपरा भी इसी काल में और सुदृढ़ हुई।काशी के 14 वीं सदी के मध्य के वर्णन से यह पता चलता है कि मुसलमान के अनेक अत्याचारों के होते हुए भी काशी ने अडिग भाव से धार्मिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में अपना नाम जीवित रखा। इस युग में भी काशी शिक्षा प्रधान केंद्र बना रहा और यहां वेद - वेदांगो तथा व्याकरण की शिक्षा के अतिरिक्त धातुवाद, रसवाद और खन्यवाद जैसे वैज्ञानिक विषयों की भी शिक्षा दी जाती थी । साथ ही साथ नाटक ,अलंकार और साहित्य का भी यहां पठन - पाठन चलता रहता था।[11] बनारस की संगीतमय परंपरा, विशेष रूप से ध्रुपद और ठुमरी, ने भी इस काल में अपनी जड़ें जमाईं।

4. **औपनिवेशिक युग और स्वतंत्रता संग्राम में बनारस**

औपनिवेशिक काल में बनारस ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के लिए एक महत्वपूर्ण व्यापारिक केंद्र था। गंगा के माध्यम से रेशम, सूती वस्त्र, और मसालों का व्यापार होता था।ब्रिटिश के अधिकार में बनारस में बहुत कुछ सुधार भी हुए और जोनाथन डंकन के समय में तो बनारस में बहुत कुछ उन्नति हुई तथा अपनी कार्य कुशलता के कारण आज भी वह बनारस में प्रसिद्ध है। बनारस शहर का विकास का बहुत कुछ श्रेय मराठों को था। मराठों और पेशवाओं की सहायता से बनारस में बहुत से पक्के घाट और इमारतें बनी। जब 1827 में प्रसिद्ध गजल लेखक मिर्जा असद उल्लाह बेग खान गालिब काशी पहुंचे तो वह काशी को देखकर इतनी अभिभूत होकर रचना की-

"इबादत खाने नाकुशिया अस्त

---

[9] डॉ. मोतीचंद्र ,काशी का इतिहास , वाराणसी ,1962, पृष्ठ 38

[10] डॉ. मोतीचंद्र ,काशी का इतिहास , वाराणसी ,1962, पृष्ठ 191

[11] डॉ. मोतीचंद्र ,काशी का इतिहास , वाराणसी ,1962, पृष्ठ 194

हरम न काब ए हिन्दुस्तान मस्त"

गालिब इस मंदिरों एवं गलियों के शहर से इस कदर मंत्र मुग्ध थे कि उन्होंने अपनी मसनवी में इस पावन भूमि को काबा-ए-हिन्दुस्तान कहा है. जिसका अर्थ है भारत की सबसे पवित्र स्थान बनारस।[12] भारत के स्वतंत्रता संग्राम में बनारस का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण और प्रेरणादायक रहा है। औपनिवेशिक भारत में क्रांतिकारी गतिविधियों ,सामाजिक सुधार और राष्ट्रीय एकता के प्रचार - प्रसार का भी केंद्र बन गया। यहां से कई स्वतंत्रता सेनानी जैसे मदन मोहन मालवीय,बाबू शिव प्रसाद गुप्त , हरिफल सिंह आदि ने स्वतंत्रता आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई ।बनारस हिंदू विश्वविद्यालय भी स्वतंत्रता के विचारों और राष्ट्रीयता के प्रचार का एक प्रमुख प्रमुख स्थल बना ,जहां छात्रों और शिक्षकों ने देश प्रेम के भाव को प्रोत्साहित किया।1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में यहाँ के विद्रोहियों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया।1857 के विद्रोह के समय बनारस अंग्रेजों का एक प्रसिद्ध फौजी अड्डा बन गया ।यहां से ग्रांड ट्रक रोड की रक्षा की जाती थी और उत्तर और पश्चिम में फौजी और रसद भी भेजी जाती थी ।बाबू कुंवर सिंह की बगावत का थोड़ा बहुत असर बनारस पर भी पड़ा ।यह कहना कठिन होगा कि अंत में बनारस सिपाही विद्रोह से बहुत कुछ अछूता बच गया।[13] इस काल में सेंट्रल हिंदू स्कूल (CHS) 1898, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय (BHU) की स्थापना (1916), 1921 में स्थापित काशी विद्यापीठ एक ऐतिहासिक घटना थी। एनी बेसेंट और पंडित मदन मोहन मालवीय द्वारा स्थापित यह विश्वविद्यालय शिक्षा और राष्ट्रीय चेतना का प्रतीक बना।[14]

5. आधुनिक बनारस: परंपरा और आधुनिकता का संगम

आज का बनारस परंपरा और आधुनिकता का अनूठा मिश्रण है। काशी विश्वनाथ कॉरिडोर परियोजना ने मंदिर परिसर को नया स्वरूप दिया है, जिससे पर्यटन और धार्मिक महत्व दोनों बढ़े हैं। बनारस की बनारसी साड़ियाँ, हस्तशिल्प, और खानपान, त्योहार आज भी विश्व भर में प्रसिद्ध हैं।बनारस की गलियों में आज भी संगीत, साहित्य, और कला जीवित हैं। यहाँ के घाट, जैसे अस्सी, तुलसी,दशाश्वमेध और मणिकर्णिका, न केवल धार्मिक महत्व रखते हैं, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक गतिविधियों के केंद्र भी हैं। बनारस में कहावत है "सात बार नो त्यौहार" यानी कि सप्ताह में दिन तो साथ होते हैं पर बनारस में उनमें नो त्योहार होते हैं ।आज भी आधुनिक काल में हमें बनारस की यह जो त्यौहार है, प्राचीन काल से जो चलते आ रहे हैं उनकी झलक देखने को मिलती है चाहे वह नवरात्रि मेला ,गणगौर ,रामनवमी, गंगा सप्तमी, दशहरा, निर्जला एकादशी, स्नान यात्रा, रथ यात्रा, दुर्गा जी का मेला, नाग पंचमी, कजरी तीज, लोलार्क छठ, अनंत चौदस, रामलीला, धनतेरस या फिर दीपावली, कार्तिक पूर्णिमा, पंचकोशी यात्रा, गणेश चौथ, शिवरात्रि, होली, यह सारी त्यौहार आज भी बहुत धूमधाम से मनाया जाते है।वर्तमान में काशी स्वास्थ्य सेवा केंद्र के रूप में उभर रही है,एवं गंगा के स्वच्छता पर भी ध्यान दिया जा रहा ।हाल की लगभग 10 वर्षों में काशी में महत्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिलता है जिसमें घाटों का निर्माण ,मंदिरों का पुनर्निर्माण ,धार्मिक आस्था, स्थानीय सामाजिक -सांस्कृतिक पहचान का उदय, निर्माण क्षेत्रों का विकास, पर्यटक स्थलों का निर्माण,रोजगार में वृद्धि इत्यादि ।आज भी बनारस हमारी प्राचीन परंपराओं ,सामाजिक गतिविधियों को जीवित रखे हुए हैं, जो पूरे विश्व के लिए एक मिसाल है।

---

[12] यादव, सत्यपाल, 19वीं एवं 20 वीं सदी में काशी के गंगा घाट सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में, वाराणसी,2019,पृ॰ 37

[13] डॉ. मोतीचंद्र ,काशी का इतिहास , वाराणसी ,1962, पृष्ठ 382.

[14] https://en.wikipedia.org/wiki/Varanasi

निष्कर्ष

बनारस का ऐतिहासिक वैभव केवल इसके मंदिरों, घाटों, या धार्मिक महत्व तक सीमित नहीं है।काशी की ऐतिहासिक प्रासंगिकता को समझना न केवल भारत के धार्मिक और सांस्कृतिक इतिहास समझाने के लिए आवश्यक है बल्कि समकालीन संदर्भ में इसकी महत्ता को रेखांकित करता है।काशी शुरू से ही व्यापार का बहुत बड़ा केंद्र रहा है। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक बनारस में बहुत से राजनीतिक और सांस्कृतिक उलट फिर देख पर उसके व्यापार में कभी कमी नहीं आई । यह नगरी समय के साथ बदलती रही, फिर भी अपनी आत्मा को संरक्षित रखा। वैदिक काल से लेकर आधुनिक युग तक, बनारस ने हर युग में अपनी प्रासंगिकता बनाए रखी।काशी कई धर्मों को अपने अंदर समाये हुई है,यही पर बुद्ध ने अपना पहला उपदेश दिया और बौद्ध धर्म का एक प्रधान तीर्थ स्थल बन गया ।जैन धर्म के प्रसिद्ध तीर्थंकर पार्श्वनाथ की जन्मभूमि ,प्राचीन काल से जैनियों की पवित्र तीर्थ स्थल है। शैवधर्म से तो बनारस का बड़ा प्राचीन संबंध है ,और गुप्त काल में भागवत धर्म का भी यहां उदय हुआ ।बनारस में अलग-अलग धर्म का उदय हुआ और काशी वासियों ने बिना किसी भेदभाव के सभी धर्म का आदर किया और उन्हें अपनाया। यह नगरी विश्व को यह सिखाती है कि परंपरा और प्रगति एक साथ चल सकते हैं।काशी हमेशा से अपनी मौज मस्ती सैर सपाटा, नाच मुजरा के लिए प्रसिद्ध रही है। भविष्य में भी बनारस अपनी सांस्कृतिक और ऐतिहासिक विरासत को संजोए रखेगा, जो इसे विश्व की सबसे अनूठी नगरी बनाता है।

संदर्भ

1. एक, डायना एल., 1992, बनारस सिटी ऑफ लाइट, पेनगुइन बुक्स, नई दिल्ली.
2. मुखर्जी, विश्वनाथ, (1958) 1994, बना रहे बनारस, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी.
3. केजरीवाल, ओमप्रकाश, 2010, काशी नगरी एक : रूप अनेक, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली.
4. राणा, पी.बी. सिंह एवं राणा, प्रवीण सिंह, 2002, बनारस रिजन : ए स्प्रीचुअल एण्ड कलचरल गाईड, इंडिका बुक्स, नई दिल्ली.
5. डॉ. मोतीचंद्र,1962,काशी का इतिहास, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी.
6. यादव, सत्यपाल, (2019), 19वीं एवं 20 वीं सदी में काशी के गंगा घाट सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में, कला प्रकाशन, वाराणसी.
7. डॉ. निहारिका,2007,सारनाथ अतीत और वर्तमान,नई दिल्ली.
8. सरस्वती, शिवानंद, 2010, काशी दिव्य दर्शन, काबरा आफ सेट ,वाराणसी.
9. राय ,योगेंद्रनाथ, 1958, काशी दर्शन ,राज कमल कला प्रकाशन ,वाराणसी.
10. खरे ,सुरेंद्र मोहन, 1992-93 , वाराणसी दर्शन, वाराणसी.
11. समाचार टाइम्स (वाराणसी), प्रगति अंक, 1974.
12. कृष्णा, राम ,1994, काशी: अतीत की झलकियां, विनोद कुमार रत्नाकर भवन, वाराणसी.
13. सुकुल, पंडित कुबेर नाथ, 2000, वाराणसी- वैभव, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना.
14. प्रसाद ,रघुनाथ, 2003 ,काशी निराली नगरी, गोयल प्रकाशन, वाराणसी.
15. सिंह, देवी प्रसाद, सिंह, रणजीत ,2006, काशी की जीवन शैली, भारतीय इतिहास संकलन समिति, वाराणसी.
16. https://en.wikipedia.org/wiki/Varanasi

जल आधारित अनुष्ठान, लोकोपयोगी जलाशय एवं मंदिरः काशी में धर्मार्थ निर्माण की परंपरा

सर्वजीत कुमार पाल*

सारांश

अनुष्ठान हिंदू धर्म में विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किया जाने वाला एक प्रकार का धार्मिक अनुशीलन है। इसे संपन्न करने का एक विशिष्ट नियम होता है तथा कुछ नियमों का पालन करना आवश्यक होता है। इन नियमों में एक है- अनुष्ठान के समय विशेष प्रकार का आहार या व्रत करना व एकाग्र ध्यान तथा मंत्र का जाप करना। इस प्रकार के व्रतों के माध्यम से व्यक्ति अपने मन को एकाग्र करता है तथा आत्मा को शुद्ध करके अपने जीवन में सकारात्मक परिवर्तन का प्रयास करता है।

हिंदू धर्म में ऐसी मान्यता है कि आत्मा की शुद्धि के लिए जल का उपयोग किया जाता है। जल को पवित्र और शुद्धिकारक माना जाता है। जल से विभिन्न क्रियाकलापों द्वारा शरीर व आत्मा की शुद्धि की जाती है जिसमें स्नान, आचमन, हस्त प्रछालन, जलाभिषेक एवं तर्पण प्रमुख है। इन सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जल स्त्रोतों का निर्माण कराना अत्यन्त आवश्यक होता है। ये जलस्त्रोत जलाशय व्यक्तिगत भूमि अथवा सामुदायिक भूमि, जिसमे सार्वजनिक उपयोग वाली जगह यथा मंदिर शामिल हैं, पर प्राचीन काल से ही निर्मित किये जाते रहे हैं। काषी क्षेत्र में भी शासकों द्वारा लोकोपयोगी जलाशयों व मन्दिरों का निर्माण धार्मिक अनुष्ठानों की प्रतिपूर्ति के लिए कराये गए। इस शोध लेख में अनुष्ठानो में जल के प्रयुक्त होने तथा जल के संचयन के लिए बनाये गए जलाशयों का उल्लेख शामिल है। इसके साथ ही इस लेख में बनारस में लोक आचरण की व्यवस्था को संपन्न करने के लिए बनाये गए मंदिरों का भी अध्ययन किया जायेगा साथ ही काशी में धार्मिक रीति रिवाजों एवं परम्पराओं को संपन्न करने के तौर तरीकों का भी अध्ययन किया जायेगा। यह लेख जलाशय व घाट निर्माण में राजकीय सम्बन्धों के प्रभाव का भी वर्णन करता है।

मुख्य शब्द - अनुष्ठान, जलाशय, काशी घाट, राजवंश, मंदिर, रीति - रिवाज, काशी की संस्कृति।

भूमिका

विभिन्नताओं से परिपूर्ण भारतीय परिवेश में स्वयं की अनंत काल से परंपरा रही है तथा लगातार अस्तित्व में प्रभावपूर्ण तरीके से बनी हुई है। ये परंपरा भारतीय जनमानस को एक अभिन्न स्वरूप के रूप में परिणत हुई है। परम्पराएँ समाज में एक नियम की भांति होती हैं जो व्यक्ति समाज को एक सुनियोजित एवं सौन्दर्यपूर्ण लोक कल्याणकारी दिशा की तरफ ले जाती हैं। प्राचीन काल में ये परम्पराएँ अपने विभिन्न उद्देश्यों जैसे राजनैतिक, आर्थिक व सामाजिक, धार्मिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आयोजित किये जाते थे। इन आयोजनों को सुनियोजित तरीके से मुहूर्त के अनुसार पुरोहितों के माध्यम से संपन्न किया जाता था।

हिन्दू परम्पराओं में प्राकृतिक अवयवों का एक विशेष स्थान है। शिशु के प्रथम बिस्तर जिसे प्रायः पालना कहा जाता है, से लेकर व्यक्ति के मृत्यु के समय चिता पर जलाये जाने के लिए आवश्यक लकड़ी हिन्दू जीवन का एक अभिन्न अंग रहा है। धार्मिक संस्कारों में जल, अग्नि आवश्यक रूप से मौजूद होते हैं। हिन्दू विवाह जैसे पवित्र संस्कार या परंपरा जल तथा अग्नि के समक्ष अग्नि को साक्षी मानकर किया जाता है।[1] मृत्यु के समय भी शाश्वत अग्नि को ही शव को समर्पित कर दिया जाता है। इसी प्रकार जल व्यक्ति के जीवन के प्रारंभिक क्षण से लेकर

* शोध छात्र, इतिहास विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, मोबाइल- 7860505489
ईमेल- sarvajeet@bhu.ac.in

अंतिम समय तक संस्कारिक रूप से जुड़ा होता है। घर के चूल्हे से लेकर धार्मिक संस्कारो तक जल एक महत्वपूर्ण प्राकृतिक अवयव है।

प्राचीन ग्रंथों में भी प्राकृतिक अवयवों यथा जल, अग्नि को विशेष महत्त्व दिया गया है। मत्स्य पुराण में अनेक पर्वों का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त मत्स्य पुराण में यज्ञ के अवसर पर, त्यौहार अथवा वैवाहिक समारोहों के उपलक्ष्य में, दुहस्वप्न या शुभ चीजों के दृश्य प्राप्त होने पर दान देने की बात कही गई है। इस प्रकार के दान कर्म किसी कुएं या तालाब के किनारे ही दिए जा सकते थे।[2] इसमें एक अन्य उल्लेख धन प्राप्ति के समय पवित्र स्थान पर दान देने का है। इसका तात्पर्य मत्स्य पुराण में मनोरम तालाब के किनारे धन दान देने की बात कही गई है। मत्स्य पुराण में ही एक अन्यत्र जगह उल्लेखित है कि श्राद्ध कर्म के लिए तीर्थों का सर्वाधिक महत्त्व होता है। तीर्थ पितरों के प्रिय होते हैं। इस प्रकार के तीर्थों में भी उत्तम केदारतीर्थ और सर्वतीर्थमय एवं गंगासागरतीर्थ को पितृप्रिय कहा गया है। वाराणसी नगरी को पुन्यप्रदा की संज्ञा से अभिभूत किया गया है। यहाँ अविमुक्ति के निकट किया गया श्राद्ध भुक्ति (भोग) एवं मुक्ति (मोक्ष) रूप फल प्रदान करता है।[3]

प्राचीन मत्स्य पुराण में काशी को एक उद्यान की भांति बताया गया है जो भिन्न प्रकार के फूलों एवं जलाशयों, भिन्न प्रकार के लताओं, उत्तम वृक्षों जिसके पुष्पों पर भ्रमर समूह गुलजार करते थे, से परिपूर्ण था। इस उद्यान में ऐसे तालाब शोभायमान थे जिसके तट पर अनेक प्रकार के कमल खिले रहते थे।[4] ऐसी मान्यता है की सबसे पहले बनारस अस्तित्व में आया फिर इसके चारों तरफ शेष विश्व का निर्माण हुआ।[5] सातवीं शताब्दी में जब चीनी दार्शनिक यात्री ह्वेनसांग भारत भ्रमण के दौरान बनारस आया तो उसे यहाँ के लोगो का सांस्कृतिक जीवन, धार्मिक एवं आध्यात्मिक जीवन देखकर आश्चर्य की अनुभूति हुई। तत्कालीन समय में जब बौद्ध धर्म का प्रभाव सम्पूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप में व्याप्त था, वह बनारस में बौद्ध धर्म से ज्यादा हिन्दू धर्म के मानने वाले लोगों की संख्या का वर्णन करता है। इसमें भी अधिकांशतः शैव मतावलंबी लोग विद्यमान थे। उसने बनारस में सैकड़ों शिव मंदिरों का उल्लेख किया।[6]

वर्तमान काशी और प्राचीन काशी में कुछ समानताएं आज भी दृष्टिगोचर होती है। प्राचीन कालीन महानगर या तो अपना अस्तित्व खो चुके हैं या फिर अपने मूल से परिवर्तित हो गये किन्तु वाराणसी प्राचीन काल से ही अपने सभ्यता और संस्कृति को समेटे हुए है।[7]

वर्तमान काशी में एक सप्तकाशी मोहल्ला है। इस मोहल्ले में सप्तकूप एवं कई मंदिर विद्यमान हैं जहाँ पर सप्तसागर महादान की पूजा आज भी की जाती है। सप्तसागर महादान के बारे में ऐसी मान्यता है कि गुप्त काल में समुन्द्र यात्रा के उपरांत वापस लौटने वाले यात्री अपने व्यापार में अर्जित धन को परोपकार की भावना से महादान के रूप में सदुपयोग करते थे जिसे सप्तसागर महादान कहा जाता था। तत्कालीन समय में इस प्रकार के स्थान प्रत्येक नगर में स्वयं ही बन गए थे। पाटलिपुत्र, मथुरा, उज्जयिनी, प्रयाग की भांति काशी में भी सप्तसागर महादान के स्थानों के अवशिष्ट प्रमाण मिले हैं।[8]

धर्म, अर्थ, और ज्ञान तीनों का अभूतपूर्व समन्वय हमें काशी में गुप्त कल से ही देखने को मिलता है। इस प्रकार का उल्लेख इसके पूर्व कभी देखने को नही मिला जो नगरीय जीवन पर धर्मतीर्थ, मोक्षतीर्थ व अर्थतीर्थ के उत्तम आदर्शों की छाप स्वभावतः हमेशा के लिए अंकित हो गई हो।[9]

काशी के घाट-

वाराणसी में घाटों का अपना महत्त्व है। प्राचीन काल से ही घाटों पर स्नान दान की परंपरा विकसित होती रही हैं। श्राद्ध कर्म घाटों पर संपन्न किये जाने लगे व ब्राह्मणों के नाम पर दान दिए जाने लगें थे। कई प्राचीन ग्रंथों में विभिन्न तीर्थों पर श्राद्ध करने और उसके उपरांत ब्राह्मण पुरोहितों को भूमि अथवा अन्य प्रकार के उपहार दान स्वरुप देने का उल्लेख किया गया है।[10] श्राद्ध के समय मृतक पूर्वजों को विभिन्न तरीकों से भौतिक वस्तुओं का अर्पण किया जाता था। चावल को शुद्ध जल के साथ मिलाकर गोल आकार का पिंड बना लिया जाता था जिसे

श्राद्ध के वक्त पूर्वजों को अर्पण किया जाता था। इसका प्रमुख उद्देश्य अंतिम भोज के तौर पर पितरों की भूख को शांत करना था। इससे उनके वंशज पितृ ऋण से मुक्त भी हो जाते थे। यही कारण रहा है कि काशी में नदियों और सरोवरों के अलावा घाटों का विशेष महत्व रहा है। इनमे भी सर्वाधिक महत्व गंगा नदी और उसके चैरासी घाटों का रहा है।[11]

वस्तुतः काशी के घाट गंगा नदी की धारा के अनुरूप अर्धचन्द्राकार रूप में बनाए गए हैं जो विभिन्न राजवंशों का प्रतिनिधित्व हैं। इन घाटों पर बने मंदिर प्रभावशाली राजतंत्र की तरफ इशारा करते हैं।[12] इन घाटों की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इनके पास मंदिरों के साथ ही सामंजस्य बिठाकर विभिन्न धर्मों एवं सम्प्रदायों के लोग एक साथ समन्वय की भावना से निवास करते हैं।

मंदिर निर्माण की परंपरा भारतीय क्षेत्र में समृद्धि के काल को दृष्टिगत करती है। सम्पूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप में कई प्रकार के मंदिर निर्माण की स्थापना शैली का विकास हुआ है। वाराणसी के घाटों पर मंदिरों का निर्माण इन सभी मंदिर निर्माण शैलियों का समन्वय का स्वरुप है।[13] इसके अतिरिक्त नेपाली काष्ठ स्थापत्य कला का भी दर्शन वाराणसी के घाटों पर स्थित मंदिरों में मिलता है। ललिता घाट पर बने समराजेश्वर मंदिर, जिसे नेपाली मंदिर भी कहा जाता है[14], का निर्माण मंदिर निर्माण की पैगोडा शैली में किया गया है। ईटों एवं काष्ठ से बना यह शिव मंदिर वर्तमान नेपाल में स्थित पाशुपतिशिव के मंदिर पाशुपतिनाथ मंदिर के प्रतिक के रूप में वाराणसी के ललिता घाट पर विद्यमान है।[15]

काशी ईश्वरीय सत्ता का भी प्रतीक है। इसे कभी न नष्ट होने वाला बताया गया है। मान्यता यह है कि यह चिरस्थाई है और प्रलय काल में भी वाराणसी का विनाश नही हो सकता है। इसे भगवान शिव के त्रिशूल पर बसा हुआ मानते है।[16] काशीखंड में भी उल्लेख मिलता है कि मनुष्य को मोक्ष प्रदान करने में सक्षम बहुत सारे तीर्थ क्षेत्र विद्यमान हैं जिसमे नैमिषारन्य, प्रयाग, बद्रीनाथ, अयोध्या, द्वारिका, मथुरा, प्रमुख तीर्थक्षेत्र हैं लेकिन ये सभी तीर्थ क्षेत्र भी अकेले काशी की समानता नहीं कर सकते क्योंकि काशी अविश्वसनीय रूप से अतुल्यनीय है।[17]

काशी के मंदिर एवं कुण्ड-

14वीं शताब्दी के शुरूआती वर्षों (लगभग 1302 इसवी.) में दो प्रमुख बड़े मंदिरों का निर्माण हुआ। प्रथम पद्मेश्वर मंदिर जो विश्वेश्वर मंदिर के गेट के पास स्थित है तथा दूसरा मणिकर्णिका घाट पर स्थित मणिकर्णिकेश्वर मंदिर है।[18] ये मंदिर मुस्लिम आक्रान्ताओं के विध्वंश के बावजूद वर्तमान में अपने मूल स्थान पर टिके हुए हैं। वस्तुतः आक्रमण के उपरांत विध्वंश हुए मंदिरों को उनके मूल स्थान से हटाकर दुसरे स्थान पर स्थापित कर दिया जाता था। मुस्लिम आक्रान्ता मंदिरों को तोड़ने के उपरांत उनसे प्राप्त धन का उपयोग मस्जिदों के निर्माण में कर देते थे। वाराणसी के अलईपुरा के कई मस्जिदों, चैखम्भा मस्जिद, अरहाई-काँगड़ा-मस्जिद तथा गोलाघाट की मस्जिद फिरोजशाह के समय में बनाये गये मस्जिद संभवतः मंदिरों के विध्वंश के बाद ही अस्तित्व में आयें। फिरोज के समय ही बकरिया कुण्ड की सम्पूर्ण ईमारतीय संरचना बनाई गई थी।[19]

प्राचीन काल में तालाब ,जो काशी में सर्वत्र दिखाई देते हैं, सबका ढलान प्रायः वरुणा नदी की तरफ था। इनमे कुछ ही जलाशय ऐसे थे जिनका ढलान गंगा नदी की तरफ था। इन जलाशयों से प्राचीन कालीन काशी में जलापूर्ति होती थी तथा इन जलाशयों की जलापूर्ति का मध्यं वरुणा और गंगा नदियाँ ही थी।

शैलेश्वर मंदिर वरुणा नदी के उत्तर में स्थित है। लोलार्क कुण्ड जिसका स्वयं का सांस्कृतिक महत्व स्थापित है, पहले अस्सी घाट पर स्थित था। यह कुण्ड अब तुलसी घाट पर स्थित है। अस्सी घाट गंगा नदी का सबसे दक्षिणतम घाट है। लोलार्क कुण्ड के पश्चिम में दुर्गा कुण्ड स्थित है। दुर्गा कुण्ड, दुर्गा मंदिर के परिसर में स्थित है जिसके बीच में एक फव्वारा बना दिया गया है। जिससे इस कुण्ड की सुन्दरता रमणीय हो गई है। अस्सी घाट का नामकरण पास में ही स्थित अस्सी नदी के नाम पर हुआ था। हालाँकि अस्सी नदी अब सूख गई है अथवा विलुप्त हो गई है।[20] घाटों के नामकरण के पीछे का मुख्य कारण वहाँ स्थित तीर्थो से जुड़ा होता था। पुराणों में अस्सी घाट

से लेकर वरुणा नदी तक कुल 99 तीर्थों का उल्लेख भी प्राप्त होता है। परन्तु इन सभी स्थानों पर घाट नही बनाये गये। अकेले राजघाट से लेकर वरुणा तक के ही क्षेत्रों में 25 तीर्थ क्षेत्र मौजूद थे लेकिन यहाँ एक भी घाट संज्ञान में नहीं है।

प्राचीन काशी में पांच प्रमुख और महत्वपूर्ण तीर्थ व घाट विद्यमान थे। इन्ही पांच प्राचीनतम तीर्थों में एक मणिकर्णिका घाट भी था। मणिकर्णिका घाट के पास एक कुण्ड स्थित है जिसे मणिकर्णिका कुण्ड कहा जाता है। प्रारंभ में इसको चक्रपुरुषणी कहा जाता था।[21] सर्वप्रथम काशी खंड में इस कुण्ड के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। इसके अनुसार इस कुण्ड की खुदाई भगवान विष्णु ने अपने चक्र से की थी तथा इसे जल की जगह अपने पसीने से भर दिया था। बाद में भगवान शिव के कान की मणिकर्णक नामक बाली इस कुण्ड में गिर जाने के कारण भगवान शिव ने इसका नाम मणिकर्णिका कुण्ड रख दिया।[22] एक अन्य कथा के अनुसार माता पार्वती के कान की मणि इस कुण्ड के पानी में गिर जाने के कारण इस कुण्ड का नाम मणिकर्णिका पड़ गया।[23]

डॉ० मोतीचंद ने अपनी पुस्तक काशी का इतिहास में इस बात का उल्लेख किया है कि मणिकर्णिका घाट पर महाश्मशान की स्थापना कश्मीरीमल ने की थी।[24] मत्स्य पूरण में व्ही वर्णित है कि इस स्थान पर देह त्यागने से मोक्ष की प्रप्ति होती है। अतः एक समय इस स्थान पर बृद्ध एवं बीमारी से असहाय लोग आकर निवास करने लगे थे। मणिकर्णिका घाट तीर्थयात्रियों के लिए सबसे पवित्र स्थान है।[25] पंचक्रोशी यात्रा के समय इसका महत्त्व और भी बढ़ जाता है। जो तीर्थयात्री पंचक्रोशी की यात्रा करना प्रारंभ करते हैं उनको सबसे पहले मणिकर्णिका घाट पर आना होता है। यहाँ मणिकर्णिका कुण्ड में स्नान करने के उपरांत दान कार्य करके संकल्प लेते हैं तथा इसके उपरांत वे अपनी यात्रा प्रारंभ करते हैं। जब यात्रा पूरी हो जाती है तो उन्हें फिर वापस मणिकर्णिका घाट पर ही आना होता है। पुनः यहाँ स्नान दान कार्य करके अपनी यात्रा संपन्न करते हैं।[26]

काशी के प्राचीनतम पांच घाटों में एक दशाश्वमेध घाट भी है। इसका निर्माण मराठा पेशवा बालाजी बाजीराव ने 18वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में कराया था। के पी जायसवाल दशाश्वमेध घाट को भारशिव राजाओं के साथ जोड़ कर देखने का प्रयास किया है। इनके अनुसार दूसरी शताब्दी ईस्वी में भारशिव राजाओं ने कुषाण शासकों को शिकस्त दिया तथा वाराणसी में इसी स्थान पर एक साथ दस अश्वमेध यज्ञ का आयोजन कराया। यज्ञोपरांत स्नान दान इस जगह किया गया। इसी समय से इस स्थान का नाम दशाश्वमेध पड़ गया।[27] हालाँकि परंपरागत रूप से इसका नाम ब्रह्मा के दस अश्वमेध यज्ञ करने के कारण दशाश्वमेध पड़ा। पुराणों में इस घाट का नाम रुद्रसर भी मिलता है। यह घाट गंगा के किनारे बने सभी घाटों के मध्य में स्थित है।[28]

इस घाट के पास ही दो प्रतिमाएं स्थापित है। प्रथम है दशाश्वमेधेश्वर प्रतिमा तथा दूसरी प्रतिमा है ब्रह्मेश्वर की प्रतिमा। इनकी पूजा करने मात्र से ही व्यक्ति जन्म जन्मान्तर के दोषों से मुक्ति पा सकता है तथा भविष्य में जन्म लेने से भी मुक्ति मिल जाती है।[29] बनारस में शिव के सैकड़ों मदिर दिखाई देते हैं हालाँकि यह नगर धार्मिक सहिष्णुता एवं सद्भावना से युक्त नगर है। प्राचीन काल से ही लोग मेल मिलाप के साथ रहते आये हैं। शिव मंदिरों के आलावा इस नगर में वैष्णव व शक्ति के मंदिरों का भी निर्माण हुआ है। वैष्णव एवं शाक्त धर्म के अनुयायी भी काशी क्षेत्र में निवास करते रहे हैं। इन मंदिरों में श्रीराम मंदिर, दुर्गा मंदिर, तुलसी मानस मंदिर संकटमोचन मंदिर, शीतला माता मंदिर प्रमुख है। इन सभी मंदिरों के अलावा भैरव नाथ का मंदिर काशी विश्वनाथ मंदिर के समीप ही स्थित है। यह मंदिर देखने में बहुत ही मामूली लगता है लेकिन इस मंदिर की लोकप्रियता बहुत ज्यादा है।[30] यह मंदिर चारों तरफ से बंद है तथा इसका आँगन भी बहुत संकरा है। भैरव काशी के संरक्षक देवता माने जाते हैं। ये भगवान विश्वनाथ के कानून के रक्षक एवं मुख्य व्यवस्थापक अधिकारी माने जाते हैं। व्यवस्था बनाये रखने के लिए इनको शस्त्र के रूप में डंडा दिया गया है। डंडा से तात्पर्य दण्ड देने के अधिकार से है।

निष्कर्ष

भगवान शिव के त्रिशूल पर विराजमान काशी नगरी प्राचीन काल से ही सभ्यता एवं संस्कृति की केंद्र स्थली रही है। यहाँ काल के प्रत्येक खंड में घर्म एवं ज्ञान का समन्वय देखने को मिलता है। अविमुक्ति के नाम से विख्यात यह नगर हिन्दू धर्म के सबसे पवित्रतम शहरों में से एक है। समय समय पर आने वाले यात्रियों ने भी इसकी प्रशंशा की है। प्राचीन काल में ह्वेनसांग यहाँ के मंदिरों एवं यहाँ के लोगो की धार्मिक अभिरुचियों का उल्लेख व्यापक रूप से किया है। मध्यकाल में आने वाला मुस्लिम इतिहासकार अलबरूनी ने बनारस में ही दस वर्षों तक रहकर संस्कृत साहित्य का अध्ययन किया तथा यहाँ की सभ्यता एवं संस्कृति को आत्मसात किया। बनारस की एक प्रमुख विशेषता यहाँ के गंगा नदी के किनारे अर्धचन्द्राकार रूप में बने घाट एवं सीढियां हैं। ये घाट एक निश्चित कालखंड में बनवाए गए। इन घाटों को बनवाने में प्रमुख राजवंशो का योगदान रहा जिसमे सबसे ज्यादा मराठा शासकों एवं पेशवाओं ने अपना योगदान दिया। बनारस के मंदिरों में धार्मिक सहिष्णुता के दर्शन होते हैं। यहाँ एक साथ ही शैव व वैष्णव सम्प्रदायों के मदिरों का निर्माण कराया गया है। इन मंदिरों के अलावा क्षेत्रीय देवी देवताओं का भी समावेश यहाँ के मंदिरों में देखने को मिलता है। सबसे प्रमुख यहाँ काल भैरव का मदिर है। भैरव काशी के संरक्षक के रूप में विद्यमान हैं। बनारस में प्राचीन काल से ही जलाशयों का निर्माण होता चला आया है। इस क्षेत्र में प्राचीन काल में बने चक्रपुरुषणी कुंड, लोलार्क कुण्ड, कपिलधारा तालाब तथा मन्दाकिनी तालाब प्रमुख हैं। जेम्स प्रिन्सेप ने भी कपिलधारा तथा मन्दाकिनी तालाब का उल्लेख अपने ग्रन्थ में किया है। उल्लेखनीय है की काशी सम्पूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप के प्रमुख तीर्थों में एक मुख्य तीर्थ क्षेत्र है।

सन्दर्भ सूची

1. नारायनन, वसुधा, वाटर, वुड ,एंड विजडम इकोलॉजिकल पर्सपेक्टिव फ्रॉम द हिन्दू ट्रेडीसंस, द ,एमआईटी प्रेस , 2001 वॉल्यूम 130, पृष्ट- 179
2. सिंह, महेन्द्रनाथ, सिंह, श्रीप्रकाश, पूर्व मध्यकाल में ब्राह्मणों की आर्थिक स्थिति, संस्कृत साधना (संपा- झिनकू यादव) जर्नल आफ द नेशनल रिसर्च इंस्टिट्यूट ऑफ ह्यूमन कल्चर, वाराणसी, जुलाई-दिसम्बर 2012, वोल्यूम-25, पृष्ट-140
3. मत्स्यमहापुराण, 22वां अध्याय, गीता प्रेस गोरखपुर, पृष्ट- 84
4. मत्स्यमहापुराण, 58वां अध्याय, गीता प्रेस गोरखपुर, पृष्ट- 747
5. ग्रीव्स, एडविन, काशी दि सिटी इलुसट्रीयश ऑर बनारस, दि इंडियन प्रेस, इलाहबाद,1909 पृष्ट- 1
6. वही,पृष्ट- 1
7. गिरी,कमल, तिवारी, मारुतिनंदन, सिंह, विजय प्रकाश, काशी के मंदिर और मूर्तियाँ, जिला सांस्कृतिक समिति, वाराणसी, 1997 पृष्ट- 04
8. मोतीचंद के काशी के इतिहास में वासुदेव शरण अग्रवाल की भूमिका, 1962, पृष्ट- 6
9. वही, पृष्ट-9
10. निरुपम, प्रियंका, इम्पोर्टेंस ऑफ घाट्स इन श्राद्ध रिचुअल्स इन बनारस रू ए हिस्टोरिकल व्यू, आईआरएसएमएस, वॉल्यूम-5, 2014
11. यादव सत्यपाल, 19वीं एवं 20वीं सदी में काशी के गंगा घाट सामाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में, 2016 पृष्ट-44
12. हरिशंकर, काशी के घाट, वाराणसी, 1996 पृष्ट 01
13. वही
14. वही
15. काशी के घाट और उनका सांस्कृतिक महत्त्व, सहायक निदेशक पर्यटन कार्यालय, वाराणसी, पृष्ट-26

16. हरिशंकर, काशी के घाट, वाराणसी, 1996 पृष्ट 02
17. www.varanasitemple.in काशीखण्ड में वर्णित वाराणसी के मंदिर.
18. सुकुल, कुबेरनाथ, वाराणसी डाउन द एजेस, कामेश्वर नाथ सुकुल, राजेंद्रनगर, पटना, 1974 पृष्ट- 155
19. सुकुल, कुबेरनाथ, वाराणसी डाउन द एजेस, कामेश्वर नाथ सुकुल, राजेंद्रनगर, पटना, 1974 पृष्ट- 155
20. सुकुल, कुबेरनाथ, वाराणसी डाउन द एजेस, कामेश्वर नाथ सुकुल, राजेंद्रनगर, पटना, 1974 पृष्ट- 08
21. काशी के घाट और उनका सांस्कृतिक महत्त्व, सहायक निदेशक पर्यटन कार्यालय, वाराणसी, पृष्ट-27
22. शेरिंग, एम ए, द सेक्रेड सिटी ऑफ द हिन्दुस एनअकाउंट ऑफ बनारस, तृब्नेर एंड कंपनी, पटेर्नोस्टर रो,1868 लन्दन, पृष्ट-68
23. काशी के घाट और उनका सांस्कृतिक महत्त्व, सहायक निदेशक पर्यटन कार्यालय, वाराणसी, पृष्ट-27-28
24. मोतीचंद, काशी का इतिहास, हिंदी ग्रन्थ रत्नाकर प्रा लि हीराबाग, बम्बई, 1962 पृष्ट-393
25. ग्रीव्स, एडविन, काशी दि सिटी इलुसट्रीयश ऑर बनारस, दि इंडियन प्रेस, इलाहबाद,1909 पृष्ट- 49
26. काशी के घाट और उनका सांस्कृतिक महत्त्व, सहायक निदेशक पर्यटन कार्यालय, वाराणसी, पृष्ट-28
27. मोतीचंद, काशी का इतिहास, हिंदी ग्रन्थ रत्नाकर प्रा लि हीराबाग, बम्बई, 1962 पृष्ट-392
28. ग्रीव्स, एडविन, काशी दि सिटी इलुसट्रीयश ऑर बनारस, दि इंडियन प्रेस, इलाहबाद,1909 पृष्ट- 43
29. ग्रीव्स, एडविन, काशी दि सिटी इलुसट्रीयश ऑर बनारस, दि इंडियन प्रेस, इलाहबाद,1909 पृष्ट- 43
30. ग्रीव्स, एडविन, काशी दि सिटी इलुसट्रीयश ऑर बनारस, दि इंडियन प्रेस, इलाहबाद,1909

महात्मा गाँधी का बनारस से सम्बन्धः एक ऐतिहासिक अध्ययन

मो० शादान उस्मानी*

सारांश

महात्मा गाँधी, भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के प्रमुख नेता होने के साथ-साथ देश की सामाजिक-राजनीतिक एकता के प्रमुख हिमायती व्यक्तिय भी थे। देश के अन्य प्रमुख स्थानों की तरह गाँधी जी का बनारस के साथ भी हमें गहरा सम्बन्ध दिखाई देता है। बनारस एक ऐतिहासिक और सांस्कृतिक केन्द्र के रूप में गाँधी जी के दार्शनिक विकास और सामाजिक सक्रियता के लिए एक पृष्ठभूमि प्रदान करता है। 1910 के दशक में उनकी शुरूआती यात्राओं, विशेष रूप से स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान भारतीय समाज की विविध चुनौतियों के बारे में उनकी समझ को और अधिक मजबूती प्रदान की। स्थानीय नेताओं के साथ उनकी बातचीत और सामाजिक सुधारों के लिए, उनके प्रयास जैसी प्रमुख घटनाओं ने राष्ट्रवादी भावनाओं को बढ़ावा देने में शहर की भूमिका को रेखांकित किया। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना ने युवाओं के साथ गाँधी जी के जुड़ाव को और सुगम बनाया, जिससे एक शिक्षित, एकीकृत भारत के उनके दृष्टिकोण को बल मिला। अभिलेखीय शोध और गाँधी जी के लेखन के विश्लेषण के माध्मय से यह शोध पत्र गाँधी जी की बनारस यात्राओं, उनके भाषाणों और शहर के सांस्कृकि महत्व का अध्ययन करता है। जिससे की यह समझा जा सके कि कैसे बनारस ने उनकी विचारधारा और सक्रियता को प्रभावित किया साथ ही गाँधी जी का बनारस के साथ सम्बन्ध, भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में इनकी भूमिका, अस्पृश्यता और गरीबी जैसे मुद्दों पर उनके विचारों का विश्लेषण करने का प्रयास करता है।

मूल शब्द - गाँधी, बनारस, स्वतंत्रता आन्दोलन, अहिंसा, साम्प्रदायिक सद्भाव, अस्पृश्यता, गरीबी।

बनारस, जिसे विश्व के सबसे पुराने बसे हुए शहरों में से एक माना जाता है। भारत की सांस्कृतिक और आध्यात्मिक धरोहर का एक प्रतीक है। गांधी जी के लिए यह एक पवित्र स्थान के साथ-साथ राजनीतिक एकीकरण और सामाजिक सुधार का मंच भी था। यह शहर इतिहास, धर्म और संस्कृति का एक संगम है। जिसे हिंदुओं के तीर्थ स्थल, विद्वानों के केंद्र और कई बौद्धिक आंदोलन की अभिव्यक्ति के साथ-साथ सामाजिक सद्भाव का भी केंद्र माना जाता है। बनारस जो की प्राचीन समय से ही धार्मिक परंपराओं से जुड़ा रहा है, ने गांधी जी के धर्म और समाज के बारे में विचारों पर गहरा प्रभाव डाला। गांधीजी और बनारस के संबंधों का सबसे महत्वपूर्ण पहलू शहर को आध्यात्मिक और नैतिक पुनर्जागरण के केंद्र के रूप में देखने का उनका प्रयास था। बनारस की आध्यात्मिक परंपराओं विशेष रूप से तपस्या त्याग और ध्यान ने गांधीजी को काफी प्रभावित किया साथ ही धर्म और सार्वजनिक जीवन के बीच संबंध को दर्शाया, जिसे गांधी जी ने बाद में अपनी स्वयं की विचारधारा में शामिल किया। देश के अन्य प्रमुख शहरों की तरह गांधीजी ने बनारस की भी अनेक यात्राएं की 22 फरवरी 1902 ई को कोलकाता से राजकोट जाते समय एक दिन के लिए बनारस में रुके अपनी इस यात्रा के बारे में गांधी जी ने लिखा काशी स्टेशन पर मैं सवेरे उतरा मुझे किसी पंडित के यहां रहना था कई ब्राह्मणों ने मुझे घेर लिया उनमें से जो मुझे थोड़ा सज्जन लगा उसका घर मैने पसंद किया मेरा चुनाव अच्छा सिद्ध हुआ। ब्राह्मण के आंगन में एक गाय बंधी थी ऊपर एक कमरा था उसमें मुझे ठहराया गया। मैं विधि पूर्वक गंगा स्नान करना चाहता था तब तक मुझे उपवास रखना था। पंडे ने सब तैयारी की मैंने उससे कह रखा था कि मैं सवा रुपए से अधिक दक्षिण नहीं दे सकूंगा। इसीलिए उसी के लायक वह तैयारी करे। पंडे ने बिना झगड़ा के मेरी विनती स्वीकार कर ली जब मैं काशी विश्वनाथ के दर्शन करने गया वहां जो कुछ देखा उसका मुझे दुख हुआ सन 1891 ईस्वी में जब मैं मुंबई में वकालत करता था

* शोध छात्र, इतिहास विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी,-221005, (उ०प्र०)
मोबाइल- 9559259240, Email- shadan07mohd@gmail.com

तब एक प्रार्थना समाज के मंदिर में काशी यात्रा विषय पर व्याख्यान सुना था। अतः अभी थोड़ी निराशा के लिए मैं पहले से ही तैयार था। पर वास्तव में जो निराशा हुई वह अपेक्षा से अधिक थी संकरी फिसलन वाली गली से होकर जाना था। शांति का नाम भी नहीं था। मक्खियों की भिन-भिनाहट यात्रियों और दुकानदारों का कोलाहल मुझे असहाय प्रतीत हुआ जहां मनुष्य ज्ञान और भगवान चिंतन की आशा करता है, वहां उसे इनमें से कुछ भी नहीं मिलता। यदि ध्यान की जरूरत हो तो उसे अपने अंतर में ही पाना होगा। अवश्य ही मैंने ऐसी श्रद्धालु बहनों को भी देखा है, जिन्हें इस बात का बिल्कुल पता नहीं था कि उनके आसपास क्या हो रहा है। वे केवल अपने ध्यान में निमग्न थी। पर इसे प्रबंधकों का पुरुषार्थ नहीं माना जा सकता। काशी विश्वनाथ के आसपास शांत, निर्मल, सुगंधित और स्वच्छ वातावरण उत्पन्न करना और उसे बनाए रखना प्रबंधकों का कर्तव्य है।इसके बदले वहां मैंने ठग दुकानदारों का बाजार देखा। नए-नए ढंग के खिलौना और मिठाइयां बिकती दिखाई दी। मंदिर में पहुंचने पर दरवाजे के सामने बदबूदार सड़े हुए फूल मिले, अंदर बढ़िया संगमरमर का फर्ष था पर किसी अंध श्रद्धालु ने उसे रूपयों से जड़वाकर खराब कर डाला था। रूपयों में मैल भर गया था। मैं ज्ञानवापी के समीप गया वहां मैंने ईश्वर को खोजा पर वहां ना मिला। इससे मैं मन ही मन क्षुब्ध हो रहा था। ज्ञानवापी के आसपास भी गंदगी देखी किसी को भगवान की दया के विषय में शंका हो तो उसे ऐसा तीर्थ क्षेत्र देखना चाहिए वह महायोगी अपने नाम पर कितना ढोंग, अधर्म, पाखंड इत्यादि सहन करता है। यह अनुभव लेकर में मिसेज बेसेंट के दर्शन करने गया मैं जानता था कि वह हाल ही में बीमारी से उठी है। मैंने अपना नाम भेजा। वे तुरंत आई मुझे तो दर्शन ही करने थे। मैंने कहा मुझे आपके दुर्बल स्वास्थ्य का पता है मैं तो सिर्फ आपके दर्शन करने आया हूं। दुर्बल स्वास्थ्य के रहते हुए भी आपने मुझे मिलने की अनुमति दी इसी से मुझे संतोष है मैं आपका अधिक समय नहीं लेना चाहता यह कहकर मैंने विदा ली इस तरह से गांधी जी की प्रथम बनारस यात्रा पूर्ण हुई।[1] अपने इस यात्रा अनुभव में गांधी जी ने बनारस में फैली के गंदगी पर काफी निराशा व्यक्त की विशेष रूप से काशी विश्वनाथ के आसपास जो उन्होंने देखा इसका उन्हें काफी दुख हुआ साथ ही धर्म के नाम पर हो ढोंग और पाखंड की निंदा की।

महामना पंडित मदन मोहन मालवीय आमंत्रण पर 4 फरवरी 1916 को गांधी जी दूसरी बार बनारस आए। हरिभाऊ उपाध्याय ने इस यात्रा के बारे में लिखा है उस दिन काशी में एक एकाएक गांधी जी का तेजस्वी रूप प्रकट हुआ उनकी खरी, सीधी वाणी मानो गुलाम भारत को आजादी का मार्ग बताने आई हो काशी हिंदू विश्वविद्यालय के स्थापना दिवस पर गांधी जी ने अपना भाषण कुछ इस तरह से शुरू किया कांग्रेस ने स्वराज के बारे में एक प्रस्ताव पास किया है। यूं तो मुझे विश्वास है कि कांग्रेस व मुस्लिम लीग अपने-अपने कर्तव्य का पालन करेंगे। कुछ ना कुछ ठोस सुझाव काम आएंगे किंतु जहां तक मेरा सवाल है मैं स्पष्ट रूप से बात स्वीकार करना चाहता हूं कि मुझे इस बात में इतनी दिलचस्पी नहीं है, कि वे लोग क्या कर पाते हैं, जितनी इस बात में है कि विद्यार्थी जगत क्या करता है या जनता क्या करती है?कोई भी कागजी कार्रवाई हमें स्वराज नहीं दे सकती। धुआंधार भाषण हमें स्वराज के योग्य नहीं बना सकते। हमारा अपना आचरण ही हमें स्वराज के योग्य बनाएगा। सवाल यह है कि हम अपने पर किस तरह राज करना चाहते हैं मैं आज भाषण नहीं करना चाहता हूं कल शाम को मैं विश्वनाथ जी के दर्शन के लिए गया था। उन गलियों में चलते हुए मेरे मन में ख्याल आया कि यदि कोई अजनबी एकाएक ऊपर से इस मंदिर पर उतर पड़े और उसे यदि हम हिंदुओं के बारे में विचार करना पड़े तो क्या हमारे बारे में कोई छोटी राय बना लेना उसके लिए स्वाभाविक न होगा? क्या यह महान मंदिर हमारे अपने आचरण की ओर उंगली नहीं उठाता? मैं यह बात एक हिंदू की तरह बड़े दर्द के साथ कह रहा हूं अगर हमारे मंदिर सादगी और सफाई के नमूने ना हो तो हमारा स्वराज कैसा होगा?[2] यहां पर गांधी जी ने बनारस और काशी विश्वनाथ के आसपास फैली गंदगी पर अफसोस जाहिर किया और सवाल उठाया कि जब हम अपने महान स्थानों पर ध्यान नहीं दें पा रहे हैं तो हम स्वराज के लिए कैसे संघर्ष करेंगे। गांधी जी आगे बोलते हैं अब मैं आपको दूसरी जगह ले चलता हूं जिन महाराज महोदय ने (दरभंगा के महाराजा सर रामेश्वर सिंह जी) कल की हमारी बैठक की अध्यक्षता की थी उन्होंने भारत की गरीबी की

यहां चर्चा की। दूसरे वक्ताओं ने भी इस बात पर बड़ा जोर दिया। किंतु जिस शामियाने में वायसराय द्वारा शिलान्यास हो रहा है। वहां हमने क्या देखा? एक ऐसा शानदार प्रदर्शन, जड़ाऊ गहनों की ऐसी प्रदर्शनी जिसे देखकर पेरिस से आने वाले किसी जौहरी की आंख भी चैंधियां जाती। जब मैं गहनों से लदे हुए उन अमीर उमरावों को भारत के लाखों आदमियों से मिलान करता हूं तो मुझे लगता है कि मैं अमीरों से कहूं, जब तक आप अपने यह जेवर नहीं उतार देते और इन्हें गरीबों की धरोहर मानकर नहीं चलते तब तक भारत का कल्याण नहीं हो सकता मुझे यकीन है कि सम्राट अथवा लॉर्ड हार्डिंग सम्राट के प्रति वास्तविक राजभक्ति दिखाने के लिए किसी का गहनों के संदूक को उलटकर सिर से पांव तक सजकर आना जरूरी नहीं समझेंगे। अगर आप चाहे तो मैं जान की बाजी लगाकर महाराज जॉर्ज पंचम का संदेश आपको लाकर दे दूं कि वह यह नहीं चाहते। जब कभी भी सुनता हूं कि कहीं, फिर वह ब्रिटिश भारत में हो चाहे हमारे बड़े-बड़े राजाओं नवाबों द्वारा शासित राज्यों में कोई बड़ा भवन उठाया जा रहा है तो मेरा मन दुखी हो जाता है और मैं सोचने लगता हूं कि यह पैसा तो किसानों के पास से इकट्ठा किया गया पैसा है। गांधीजी आगे बोलते हैं कि मैं उस बात का थोड़ा सा विवेचन करना अपना कर्तव्य समझता हूं, जिसने आज दो-तीन दिनों से हमारे मनों को उलझा कर रखा है। श्रीमान वायसराय के यहां रास्तों से निकालने के समय हम सब लोग बड़ी ही चिंता में थे। स्थान स्थान पर खुफिया पुलिस के लोग नियत थे। हम दंग रह गए, हमारे मन में बार बार यह प्रश्न उठता था कि हम लोगों के प्रति इतने अविश्वास का कारण क्या है? यदि किसी दिन हमें स्वराज मिलेगा तो वह अपने ही पुरुषार्थ से मिलेगा। वह दान के रूप में कभी नहीं मिलने वाला। ब्रिटिश साम्राज्य के इतिहास पर दृष्टिपात कीजिए ब्रिटिश साम्राज्य चाहे कितना भी स्वतंत्रता प्रेमी हो, फिर भी स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए स्वयं उद्योग न करने वालों को वह कभी स्वतंत्रता देने वाला नहीं है।[3]

गांधी जी के इस भाषण के संदर्भ में हरिभाऊ उपाध्याय ने लिखा है भारत के इतिहास में लोगों ने एक वायसराय के प्रति उस समय तक एक भारतवासी के मुंह से ऐसे शब्द पहली बार सुने होंगे ऐसी निर्भय वाणी उस समय तक स्वप्न में भी कहीं नहीं सुनी जाती थी। अपने इस भाषण में गांधीजी ने भाषा संबंधी प्रश्न पर बात की साथ ही देश में व्याप्त गरीबी की तरफ लोगों का ध्यान आकर्षित करवाया तथा ब्रिटिश सरकार की जासूसी तथा भारतीयों को लेकर उनकी नियत पर भी सवाल खड़े किए इस मंच के माध्यम से गांधी जी ने यह संदेश भी दिया की स्वतंत्रता स्वता नहीं मिलने वाली जब तक हम सब स्वयं मिलकर इसके लिए प्रयास नहीं करते।

बनारस में गांधी जी की तीसरी यात्रा राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय उथल-पुथल के दौर में हुई। इसी संबंध में कांग्रेस के और खिलाफत के नेताओं की देश के कई स्थानों पर बैठक हुई 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के बाद 1920 में हिंदुओं और मुसलमान के मध्य दूसरी बार घनिष्ठता उत्पन्न हुई, बेचैनी के इस माहौल में कार्रवाई करने के लिए गांधीजी कांग्रेस और खिलाफत वालों की तरफ से अधिकृत हुए और कहा खिलाफत के प्रश्न को मैं सर्वोपरि स्थान देता हूं। असहयोग का शस्त्र भी, उसे हम जिस रूप में भी जानते हैं, खिलाफत के प्रश्न पर विचार करते-करते ही हाथ लगा है और जब तक हिंदू मुसलमान एक नहीं होते तब तक स्वराज एक अर्थहीन आदर्श है।[4]

अपनी इस यात्रा के दौरान गांधीजी 20 फरवरी 1920 को बनारस के टाउन हॉल के मैदान में उपस्थित हुए। हकीम मोहम्मद हुसैन खान की अध्यक्षता में सार्वजनिक सभा आयोजित हुई सभा में मदन मोहन मालवीय, मोतीलाल नेहरू, मौलाना शौकत अली एवं अबुल कलाम आजाद जैसे शीर्ष नेता उपस्थित थे। लाउडस्पीकर का चलन नहीं हुआ था। गांधी जी की आवाज पतली थी सभा में बड़ी भीड़ थी गांधी जी की वाणी को सभा के सदस्यों तक पहुंचाने का कार्य बाबू शिव प्रसाद गुप्ता जी ने किया।[5] काशी के टाउन हॉल के मैदान में गांधी जी ने कहा खिलाफत के प्रश्न तथा हिंदू मुस्लिम एकता पर अपने विचार प्रकट करते हुए इस बात पर जोर दिया कि ये दोनों जातियां अपने-अपने धर्म के आदेशों का पालन करते हुए भी एक दूसरे के प्रति शुद्ध और सच्चा प्रेम भाव रख सकती हैं। गांधीजी ने हिंदुओं से जोरदार शब्दों में अपील की कि वे खिलाफत के आंदोलन में जिसका उद्देश्य बड़ा पवित्र है ,मुसलमान की मदद करें।[6] खिलाफत के प्रश्न पर टाउनहॉल की सार्वजनिक सभा सफल रही गांधीजी ने इस सभा में

हिंदू और मुसलमानों के बीच हार्दिक एकता कायम करने के लिए सर्वाधिक जोर दिया और भारत की आजादी हासिल करने के लिए तथा आर्थिक विकास के लिए एकता को अनिवार्य व अपरिहार्य बताया।

30 मई 1920 को कांग्रेस महासमिति की बैठक वाराणसी में हुई, जिसमें गांधीजी ने भी भाग लिया यह उनकी चैथी यात्रा थी। इस बैठक में पंजाब की समस्या और खिलाफत के प्रश्न पर विचार किया गया। नवंबर 1920 में गांधीजी बनारस में पांचवी बार आए यहां उन्होंने त्रिविध बहिष्कार का नारा लगाया अर्थात स्कूल, कॉलेज व विश्वविद्यालय की शिक्षा के बहिष्कार की बयार ने आंधी का रूप धारण किया। कांग्रेस की बैठक सेंट्रल हिंदू स्कूल कमच्छा पर संपन्न हुई, बैठक में मौलाना शौकत अली, मौलाना मोहम्मद अली, मोतीलाल नेहरू, स्वामी सत्यदेव और जवाहरलाल नेहरू आदि नेता उपस्थित थे। [7]

गांधीजी फरवरी 1921 में छठवीं बार शिव प्रसाद गुप्त के आमंत्रण पर बनारस आए बसंत पंचमी के दिन 10 फरवरी 1921 को महात्मा गांधीजी ने काशी विद्यापीठ की आधारशिला रखी। सभा में पवित्र वेद मंत्रों तथा कुरआन की आयतों के उच्चारण के साथ काशी विद्यापीठ का शुभारंभ हुआ। 17 अक्टूबर 1925 को गांधीजी सातवीं बार सिर्फ कुछ घंटों के लिए बनारस रुके। जिसमें उन्होंने काशी विद्यापीठ में चरखे पर अपना व्याख्यान दिया और इसकी महत्ता को रेखांकित किया।[8]

गांधीजी से प्रभावित होकर आचार्य कृपलानी ने काशी हिंदू विश्वविद्यालय से मुक्त होकर काशी में गांधी आश्रम की स्थापना 1920 में की। उनके साथ लगभग 50 छात्रों ने विश्वविद्यालय का त्याग किया था। प्रारंभ में गांधी आश्रम की स्थापना ईश्वरगंगी मोहल्ले में हुई। मकान किराए पर लिया गया था काशी विद्यापीठ की स्थापना के पश्चात गांधी आश्रम को काशी विद्यापीठ के परिसर में स्थान प्राप्त हो गया। 7 जनवरी 1927 को गांधी आश्रम का वार्षिकोत्सव था। इस उत्सव के आयोजन में गांधी जी काशी आए थे। यहां पर उन्होंने खादी और उससे बनी वस्तुओं की चर्चा की। और कहा खादी सादगी का प्रतीक है ना कि किसी प्रकार के भद्देपन का साथ ही विधवाओं की गृहस्थी के लिए एक आशा का केंद्र भी है।[9]

काशी विद्यापीठ के समावर्तन संस्कार में दीक्षांत भाषण देने हेतु 25 सितंबर 1928 को गांधीजी का नवीं बार काशी आगमन हुआ। अपने भाषण में गांधीजी ने राष्ट्रीय संस्थानों के महत्व पर प्रकाश डाला।[10]

हरिजन प्रवास के सिलसिले में महात्मा गांधीजी ने बनारस की दसवीं यात्रा की। वर्ष 1934 में महात्मा गांधी जी का प्रवास काशी विद्यापीठ में 26 जुलाई से 3 अगस्त तक था। हरिजन सेवक संघ के तत्कालीन महामंत्री वियोगी हरि गांधी जी के साथ थे। 28, 29 जुलाई 1934 को काशी विद्यापीठ में हरिजन सेवक संघ के केंद्रीय बोर्ड की बैठक हुई थी 29 जुलाई को गांधीजी ने सदस्यों को संबोधित करते हुए कहा मैं हिंदू पवित्रवाद पर आक्रमण कर रहा हूं क्योंकि हिंदुओं का यह ख्याल है कि मानव जाति के एक वर्ग को छूना इसलिए पाप है कि वह किसी विशेष वातावरण में पैदा हुआ है, इसलिए मैं एक हिंदू होने के नाते यह सिद्ध करने में लगा हूं कि यह पाप नहीं है। और इन लोगों को छूने को पाप समझना ही पाप है। यदि सचमुच अस्पृश्यता हिंदू धर्म का अंग हो तो मैं हिंदू धर्म में बना नहीं रह सकता। साम्राज्य की डायर शाही को शैतानियत कहता हूं। अस्पृश्यता को भी मैं उतनी ही भयंकर शैतानियत मानता हूं।[11]

बाबू शिव प्रसाद गुप्त के अनुरोध पर गांधीजी 25 अक्टूबर 1936 को एक बार फिर बनारस में पधारे। गुप्त जी का अनुरोध भारत माता मंदिर के उद्घाटन के संबंध में था। इस मंदिर के उद्घाटन के माध्यम से गांधी जी ने एक संदेश दिया जो इस प्रकार है इस मन्दिर में किसी देवी-देवता की मूर्ति नहीं है। यहां संगमरमर पर उभारा हुआ भारत का एक मानचित्र-भर है। मुझे आशा है कि यह मन्दिर सभी धर्मों, हरिजनों समेत, सभी जातियों और विश्वासों के लोगों के लिए एक सार्वदेशिक मंच का रूप ग्रहण कर लेगा और इस देश में पारस्परिक धार्मिक एकता, शान्ति तथा प्रेम की भावनाओं को बढ़ाने में बड़ा योग देगा।[12]

महात्मा गांधी ने काशी हिंदू विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति डॉक्टर सर्वपल्ली राधाकृष्णन के आमंत्रण पर बनारस की बारहवीं यात्रा संपन्न की इस बार वह विश्वविद्यालय के रजत जयंती समारोह में भाग लेने के लिए आए। और मालवीय जी की देशभक्ति और शिक्षा प्रेम की तारीफ की और साथ में यह भी कहा कि हमें उनसे सीखना चाहिए।[13]

निष्कर्ष - गांधी और बनारस का संबंध बहुआयामी था। जिसमें राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, और शैक्षिक आयाम शामिल थे। विशेष रूप से गांधीजी ने बनारस यात्राओं के माध्यम से स्वराज प्राप्ति के लिए संघर्ष, अपने शहर व धार्मिक स्थलों के आसपास साफ सफाई, धर्म के नाम पर हो रहे पाखंड व ढोंग, देश में व्याप्त गरीबी और असमानता, किसानों की दुर्दशा, ब्रिटिश सरकार की नीतियां और देश के लोगों के प्रति उनकी नीयत, हिंदुओं व मुसलमान के बीच एकता कायम करने व देश की आजादी के लिए मिलकर संघर्ष करने तथा जातिगत भेदभाव दूर करने इत्यादि प्रमुख मुद्दों पर गांधीजी के विचार और उन्हें कैसे हल किया जाए आदि बातों की चर्चा की गई है। साथ ही इस शोध पत्र के माध्यम से हम गांधीजी की देश और समाज को लेकर उनकी चिंता और औपनिवेशिक ताकत के सामने कैसे बिना डरे हुए उसके खिलाफ संघर्ष करना और आजादी के लिए निरंतर प्रयास करने का एक उदाहरण पेश करते हैं।

सन्दर्भ सूची

1. गांधी, महात्मा, (2020), सत्य के प्रयोग, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ०. 160 -162
2. देसाई, जी०, (संपा०), (1965), संपूर्ण गांधी वांग्मय, (खंड 13 जनवरी 1915-अक्टूबर 1917), नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, भारत, पृ०. 214 - 218
3. देसाई, जी०, (संपा०), (1965), संपूर्ण गांधी वांग्मय, (खंड 13 जनवरी 1915-अक्टूबर 1917), नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, भारत, पृ०. 215 - 218
4. केजरीवाल, ओ० पी०, (संपा०), (2010), काशी नगरी एक रूप अनेक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, पृ०. 147
5. वही, पृ०.147
6. देसाई, जी०, (संपा०), (1965), संपूर्ण गांधी वांग्मय, (खंड 17 फरवरी - जून 1920), नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, भारत, पृ०. 47
7. केजरीवाल, ओ० पी०, (संपा०), (2010), काशी नगरी एक रूप अनेक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, पृ०. 148
8. हरजीवन शाह, शांतिलाल, (संपा०), (1967), संपूर्ण गांधी वांग्मय, (खंड 28 अगस्त-नवंबर 1925), नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, भारत, पृ०.356
9. केजरीवाल, ओ० पी०, (संपा०), (2010), काशी नगरी एक रूप अनेक, प्रशासन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, पृ०.148-149
10. वही, पृ०.149
11. वही, पृ०.149
12. हरजीवन शाह, शांतिलाल, (संपा०), (1967), संपूर्ण गांधी वांग्मय, (खंड 63 1 जून-2 नवंबर 1936), नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, भारत, पृ०.420
13. केजरीवाल, ओ०पी०, (संपा०),(2010), काशी नगरी एक रूप अनेक, प्रशासन विभाग, सूचना प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पृ०.150

काशी की शिक्षा–परंपरा और सामाजिक समन्वय

शिवम पाण्डेय*

सारांश

काशी की शिक्षा-परंपरा प्राचीन और निरंतर विकसित होती रही है, जिसने सदियों से ज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। यह परंपरा न केवल धार्मिक और दार्शनिक ज्ञान का प्रचार करती रही है, बल्कि सामाजिक समन्वय और समरसता को भी बढ़ावा देती रही है। गुरूकुल, मठ, मंदिर और परिषदों के माध्यम से काशी ने अपनी शैक्षिक धारा को बनाए रखा है। यहां की शिक्षा ने समाज के विभिन्न वर्गों को जोड़ते हुए सांस्कृतिक और बौद्धिक उन्नति को संभव बनाया। काशी की शिक्षा प्रणाली ने ज्ञान को एक साझा धरोहर के रूप में संरक्षित किया, जो आज भी समाज के हर स्तर पर प्रभावी है।

मुख्य शब्द: काशी, शिक्षा-परंपरा, ज्ञान, गुरूकुल, सामाजिक समन्वय, सांस्कृतिक धरोहर|

काशी की शिक्षा-प्रणाली भी काशी की सभ्यता के समान प्राचीन एवं सतत् है। इतिहास के कई कालखंडों में कठिनाई एवं उतार-चढ़ाव को देखते हुए भी काशी ने अपने शिक्षा-केंद्र के रूप में प्रसिद्धि नहीं खोई। यह स्पष्ट है कि इतिहास में इस्लामिक आक्रमण और राज्यों के पतन से जो शिक्षण संस्थान नष्ट हुए, वे पुनर्जीवित न हो पाये परंतु काशी प्राचीन से मध्यकालीन युग तक बिना किसी औपचारिक और नियमित शिक्षा-प्रणाली के जिसका स्वरूप नालंदा और तक्षशिला के समान विकसित हो, उसके बिना भी शिक्षा केंद्र के रूप में कार्य करती रही। विदित है कि जब विश्वविद्यालयों का ध्वंस रहा था, तब अधिकांश विद्वानों और स्नातकों ने काशी में शरण लिया। अपनी ज्ञान-परंपरा को यहां जीवित रखा। विविध विषयों के केंद्रों के पतन के होने के बाद भी काशी में उन सभी विषयों का अध्ययन-अध्यापन किया जाता रहा। इसलिए काशी को सर्वविधा की राजधानी के रुप में ख्याति प्राप्त हुई। काशी की शिक्षण-पाठ्यक्रम में वेद, उपनिषद्, धर्मशास्त्र, ज्योतिष, खगोल, भाषा, आर्युवेद, संगीत, मूर्तिकला, संबंधी अनेक विषय को सम्मिलित किया गया है। यहाँ की शिक्षा-परंपरा के संचालन में मंदिर, मठों, गुरूकुल और परिषदों का सर्वदा से विशेष योगदान रहा है। इसका संचालन और संपोषण राजाओं, भूस्वामियों, तीर्थयात्रियों और आमलोगों द्वारा किये गये दान से अधिकांश शिक्षण-संस्थानों का संचालन होता था।

काशी की शिक्षण-परंपरा पर प्रकाश डाले तो पायेंगे कि काशी में शिक्षा-परंपरा की शुरूआत के साक्ष्य महाजनपद काल से देखने को मिलते हैं। इसके पूर्व प्रारंभिक वैदिक रचनाओं में काशी का शिक्षण-केंद्र के रूप में उल्लेख नहीं है। छठी शताब्दी ई0 पू0 के बौद्ध और जैन साहित्य के अनुसार काशी बौद्ध और जैन शिक्षा का केंद्र था। महात्मा बुद्ध द्वारा अपने शिष्यों को सारनाथ में दिये गए प्रथम उपदेश से बौद्ध-मत प्रसार की औपचारिक शुरूआत हुई। 12वीं शताब्दी तक सारनाथ बौद्ध धर्म की शिक्षा का एक प्रमुख केंद्र रहा। इसे मौर्य शासक अशोक, कुषाण शासक और गुप्त शासको द्वारा प्रश्रय दिया जाता रहा। इसका उल्लेख कुषाण शासक कनिष्क के सारनाथ लेख से होता है। दो बौद्ध भिक्षु बल तथा पुण्यबुद्धि का उल्लेख मिलता है। हर्षवर्द्धन के काल में ह्वेनसांग ने धमेख, चैखंडी, धर्मराजिका और मृग-विहार वन का उल्लेख है। गहड़वाल शासक गोविंदंद्र की पत्नी कुमारदेवी बौद्ध धर्म की अनुयायी थी। कुमारदेवी के सारनाथ अभिलेख के अनुसार उसने सारनाथ में धर्मचक्र जिनविहार का निर्माण कराया।

काशी में वैदिक परंपरा का आगमन सूत्रकाल और महाभारत काल में हुआ। इसी काल में एक बार वैदिक शिक्षा का महत्वपूर्ण केंद्र स्थापना होने के बाद वर्तमान तक अपनी प्रासंगिकता बनाई रखी। वैदिक परंपरा को आत्मसात् करते हुए यहाँ के मनीषियों ने इसे शिक्षा के रूप में गुरूकुल, मठों, मंदिरों और परिषदों द्वारा आगामी पीढ़ियों की हस्तांतरित करते हुए वर्तमान में भी चलायमान रखा है।

*** शोधार्थी,प्राचीन भारतीय इतिहास,संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग ,काशी हिन्दू विश्वविद्यालय|**

काशी में औपचारिक शिक्षा की शुरूआत करने का श्रेय तक्षशिला के स्नातकों को जाता है। महाजनपद युग में शिक्षा का सबसे बड़ा केन्द्र तक्षशिला था जहाँ देश के कोने-कोने से लोग शिक्षा-ग्रहण के लिए जाते थे।[1] तक्षशिला के साथ शिक्षा के लिए बनारस ही प्रसिद्ध था।[2] माना जाता है बनारस को शिक्षा का केंद्र बनाने का श्रेय तक्षशिला के उन स्नातकों को था जिन्होंने बनारस लौटकर शिक्षण का कार्य प्रारंभ किया। खुद्दकपाठ में कहा गया है कि बनारस की कुछ संस्थाएँ तो तक्षशिला की शिक्षा-संस्थानों से भी पुरानी थी।[3] बनारस वासियों में शिक्षा के प्रति इतना अनुराग था कि भोजन देकर वे गरीब बालकों को शिक्षा दिलवाते थे।[4] आज के दिन भी बनारस में विद्यार्थियों के लिए अनेक अन्न-सत्र है और विद्यार्थियों की हर तरह से मदद करना काशीवासी अपना धर्म मानते है।[5]

गुप्त युग में काशी शिक्षा का एक बहुत बड़ा केंद्र था। यहाँ मौर्य युग से गुप्त युग के बीच में शिक्षा की क्या व्यवस्था थी इसका हमें बहुत कम पता चलता है। राजघाट से कुछ मुद्राएँ मिली है जिनके आधार पर हम गुप्त युग की बनारस की शिक्षा व्यवस्था पर प्रकाश डाल सकते है।[6] चातुर्विध वाली गुप्तकालीन मुद्रा से यह पता चलता है कि उस काल में चारों वेद पढ़ाने की कोई पाठशाला थी।[7] बहवृच्चरण के लेख वाली दो मुद्राएँ मिली है जिनसे गुप्त युग में ऋग्वेद के अध्यापन के लिए पाठशाला थी। इन मुद्राओं पर पाठशाला का चित्रण दिया गया है।

''मुद्रा पर अंकन-एक आश्रम में जटाजूटघाटी अध्यापक और दोनों तरफ एक एक दंडधारी खड़े शिष्य दिखलाया है। अध्यापक के बाएँ हाथ में करवा है जिससे बायीं और एक वृक्ष पर पानी डाल रहा है। आश्रम दोनों घने पेड़ों के बीच है।''

गाहड़वाल लेखों में पाठशाला या विद्यार्थियों का कही उल्लेख नहीं आया हैं। परंतु बनारस के उपाध्याय न केवल छात्रों को पढ़ाते थे, उन्हें उनके रहने और खाने का भी प्रबंन करना पड़ता था और यह तभी संभव था जब उनके पास आर्थिक सबल है। अलाबरूनी ने भी 11वीं सदी में काशी और कश्मीर को संस्कृत ज्ञान, विज्ञान और शिक्षा के केंद्र बताया है।

मध्यकालीन युग में हुए भक्ति आंदोलन ने काशी समाज पर गहरी छाप छोड़ी। इसका सूत्रपात पूर्वमध्यकाल में ही दक्षिण भारत में अलवार और नयनार के रूप में हो चुकी थी। इसका उद्देश्य भक्ति द्वारा मोक्ष की प्राप्ति और सामाजिक ऊँच-नीच और जटिलताओं को समाप्त करना था। इसी काल में शंकराचार्य ने काशी में अपने मत का प्रचार-प्रसार किया। यहाँ की मंदिर, गुरूकुल और अखाड़ों की परंपराओं की पुनरूद्धार किया। भक्ति आंदोलन की प्रमुख विभूतियों का कार्यक्षेत्र काशी रहा। इनमें शंकराचार्य, रामानंद, वल्लभाचार्य, तुलसीदास, कबीर, रैदास, प्रमुख थे। कबीर और रैदास के दोहों ने काशी समाज के जनमानस पर गहरा प्रभाव छोड़ा। इनका मत की प्रकृति मूलतः स्थापित मतों की प्रतिक्रियावादी थी परंतु उसमें भी एक प्रकार की मानवादी शिक्षा थी। इन्होंने अपने मतों के प्रचार-प्रसार के लिए तत्कालीन स्थापित शिक्षा की भाषा संस्कृत और फारसी के स्थान पर सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग किया। यह यहां के आम जनों की भाषा थी। इसे भी यहाँ के समाज में पर्याप्त समर्थन प्राप्त हुआ।

मध्यकालीन युग में टेवर्नियर और बर्नियर दोनों ही बनारस के शिक्षाओं पर प्रकाश डाला है। बर्नियार के अनुसार पूरा नगर हिंदुओं का विद्यालय था।[8] भारत के उस एथेंस में केवल ब्राह्मण और पठन में अपना समय व्यतीत करते थे। काशी में उस समय कोई विद्यालय जैसी संस्था जहां क्रमबद्ध पढ़ाई होती थी, नहीं थी। गुरूगण शहर के विभिन्न भागों में

---

[1] काशी का इतिहास (द्वितीय संस्करण), पृ0 सं0.....43
[2] काशी का इतिहास (द्वितीय संस्करण), पृ0 सं0.....43
[3] काशी का इतिहास (द्वितीय संस्करण), पृ0 सं0.....43
[4] काशी का इतिहास (द्वितीय संस्करण), पृ0 सं0.....43
[5] काशी का इतिहास (द्वितीय संस्करण), पृ0 सं0.....43
[6] काशी का इतिहास (द्वितीय संस्करण), पृ0 सं0.....43
[7] काशी का इतिहास (द्वितीय संस्करण), पृ0 सं0.....43
[8] काशी का इतिहास (द्वितीय संस्करण), पृ0 सं0.....43

अपने घरों और रईसों की अनुमति से उनके बगीचे में रहते थे।[9] कुछ गुरूओं के पास चार शिष्य होते थे और कुछ के पास छः -सात प्रायः विद्यार्थी अपने गुरूओं के पास दस से पंद्रह वर्षों तक रहते थे और धीरे-धीरे विद्याभ्यास करते थे।

औपनिवेशिक काल में सर्वप्रथम राज्य द्वारा आधुनिक और संस्थागत शिक्षण-प्रणाली की शुरूआत हुई। जोनाथन डंकन ने अपने अधिकारियों के संस्कृत भाषा में प्रशिक्षण हेतु संस्कृत कालेज की स्थापना की। वर्तमान में यह संपूर्णानन्द विश्वविद्यालय के नाम से जाता है। 1791 में क्वींस कॉलेज की स्थापना हुई। औपनिवेशिक काल में भी काशी ने शिक्षा संबंधी मुद्दों को सिर्फ राज्य द्वारा संपोषण के भरोसे नहीं छोड़ा। इस काल में भी समाज द्वारा इस दिशा में प्रयास देखने को मिलते हैं। इसी प्रयास के फलस्वरूप नागरीप्रचारिणी सभा का जन्म हुआ। इसकी स्थापना 16 जुलाई 1893 को कॉलेज, वाराणसी के नवी कक्षा के तीन छात्रों-बाबू श्यामसुदर दास, पं रामनारायण मिश्र और शिवकुमार सिंह ने की थी। यह वह समय था जब अंग्रेजी, उर्दू और फारसी का बोलबाला था तथा हिंदी का प्रयोग करनेवाले बड़ी हेय दृष्टि से देखे जाते थे। किंतु तत्कालीन विद्वतामंडल जनमानस की सहानुभूति तथा सक्रिय सहयोग सभा को आरंभ से ही मिलने लगा था। अल्प समय में ही हिंदी अधिकांश जनमानस की प्राथमिक भाषा बन गई। 1898 ई0 में चिंतामणि मुखर्जी द्वारा यहाँ एंग्लो-बंगाली कॉलेज की स्थापना की गई थी। वर्तमान में मदनपुरा में पाण्डेय हवेली के समीप स्थित बंगाली टोला इंटरमीडिएट कॉलेज की स्थापना 1854 में केशव चंद्र मित्र द्वारा की गई थी। इसके वर्तमान स्थित भवन के निर्माण हेतु तत्कालीन समाज 6000 की राशि इकट्ठी की गई थी। 1814 में महाराजा जय नारायण धोबहल ने जय नारायण कॉलेज की स्थापना की।

असहयोग आंदोलन के दौरान काशी विद्यापीठ की स्थापना हुई। यह महात्मा गांधी के स्वराज के विचारों पर आधारित था। इसी काल में पंडित मदन मोहन मालवीय द्वारा काशी हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना की गई। मालवीय जी का यह मानना रहा होगा कि काशी हमेशा से विद्वतजनों की शरणस्थली रही है। यहाँ के समाज में शिक्षा के प्रति सदैव रूचि है। हालांकि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना में अखिल भारतीय स्तर पर लोगों ने भाग लिया परन्तु काशी के समाज में आमलोगों ने इसका स्वागत किया।

अंततः शिक्षा रूपी पूँजी का संपोषण काशी ने हमेशा किया है। शिक्षा के प्रति समाज के स्वतः स्फूर्त चेतना ने काशी की ज्ञान और शैक्षिक परंपरा का कभी क्षरण नहीं होने दिया। वर्तमान में भी यहाँ मठ, संस्था और गुरूकुल है जिनकी ऐतिहासिकता ज्ञात करना कठिन है परंतु वे सुचारू रूप से कार्य कर रहे हैं। ज्ञान की संस्कृति और शिक्षा-परंपरा यहाँ के समाज में प्राचीन काल से रची बसी रही है। काशी ने अपनी मौलिक शिक्षा को संरक्षित रखते हुए बदलते समय के साथ शिक्षा के विविध और नये आयामों को जोड़ा है।

संदर्भ सूची:-

1. मोतीचंद्र, डॉ0: काशी का इतिहास, वाराणसी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, द्वितीय संस्करण, 1985
2. अल्तेकर, ए0 एस0: एडुकेशन इन एंशियंट इंडिया, वाराणसी, पब्लिशर नंद किशोर एंड ब्रदर्स, छठा संस्करण, 1965
3. मुखर्जी, राधा कुमुद: एंशियंट इंडियन एडुकेशन, लंदन, 1947.
4. शुकुल, कुबेर नाथ: वाराणसी वैभव, पटना, शोभा प्रिंटिंग प्रेस, प्रथम संस्करण, 2000.
5. प्रकाश, ओम: प्राचीन भारत का सामाजिक और आर्थिक इतिहास, दिल्ली, विश्व प्रकाशन, पंचम संस्करण, 2001.
6. पैट्रिक, लॉरेंस. "Education in Ancient India." London, Cambridge University Press, 2002.
7. यादव, सुरेन्द्र. "काशी में भक्ति आंदोलन." इलाहाबाद, विद्यापीठ प्रकाशन, 1999.
8. गुप्ता, अरुण कुमार. "वाराणसी: प्राचीन और आधुनिक." दिल्ली, भारतीय संस्कृति पुस्तकालय, 2010.
9. सिंह, प्रमोद. "काशी में विद्वत परंपरा." वाराणसी, ज्ञान बोध प्रकाशन, 2003.
10. शर्मा, रामकृष्ण. "काशी: सांस्कृतिक और धार्मिक दृष्टि से." बनारस, साहित्य रत्न प्रकाशन, 2012.

◀◀ ▶▶

[9] काशी का इतिहास (द्वितीय संस्करण), पृ0 सं0.....43

प्राचीन भारत में काशी की शिक्षा प्रणाली का अध्ययन

डॉ० श्रीकान्त तिवारी*

शोध सार

हिन्दू, बौद्ध तथा जैन विचारधारा के ज्ञान केंद्र के रूप में स्थापित काशी प्राचीन भारत में अपनी विद्या केंद्र तीर्थ स्थली तथा जीविका के स्त्रोत के लिए प्रख्यात रही है। संस्कृत भाषा एवं साहित्य की रक्षा एवं प्रचार में काशी की महती भूमिका रही है। धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष जैसे चार पुरुषार्थों का अद्भुत समन्वय काशी में मिलता है। देव एवं मानव की तीर्थ स्थली के रूप में काशी का विशेष महत्व है। वस्तुतः समकालीन विद्वानों एवं दार्शनिकों के विचारों को अंतिम रूप से प्रमाणित करने का कार्य काशी के विद्वत समाज द्वारा ही किया जाता था । वेदों के अध्ययन एवं अध्यापन की दृष्टि से उपनिषद काल तक काशी आर्य सभ्यता एवं धर्म की केंद्र स्थली बन चुकी थी। भारतीय ज्ञान परंपरा में शास्त्रार्थ की परंपरा में काशी की उपलब्धियां विशिष्ट रही हैं। प्रस्तुत शोध आलेख में काशी की शिक्षा प्रणाली का बारहवीं शताव्दी ई० तक के इतिहास का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।

बीज शब्द : काशी, शिक्षा प्रणाली, संस्कृति, वैदिक शिक्षा, धार्मिक शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा, पुरुषार्थ, बौद्ध शिक्षा, ज्ञान परंपरा, तीर्थ स्थली, हिन्दू, बौद्ध तथा जैन विचारधारा।

प्रस्तावना

संस्कृति, साहित्य तथा साधना की तपोस्थली के रूप में प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा में काशी नगरी का प्रमुख स्थान है। प्राचीन भारत की पवित्र एवं प्राचीनतम नगरी काशी की गणना शिक्षा के एक प्रमुख केंद्र के साथ धर्मनगरी रूप में की जाती है। वस्तुतः एक जनपद के रूप में काशी का उदय उत्तर वैदिक काल मैं हुआ। काशी नामकरण को लेकर एक मत यह है कि इस क्षेत्र में कुश एवं काश के जंगलों की अधिकता के कारण क्षेत्र का नाम काशी पड़ा। वैदिक साहित्य अथर्ववेद की पिप्लाद शाखा में पहली बार काशी की चर्चा की गई है। यहाँ काशी के लिए काशयः शव्द की चर्चा है जो काशी के निवासियों के लिए उद्धृत है।(1) इसके अलावे गोपथ ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण तथा वृहदारण्यक उपनिषद में काशी का उल्लेख विभिन्न सन्दर्भों में मिलता है।(2) पाणिनि की अष्टाध्यायी में काशी के लिए काशियः शव्द का उल्लेख किया गया है।(3) इसीप्रकार पतंजलि ने भी एक समान लम्बाई व चौडाई वाले वस्त्रों के मूल्यों में अंतर को काशी व मथुरा के परिप्रेक्ष्य में उल्लेख किया है।(4) बौद्ध ग्रन्थ अंगुत्तर निकाय तथा जैन ग्रन्थ भगवतीसूत्र में वर्णित षोडश महाजनपद में से एक महत्वपूर्ण महाजनपद काशी भी था।(5)

पांचवी शताव्दी ई० पू० के भारतवर्ष के छः प्रसिद्द महानगरों में काशी की चर्चा चंपा, राजगृह, श्रावस्ती , साकेत तथा कौशाम्वी के साथ की गई है।(6) सोननन्द जातक के अनुसार काशी का अधिकार मगध , कौशल एवं अंग के ऊपर भी था। किन्तु बाद में कौशल ने काशी पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया।(7) कालान्तर में कौशल नरेश प्रसेनजित ने अपनी बहन महाकौशला देवी का विवाह मगध नरेश बिम्बिसार के साथ कर काशी महाजनपद या इसके कुछ हिस्से को दहेज़ के रूप में मगध शासक को दे दिया।(8)

काशी महाजनपद की राजधानी वाराणसी थी। वाराणसी के नामकरण को लेकर भी कई मत हैं। अलेक्जेंडर कनिंघम ने अपने ग्रन्थ "द एंसियेंट जियोग्राफी ऑफ इंडिया" में इस मत का समर्थन किया है कि वरुणा एवं असि दो नदियों के बीच में अवस्थित होने के कारण इस नगर का नाम वाराणसी पड़ा।(9) अथर्ववेद में इस क्षेत्र की वरणावती नदी का नामोल्लेख मिलता है।(10) इसी प्रकार महाभारत में भी वरुणा की चर्चा की गई है।(11) इससे स्पष्ट होता है कि वरुणा का ही प्राचीन नाम वाराणसी था।(12) अश्वघोष की बुद्धचरित में भी काशी तथा वाराणसी को एक

* **यू.जी.सी - नेट (इतिहास), पीएच० डी० (इतिहास), पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना, बिहार, भारत**

समानार्थक रूप में दर्शाया गया है। इसमे वणारा नामक एक स्थान का उल्लेख है जहाँ बुद्ध ने वृक्ष की छाया में वास किया था। [13] अनुमान है कि बुद्धचरित में वर्णित वणारा ही आज की वरुणा नदी है।

भारत के प्राचीनतम नगरों में से एक वाराणसी की पहचान धार्मिक एवं सांस्कृतिक केंद्र के रूप की जाती है। अब इसे बनारस के नाम से भी जाना जाता है तथा काशी एवं बनारस एक दुसरे के पर्याय हैं। हालांकि अपने आरंभिक चरण में काशी का विस्तार क्षेत्र वाराणसी के विस्तार क्षेत्र से बहुत अधिक था। विभिन्न पुराणों में काशी के विस्तार क्षेत्र की विस्तृत चर्चा मिलती है। हिन्दू धर्म विशेषकर शिव एवं गंगा के महात्म्य के लिए यह नगरी प्रसिद्ध है। स्कंदपुराण के काशी खंड के अनुसार काशी में ऐसा कोई भी स्थान नहीं था जहाँ शिव लिंग नहीं मिलता हो।[14] इस तरह काशी अपने शैव मंदिरों के लिए प्रख्यात थी। हालांकि मुस्लिम शासन काल में बहुत से मंदिरों को नष्ट कर दिया गया। इस सन्दर्भ में ऐसा वर्णन मिलता है कि दिल्ली सल्तनतकालीन शासक अलाउद्दीन खलजी ने काशी की एक हजार मंदिरों को नष्ट कर दिया था। [15] जैन धर्म के 23 वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के गृह नगर होने के कारण वाराणसी का महत्व जैन मतावलम्वियों के लिए भी अधिक है। बुद्ध ने भी ज्ञान प्राप्ति के बाद अपना प्रथम उपदेश वाराणसी से सटे सारनाथ में दिया था। यही कारण था कि चीनी यात्री फाहियान ने भी वाराणसी की यात्रा की थी। इससे यह स्पस्ट होता है कि चौथी शताव्दी ई० में भी काशी जनपद की राजधानी वाराणसी थी।[16] बारहवीं शताव्दी में भी गहड़वाल शासन काल में कान्यकुब्ज के अतिरिक्त काशी भी उनकी राजधानी थी। [17]

इस तरह विभिन्न धर्म एवं संस्कृतियों का अद्भुत समन्वय वाराणसी में दिखता है तथा इसका सन्दर्भ हमें वैदिक साहित्यों , महाभारत , जातक कथाओं तथा जैन साहित्यों में मिलता है।

उद्देश्य : प्रस्तुत शोध पत्र के उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

- प्राचीन उत्तर भारत के ज्ञान केंद्र के रूप में काशी की शिक्षा व्यवस्था का अध्ययन करना।
- काशी के इतिहास का अध्ययन करना।
- सांस्कृतिक समन्वय केंद्र के रूप में काशी का अध्ययन करना।
- शिक्षा केंद्र के रूप में मठों व मंदिरों की भूमिका का अध्ययन करना।
- काशी में वैदिक व बौद्ध शिक्षा प्रणाली का अध्ययन करना।

परिसीमन : प्रस्तुत शोध पत्र में वैदिक काल से लेकर बारहवीं शताब्दी ई० तक के काशी की शैक्षणिक प्रणाली का शोधपरक अध्ययन किया गया है।

साहित्य सर्वेक्षण

विवेच्य शोध आलेख के सन्दर्भ में काशी की शिक्षा प्रणाली को लेकर प्राथमिक व द्वितीयक स्त्रोतों से विभिन्न तथ्यों का संकलन किया गया है। प्राथमिक स्त्रोत के रूप में जिन ग्रंथों का अध्ययन किया गया है उनमे महाभारत, अथर्ववेद , स्कंदपुराण, अष्टाध्यायी, महाभाष्य तथा भविष्य पुराण आदि ग्रन्थ प्रमुख है। द्वितीयक स्त्रोत के रूप में आधुनिक इतिहासकारों, शिक्षाविदों तथा समाजशास्त्रियों की रचनाओं का अध्ययन किया गया है। इनमे डॉ० मोतीचंद की रचना "काशी का इतिहास" में काशी की भौगोलिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक पहलुओ की प्राचीन भारत से लेकर आधुनिक भारत तक विषद विवेचना मिलता है। पंडित कुबेर नाथ सुकुल ने अपनी रचना "वाराणसी वैभव" में काशी के धार्मिक स्वरुप, नदियाँ तथा तीर्थस्थानों की विस्तार से चर्चा की है।

आचार्य पं० बलदेव उपाध्याय की रचना "काशी की पांडित्य परंपरा" में प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक के काशी के ख्यातिलव्ध विद्वत जनों पर प्रकाश डाला गया है। एक महाजनपद के रूप में काशी की राजनीतिक प्रस्थिति पर के. सी. श्रीवास्तव ने अपनी रचना "प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति" में प्रकाश डाला है। काशी नामकरण तथा इसकी भौगोलिक स्थिति का अलेक्जेंडर कनिंघम ने "द एंसियेंट जियोग्राफी ऑफ इंडिया'' में उल्लेख किया है। बनारस की सांस्कृतिक पहचान तथा शिक्षण केंद्र व तीर्थ स्थली के रूप में विषद उल्लेख एम. ए. शेरिंग ने "बनारस दि सेक्रेड सिटी ऑफ़ दि हिन्दुज" में किया है। प्रो० अनंत सदाशिव अल्तेकर ने अपनी रचना "प्राचीन

भारतीय शिक्षण पद्धति" में प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली के परिप्रेक्ष्य में काशी की शिक्षा व्यवस्था पर प्रकाश डाला है। जातक कथाओं के आधार पर अपनी रचना "प्री बुद्धिस्ट इंडिया, ए सर्वे ऑफ़ एंसियेंट इंडिया" में रतिलाल एन. मेहता ने प्राचीन भारत में एक जनपद के रूप में उभरते काशी की स्थिति को दर्शाया है। काशी की सांस्कृतिक विरासत को प्रकाश में लाने का कार्य डॉ० पांडुरंग वामन काणे ने अपने ग्रन्थ "धर्मशास्त्र के इतिहास" में किया है। डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल ने जर्नल ऑफ न्युमिस्मेटिक्स सोसाईटी ऑफ इंडिया" में कुछ सिक्कों की खोज के आधार पर काशी की शिक्षण संस्थाओं की स्वनिर्भरता को रेखांकित किया है।

विवेच्य शोध आलेख को तैयार करने के दौरान उपर्युक्त ग्रंथों के अतिरिक्त विभिन्न शोधकर्ताओं के संदर्भित शोध प्रबंधों का भी अध्ययन किया गया है। इनमे शोधकर्ता पंकज कुमार शुक्ल के शोध प्रबंध "काशी में शिक्षा", शोधकर्ता भवेश कुमार के शोध प्रबंध - "काशी में मठों का संस्कृत शिक्षा के विकास में योगदान" तथा शोधकर्ता विश्वनाथ सिंह के शोध प्रबंध - "वाराणसी जनपद का इतिहास" का उल्लेख किया जा सकता है।

शोध विधि प्रस्तुत शोध आलेख का सन्दर्भ अतीत से सम्बंधित है। प्राथमिक व द्वितीयक स्त्रोतों से प्राप्त तथ्यों के संकलन के आधार पर प्रस्तुत शोध आलेख के विषय वस्तु के अध्ययन हेतु ऐतिहासिक शोध विधि एवं इससे सम्बंधित वर्णनात्मक व विश्लेष्णात्मक शोध विधि को अपनाया गया है।

काशी की शिक्षा प्रणाली

काशी की शिक्षा प्रणाली में मंदिरों, मठों तथा बौद्ध विहारों की प्रमुख भूमिका रही है। इनकी भूमिका पाठशालाओं के रूप में थी। यहाँ विद्यार्थियों को आचार्यों द्वारा शिक्षा दी जाती थी । कुछ आचार्य व्यक्तिगत रूप से भी विद्यार्थियों को विभिन्न शास्त्रों की शिक्षा देते थे । बौद्ध दर्शन के स्थापित होने से पूर्व ही उत्तरी भारत में काशी वैदिक शिक्षा का एक प्रमुख केंद्र थी। प्रो० अनंत सदाशिव अल्तेकर के अनुसार उपनिषद काल तक काशी आर्य सभ्यता एवं धर्म के केंद्र के रूप में प्रख्यात हो चुकी थी। उपनिषदों में काशी के शासक अजातशत्रु को एक दार्शनिक के रूप में दर्शाया गया है जो शिक्षा के प्रोत्साहन में मिथिला के शासक जनक को अपना आदर्श मानता था। (18)

महाजनपद काल में तक्षशिला के बाद वाराणसी ही शिक्षा का केंद्र था। जातकों (1/463 , 2/100) से ज्ञात होता है कि जो स्नातक छात्र तक्षशिला से लौट कर बनारस आते थे वे यहाँ शिक्षण कार्य आरम्भ कर देते थे।(19) बनारस की कुछ शिक्षण संस्थाएं तो तक्षशिला की शिक्षण संस्थाओं से भी पहले की थी, ऐसा उल्लेख खुद्दक पाठ अटठकथा (पृ० 198) में मिलता है।(20) जातक कथा (1/109) में यह भी वर्णित है कि बनारस के निवासियों में शिक्षा के प्रति अत्यधिक अनुराग था। यही कारण था की वे गरीब विद्यार्थियों के लिए निःशुल्क भोजनादि का प्रबंध करते थे । रतिलाल मेहता अपनी पुस्तक प्री बुद्धिस्ट इंडिया में लिखते हैं कि बनारस के निवासियों द्वारा आचार्यों तथा छात्रों को भोजन , दान - दक्षिणा का प्रबंध किया जाता था। यहाँ तक कि अपने साथियों के पढाई का व्यय भार का वहन भी राजकुमारों के राज्यकोष से ही होता था।(21) सच पूछा जाय तो गरीब छात्रों के निःशुल्क भोजनादि के प्रबंध की उत्तम परंपरा बनारस में आज भी देखी जा सकती है।

विद्वानों के बीच काशी के आकर्षण के सम्बन्ध में आचार्य बलदेव उपाध्याय ने जिन कारकों की चर्चा की है उसमे काशी की एक तीर्थ स्थली के रूप में, विद्या केंद्र के रूप में तथा जीविका के स्त्रोत के रूप में मूर्धन्य होना है।(22) आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार महर्षि वेदव्यास की कर्मस्थली काशी ही थी। इन्होने यह भी उद्घाटित किया है कि अष्टाध्यायी पर लिखित भाष्य - महाभाष्य के रचनाकार पतंजलि भी काशी मंडल के ही निवासी थे। इसी परिप्रेक्ष्य में पंडित कुबेर नाथ सुकुल ने उपनिषदकालीन ब्रह्मविद्या के विकास से लेकर बाद के शाक्त परम्पराओं, शैव उपासनाओं तथा वैष्णव सम्प्रदायों के विकास में काशी की महती भूमिकाओं का उल्लेख किया है।(23) काशी की प्रख्यात विद्वत परंपरा के सन्दर्भ में ग्यारहवीं शताव्दी में भारत आने वाले अलवरुनी ने भी बनारस तथा कश्मीर को विद्वानों की एक सर्वोत्तम पाठशाला केंद्र के रूप में वर्णित किया है। (24)

जहां तक बनारस के पाठशालाओं एवं उनके पाठ्यक्रमो का प्रश्न है , इसे तक्षशिला के शिक्षण संस्थाओं में प्रचलित पाठ्यक्रमों के आधार पर अंदाजा लगाया जा सकता है। पाठ्यक्रमों में वेदों के अध्ययन तथा शिल्पों का अध्ययन शामिल था। बनारस संगीत शिक्षा का भी एक प्रमुख केंद्र था। गुठिल जातक (2/248) में यह वर्णित है कि बनारस में वीणा वादन प्रतियोगिता होती थी। (25)

उत्तर भारत में काशी व्यावसायिक शिक्षा का भी केंद्र रही है। वैसे वस्त्र निर्माण व्यवसाय भारत में प्राचीन काल से ही विद्यमान रहा है जिसका उल्लेख रेगोजिन ने अपनी पुस्तक वैदिक इंडिया में भी किया है। अंगुत्तर निकाय में वाराणसी के वस्त्र निर्माण व्यवसाय के सन्दर्भ में काशीक वस्त्र, काशिय या काशिकुत्तम शव्दों का उल्लेख मिलता है। कौशेय व तितिर जातकों से भी ज्ञात होता है कि काशी के आचार्य वेदों के अलावे 18 शिल्पों की भी शिक्षा देते थे।(26) पाठाशालाओं में छात्रों को शिक्षित करने के अलावे ऋषियों व मुनियों द्वारा अपने आश्रमों में दर्शन एवं धर्मशास्त्रों का भी अध्ययन व अध्यापन का कार्य किया जाता था। काशी बौद्ध शिक्षा का भी एक महत्वपूर्ण केंद्र था। बुद्ध ने अपना प्रथम उपदेश बनारस से ही सटे सारनाथ में दिया था । मौर्य काल में सारनाथ बौद्ध शिक्षा का एक बड़ा केंद्र बना।

अंकित जातक में वर्णित है कि प्रारम्भिक शिक्षा की समाप्ति के बाद 16 वर्ष की आयु में विद्यार्थी काशी में अपने गुरु के पास पढ़ने के लिए आते थे।(27) विद्यार्थियों द्वारा गुरु को अग्रिम में ही गुरु दक्षिणा दी जाती थी। जो छात्र गुरुदक्षिणा देने में असमर्थ होते थे वे गुरु की सेवा कर पढ़ने का कार्य करते थे । इसमे वे दिन में गुरु की सेवा करते तथा रात में पढाई का कार्य करते थे । शिक्षण का कार्य सुबह से लेकर दोपहर तक होती थी । शिक्षण प्रणाली के अंतर्गत मौखिक व पुस्तकीय दोनों ही प्रकार की शिक्षा प्रचालन में थी। गुप्तों एवं गहड़वालों के शासन काल में काशी में वैदिक शिक्षा अपने शिखर पर थी। सबसे अधिक संस्कृत भाषा व साहित्य का विकास एवं प्रसार इसी दौरान हुआ।

छात्रों की दिनचर्या के सम्बन्ध में कहा गया है कि आश्रम में एक मुर्गा रखा जाता था जो छात्रों को सुबह-सुबह जगाने का कार्य करता था। गुरु की आज्ञा से छात्र नदी में स्नान करने जाते थे । वे भोजन पकाने के लिए जंगलों से लकड़ियां इकठा करते थे। इस तरह छात्रों द्वारा सादा जीवन व्यतीत किया जाता था।(28)

काशी के शिक्षण संस्थाओं को प्राप्त अनुदानों के सन्दर्भ में डॉ० अल्तेकर का मानना है कि ऐसा कोई उत्कीर्ण लेख प्राप्त नहीं होता है जिससे पता लगे कि किसी व्यक्ति ने काशी के किस शिक्षण संस्थान को कितने अनुदान दिए। नालंदा विश्वविद्यालय जैसी बड़ी शिक्षण संस्थान के समान काशी में किसी ने बड़ी सार्वजनिक शिक्षण संस्थान की उपलब्धता नहीं मिलती है।(29) परन्तु इस सन्दर्भ में वासुदेव शरण अग्रवाल का अलग मत है। उन्होंने काशी से कुछ ऐसी मुहरें प्राप्त की है जिस पर एक आश्रम का चिन्ह बना है जिसके मध्य में एक जटाधारी आचार्य खड़े हैं तथा कुछ छात्र उनके आस पास खड़े हैं । अनुमान है कि ये मुहरें चौथी शताब्दी से लेकर ग्यारहवीं शताब्दी तक की हैं। (30) इससे काशी की शिक्षण संस्थाओं की स्वनिर्भरता भी स्पस्ट होती है जिसे नालंदा जैसी किसी अनुदानित शिक्षण संस्थाओं की जरुरत नहीं थी ।

निष्कर्ष

इस प्रकार काशी की शिक्षा प्रणाली की सामान्य विशेषताओं में शिक्षा की निःशुल्क व्यवस्था , शास्त्रार्थ की परंपरा , संस्कृत भाषा का प्रसार उदारता एवं वाकपटुता , सादा जीवन व उच्च विचार का समावेश था। वैदिक कालीन जनपद काल से लेकर बारहवीं शताब्दी ई० तक काशी अपनी पठन-पाठन की परंपरा में समृद्ध थी। हालांकि काशी के इस लम्बे काल की शिक्षण प्रणाली में समय के साथ उन परिवर्तनों को भी शामिल किया गया जो बदलते परिवेश में व्यक्ति की जरूरतों के लिए आवश्यक होती है। भले ही यहाँ नालंदा और विक्रमशिला जैसी शिक्षण संस्थाएं नहीं थी किन्तु आचार्य परंपरा तथा व्यक्तिगत रूप में मठों व मंदिरों तथा आश्रमों में शिक्षा की अविरल गंगा अविच्छिन रूप से प्रवाहित होती रही है। जैसा कि अरबी लेखक अलवरुनी भी लिखता है कि ग्यारहवीं सदी में काशी

उत्तर भारत का एक प्रमुख विद्या केंद्र था। यहाँ भविष्य पुराण की यह उक्ति चरितार्थ होती है कि काशी पांडित्य का प्रसिद्द केंद्र होगी। (31)

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 डॉ० मोतीचंद, "काशी का इतिहास", हिंदी ग्रन्थ रत्नाकर प्राईवेट लिमिटेड, हीरावाग, बंबई -4, 1962, पृ० सं० 20
2 आचार्य पंडित बलदेव, उपाध्याय, "काशी की पांडित्य परंपरा", विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी, 1983, पृ० सं०1
3 पाणिनि , अष्टाध्यायी 4 / 2 / 113
4 पतंजलि , महाभाष्य , जिल्द - 2, पृ० सं० 413
5 के. सी. श्रीवास्तव , "प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति", यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, 2019, पृ० सं० 86-87
6 आचार्य पंडित बलदेव उपाध्याय , पूर्वोक्त , पृ० सं० 6
7 के. सी . श्रीवास्तव , पूर्वोक्त, पृ० सं० 87
8 के. सी . श्रीवास्तव , वहीं , पृ० सं०104
9 अलेक्जेंडर, कनिंघम, “द एंसियेंट जियोग्राफी ऑफ इंडिया”, ट्रूबनर एंड कंपनी 60, पीटर नोस्टर रो, लंदन, 1871,पृ० सं० 499
10 अथर्ववेद, 4-7-1
11 महाभारत. 6-10-30
12 मोतीचंद , पूर्वोक्त , पृ० सं० 3
13 अश्वघोष , बुद्धचरित , 15 / 101
14 स्कन्दपुराण , काशी खंड , 59 / 1 / 8
15 एम. ए. शेरिंग , "बनारस दि सेक्रेड सिटी ऑफ़ दि हिन्दुज इन ए एन्सिएन्ट एंड मॉडर्न टाईम्स". त्रुबनर एंड कंपनी, पेत्रोनोस्तर रो, लन्दन , पृ० सं० 31
16 आचार्य पंडित बलदेव उपाध्याय, पूर्वोक्त , पृ० सं० 3
17 आचार्य पंडित बलदेव उपाध्याय, वहीं , पृ० सं० 10
18 प्रो० अनंत सदाशिव, अल्तेकर, "प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति", प्रथम अनुराग प्रकाशन संस्करण, चौक, वाराणसी , 2014 , पृ० सं० 83
19 डॉ० मोतीचंद , पूर्वोक्त, पृ० सं० 43
20 डॉ० मोतीचंद , वहीं, पृ० सं० 43
21 रतिलाल एन. , मेहता, "प्री बुद्धिस्ट इंडिया, ए सर्वे ऑफ़ एंसियेंट इंडिया: बेस्ड ऑन दि जातका स्टोरीज", एग्जामिनर प्रेस ,बॉम्बे , 1939, पृ० सं० 300
22 आचार्य पंडित बलदेव उपाध्याय, पूर्वोक्त, पृ० सं० 19
23 पं० कुबेर नाथ, सुकुल, "वाराणसी वैभव", बिहार-राष्ट्रभाषा- परिषद, पटना- 800004, प्रथम संस्करण,2000 पृ० सं० 21
24 महामहोपाध्याय डॉ० पांडुरंग वामन, काणे, "धर्मशास्त्र के इतिहास", भाग -2 (हिन्दी अनुवादक - अर्जुन चोबे कश्यप) , हिंदी समिति सूचना विभाग , उत्तर प्रदेश, लखनऊ, पृ० सं० 176
25 डॉ० मोतीचंद , पूर्वोक्त , पृ० सं० 43
26 अल्तेकर , प्रो० अनंत सदाशिव , पूर्वोक्त, पृ० सं० 84
27 अल्तेकर , प्रो० अनंत सदाशिव , वहीं, पृ० सं० 84
28 डॉ० मोतीचंद , पूर्वोक्त , पृ० सं० 44
29 अल्तेकर , प्रो० अनंत सदाशिव , पूर्वोक्त, पृ० सं० 85
30 डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल , "जर्नल ऑफ न्युमिस्मेटिक्स सोसाईटी ऑफ इंडिया" , खंड -23 , पृ० सं० 408- 413
31 भविष्य पुराण , ब्रह्मखंड , अध्याय -51,2,3

काशी में शिक्षा पर मैकाले मिनट्स का प्रभावः एक अध्ययन

श्वेता पुरी*
डॉ मीरा त्रिपाठी**

सार:

1835 में थॉमस बाइबिंगटन मैकाले के "मिनट्स ऑन इंडियन एजूकेशन" ने भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद के इतिहास में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन किया। यूरोपीय शिक्षा और अंग्रेजी भाषा को बढ़ावा देने की वकालत करने वाले इस नीतिगत दस्तावेज द्वारा भारतीय समाज पर गहरा और स्थाई प्रभाव पड़ा। प्रस्तुत पत्र में 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध के दौरान पारंपरिक हिंदू शिक्षा के एक प्रसिद्ध केंद्र काशी पर मैकाले मिनट के विशिष्ट प्रभाव की जांच की गई है। इस महत्वपूर्ण अवधि और स्थान पर ध्यान केंद्रित करते हुए पत्र सांस्कृतिक परिवर्तन, प्रतिरोध और अनुकूलन की जटिल परस्पर्क क्रिया की पड़ताल करता है जो औपनिवेशिक शिक्षा नीतियों और स्वदेशी ज्ञान प्रणालियों के बीच मुठभेड़ की विशेषता है। संस्कृत और धार्मिक अध्ययन में अपनी समृद्ध परंपरा के लिए जाने जाने वाले इस शहर को अपनी शैक्षिक संस्थानों में अंग्रेजी और पश्चिमी विषय को शामिल करने के लिए किस प्रकार के दबाव का सामना करना पड़ा होगा इस बात की भी इस पत्र में जांच की गई है। इस नीति के दीर्घकालिक प्रभाव के रूप में 1916 में बनारस हिंदू विश्वविद्यालय जैसे आधुनिक संस्थाओं की स्थापना भी देखी गई जिन्होंने पारंपरिक भारतीय ज्ञान को आधुनिक वैज्ञानिक शिक्षा के साथ जोड़ा था।

पत्र में प्राचीन काशी नगरी की ऐतिहासिकता का वर्णन किया गया है साथ ही प्राचीन काशी की शिक्षा प्रणाली का ऐतिहासिक उल्लेख भी किया गया है तथा आधुनिक काशी की शिक्षा प्रणाली के साथ तुलनात्मक विश्लेषण करते हुए मैकाले मिनट के प्रभाव का वर्णन किया गया है।

शोध पत्र का मुख्यतः 3 उद्देश्य है:

- काशी की ऐतिहासिकता का वर्णन करते हुए प्राचीन शिक्षा प्रणाली का उल्लेख करना।
- मैकाले के पश्चात काशी के आधुनिक शिक्षण संस्थानो का उल्लेख करना।
- काशी की सांस्कृतिक उदारता को स्पष्ट करना।

कीवर्डस: काशी, मैकाले मिनट्स, शिक्षा, शिक्षा संस्थान, कोशिका जातक, सांस्कृतिक बदलाव, औपनिवेशिक नीतियों, अभिजात वर्ग, ओरिएंटलिस्ट एवं एंग्लिसिस्ट ।

काशी में मैकाले मिनट के प्रभाव का अध्ययन एक विस्तृत एवं व्यापक विषय के अंतर्गत आता है। किसी भी देश की सभ्यता और संस्कृति की विस्तृत जानकारी प्राप्त करने का एक मजबूत आधार उस देश की शिक्षा है। काशी की शिक्षा प्रणाली की प्राचीनता एवं ऐतिहासिकता से हम सभी परिचित हैं, तक्षशिला एवं नालंदा के बाद काशी ही एक ऐसा स्थल है जो भारत की प्राचीन शिक्षा प्रणाली एवं सांस्कृतिक एकता का प्रतीक भी है।

यद्यपि आदम वैदिक साहित्य में काशी का वर्णन नहीं मिलता है उस काल में ना तो तीर्थ न विद्या के केंद्र के रूप में इसकी ख्याति थी और ना ही उपनिषद काल में काशी आर्य सभ्यता के केंद्र के रूप में विख्यात था **(अथर्ववेद)** । महाजनपद युग में विद्या के केंद्र के रूप में तक्षशिला का महत्व काशी की अपेक्षा काफी अधिक था। यही कारण है कि देश के कोने-कोने से विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने के लिए आते थे इस संबंध में जातक साहित्य से पता चलता है कि काशी के राजा ब्रह्मदत ने अपने पुत्र को तक्षशिला में अध्ययन के लिए भेजा था। काशी के अनेक

* रिसर्च स्कॉलर, इतिहास विभाग, महिला महाविद्यालय किदवई नगर, कानपुर यूनिवर्सिटी
** असिस्टेंट प्रोफ़ेसर, इतिहास विभाग, महिला महाविद्यालय किदवई नगर, कानपुर यूनिवर्सिटी
Mobile No.-8318856706, Email I.D.- purishweta09@gmail.com

आचार्य तक्षशिला में स्नातक थे और तक्षशिला के बाद ही काशी का महत्व शिक्षा के लिए था। जातक साहित्य यथा कोशिका जातक में काशी को विद्या का महत्वपूर्ण केंद्र बनाने का श्रेय तक्षशिला के स्नातकों को दिया जाता है जिन्होंने तक्षशिला से लौट कर यहां शिक्षण कार्य प्रारंभ किया था लेकिन इसी संदर्भ में सूतक पाठ कथा से ज्ञात होता है कि काशी की शिक्षण संस्थाएं तक्षशिला से भी प्राचीन थी।

ईसा की प्रारंभिक शताब्दी में काशी में जब मठों और मंदिरों के प्रचलन का श्री गणेश हुआ तथा धीरे-धीरे बौद्ध संघ के व्यवहार में व्यक्तिगत रूप से शिक्षा प्रदान की जाने लगी तब इन मटन और मंदिरों में भी शिक्षा केंद्र बने प्रारंभ हो गए। यह शिक्षा केंद्र उन मंदिरों के संप्रदाय से संबंधित शास्त्रों की शिक्षा के साथ-साथ विभिन्न वेदों वेदांगो उपनिषदों दर्शनों तथा धर्म शास्त्रों आदि की शिक्षा भी प्रदान करते थे। अपने संप्रदाय के विधि विधान एवं पूजा आसन के पश्चात विद्यार्थियों को शुल्क मुक्त शिक्षा देते थे। इन मंदिरों मतों में रहने वाले विद्यार्थियों को निशुल्क भोजन आवास एवं चिकित्सा की सुविधा भी प्राप्त होती थी। डॉ अलतेकर ने लिखा है कि होतहै एवं तेतरी जातक से ज्ञात होता है की काशी के यशस्वी आचार्य तीनों वेदों एवं 18 शिल्पो का अध्ययन करते थे ,इसी तरह अंकित जातक से ज्ञात होता है कि काशी के यशस्वी आचार्य तीनों वेदों एवं 18 का हो का अध्ययन करते थे इसी तरह अंकित जातक से पता चलता है की 16 वर्ष की आयु वाले विद्यार्थी काशी में अध्ययन के लिए उमड़ पढ़ते थे।

यह हिंदू मठ एवं मंदिर इतनी समृद्ध थे कि उनके लिए राजाओं द्वारा दिए जाने वाले दान इत्यादि का कोई बहुत महत्व नहीं था । समाज में आचार्य का स्थान एवं उसके प्रभाव हिंदू विद्या केंद्र के रूप में काशी में वैदिक युग से आचार्य या गुरु का स्थान देवता रूप में अत्यंत आधार युक्त ,गरिमायुक्त एवं प्रतिष्ठित था।

मध्ययुगीन काल में इस शहर में उसे समय की बदलती सांस्कृतिक और आर्थिक चुनौतियों के अनुकूल भारत के शैक्षिक परिदृश्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने जारी रखा। **(18),** काशी में रहने और काम करने वाले दार्शनिकों वैज्ञानिकों और शिक्षाविदों के साथ ज्ञान की यह परंपरा पूरे मध्य युगीन काल में जारी रही, जिससे यह सीखने का प्रमुख केंद्र बन गया। (Gupta.R 2022) दिलचस्प बात यह है की मध्ययुगीन काल में इस्लामी प्रभावों के साथ पारंपरिक भारतीय शिक्षा प्रणालियों का एकीकरण देखा गया। जबकि गुरुकुल प्रणाली ने साहित्य गणित दर्शन और विज्ञान जैसे विषयों पर जोर देना जारी रखा एवं इस्लामी शासको ने धार्मिक अध्ययन कानून और धर्मशास्त्र पर केंद्रित मदरसे की स्थापना की। (**11**)

अंततः मध्ययुगीन काल के दौरान काशी के शैक्षिक वातावरण में पारंपरिक और नए प्रभाव का मिश्रण था। अपनी पुरानी विशेषताओं को बनाए रखते हुए बदलती सांस्कृतिक और आर्थिक चुनौतियों के अनुकूल होने की शहर की क्षमता ने इसे विकसित व्यापार शहर और सीखने के केंद्र के रूप में स्थापित करने की अनुमति दी। (18)

काशी में मैकाले मिनट के प्रभाव को जानने के लिए इसके ऐतिहासिक संदर्भ की भी आवश्यकता है कि मैकाले मिनट कैसे अस्तित्व में आया यह बात स्पष्ट है कि ओरिएंटलिस्ट एवं एंग्लिसिस्ट बहस के पश्चात ही मैकाले मिनट उभरा जिसने शिक्षा में अंग्रेजी बनाम स्थानीय भाषाओं की भूमिका पर सवाल उठाया। (**22**) द मिनिट्स का उद्देश्य अंग्रेजी को शिक्षा के माध्यम के रूप में स्थापित करना था जो पश्चिमी ज्ञान को बढ़ावा देने में औपनिवेशिक हेतु को दर्शाता है। (**22**). अंग्रेजी शिक्षा की शुरुआत में नए स्कूलों की स्थापना की जिससे काशी में पारंपरिक शैक्षिक कथाओं में बदलाव आया (**17**)। मैकाले की नीतियों ने एक सांस्कृतिक बदलाव में योगदान दिया जिससे शिक्षित भारतीयों का एक नया वर्ग बन जो अक्सर पारंपरिक ज्ञान प्रणालियों से अलग हो जाते थे। (**12**) इन नीतियों की विरासत को सामाजिक शैक्षिक ढांचे में देखा जा सकता है जहां कई भारतीय संस्थानों में अंग्रेजी का वर्चस्व बना हुआ है।(**14**) जबकि मैकाले मिनिट्स की अक्सर अंग्रेजी शिक्षा को लागू करने के लिए आलोचना की जाती है कुछ विद्वानों का तर्क है कि यह प्रगतिशील भारतीय अभिजात वर्ग की आकांक्षाओं को भी मान्यता देता है जो औपनिवेशिक और स्वदेशी शैक्षिक प्रभाव के बीच एक जटिल बातचीत का सुझाव देता है। (**12**)

मैकाले, मिनट ने स्कूलों और कॉलेज की स्थापना का आवाहन किया जो अंग्रेजी में पढ़ाएंगे जिससे इस नए शैक्षिक ढांचे को संस्थागत बनाया जा सके। **(7)**मैकाले मिनट में काशी में शैक्षिक परिदृश्य को महत्वपूर्ण रूप से आकर दिया उसने स्वदेशी ज्ञान के मूल्य और औपनिवेशिक शिक्षा के नेता के बारे में बहस को भी जन्म दिया आलोचकों का तर्क है कि इस बदलाव ने एक सांस्कृतिक अलगाव और पारंपरिक शैक्षिक प्रभाव के नुकसान को जन्म दिया जिससे भारतीय समाज पर इस तरह की , के दीर्घकालिक प्रभावों के बारे में सवाल उठाते हैं। (**7)** निश्चित रूप से 1835 में भारतीय शिक्षा पर उसके कार्य वृत्त का भारत में शिक्षा नीति पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा।**(5)** उसने ऐसे वर्ग के गठन की वकालत की जो स्वाद, राय, नैतिकता और बुद्धि में अंग्रेज होगा(2)। दिलचस्प बात यह है कि मैकाले ने अन्य ब्रिटिश उपनिवेशों के लिए समान परिणाम की कल्पना की।उन्होंने अंग्रेजी भाषा और यूरोपीय शैक्षिक परंपराओं के प्रसार के माध्यम से ऑस्ट्रेलिया और दक्षिण अफ्रीका में महान यूरोपीय समुदायों के उदय का जश्न मनाया। **(5),** अत इससे पता चलता है कि औपनिवेशिक शिक्षा के बारे में मैकाले के विचारों ने भारत से बाहर की नीतियों को प्रभावित किया होगा हालांकि संदर्भ उन उपनिवेशों में उसकी प्रभावशीलता का विशिष्ट प्रमाण प्रदान नहीं करता है

काशी में प्राचीन शिक्षा प्रणाली भारत की समृद्ध शैक्षिक विरासत का एक अभिन्न अंग थी ,जो इसके समग्र दृष्टिकोण और आध्यात्मिक एवं बौद्धिक विकास पर जोर देती थी।

काशी दर्शन ,गणित, खगोल विज्ञान और चिकित्सा सहित हिंदी मूवी shapath ध्यान केंद्रित करने के साथ सीखने के केंद्र के रूप में प्रसिद्ध था।(**16**) शहर के शैक्षणिक संस्थाओं ने संभवत व्यापक प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली का पालन किया जिसमें वैदिक और बौद्ध दोनों परंपराएं शामिल थी **(13)** छात्रों ने वेद उपनिषद और अन्य धार्मिक ग्रंथो जैसे विषयों के साथ-साथ तर्क राजनीति और युद्ध जैसे धर्मनिरपेक्ष विषयों का अध्ययन किया होगा। (**13)**

महत्वपूर्ण बिंदु यह है कि पुरातात्विक साक्ष्य यह बताते हैं कि काशी तकनीकी विकास में भी उन्नत था विशेष रूप से अस्थि प्रौद्योगिकी में। काशी में पुरातात्विक स्थलों में अस्थि उपकरणों की खुदाई से इस क्षेत्र के सामाजिक आर्थिक विकास और इसके निवासियों के समृद्ध सामाजिक जीवन के बारे में जानकारी मिलती है। (**3)**

अतः इससे यह ज्ञान होता है की प्राचीन काशी शिक्षा प्रणाली बहु आयामी थी। जिसमें आध्यात्मिक शिक्षाओं को व्यवहारिक ज्ञान और कौशल के साथ जोड़ा गया था ।इसने अपने समय की व्यापक भारतीय शैक्षिक परंपराओं को प्रतिबिंबित किया जिसमें समग्र विकास और विभिन्न विषयों के एकीकरण पर जोर दिया गया ।इस क्षेत्र में उन्नत अस्थि प्रौद्योगिकी के पुरातात्विक निष्कर्ष प्राचीन काशी में शिक्षा के व्यावहारिक पहलुओं पर प्रकाश डालते हैं जो सैद्धांतिक ज्ञान और व्यावहारिक कौशल के बीच संतुलन को प्रदर्शित करती है।

मैकाले के मिनट के कार्यान्वयन ने धीरे-धीरे अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों और अंततः काशी में कॉलेज की स्थापना की। अंग्रेजी प्रवीणता के कथित आर्थिक और सामाजिक लाभों के साथ-साथ औपनिवेशिक सरकार के संरक्षण ने भारतीय समाज के कुछ वर्गों को इन नए संस्थानों की ओर आकर्षित किया हालांकि यहां परिवर्तन बिना प्रतिरोध के नहीं हुआ।

यहां काशी के प्रमुख शैक्षिक संस्थानों की सूची उनकी स्थापना वर्ष के साथ दी गई है

१) काशी हिंदू विश्वविद्यालय (बीएचयू)

स्थापना वर्ष: १९१६

पंडित मदन मोहन मालवीय द्वारा स्थापित

२) संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय

प्रारंभ में 1791 में सरकारी संस्कृत कॉलेज के रूप में स्थापित, इसका पुनर्गठन 1958 में किया गया और इसे संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय नाम दिया गया जो संस्कृति और प्राचीन अध्ययन में विशेषज्ञ रखता है।

३) केंद्रीय उच्च तिब्बती अध्ययन संस्थान (सी आई एचटी एस)

स्थापना वर्ष 1967

भारत सरकार द्वारा दलाई लामा के अनुरोध पर स्थापित यह संस्थान तिब्बती अध्ययन बौद्ध धर्म और प्राचीन भारतीय भाषाओं पर केंद्रित है

४) भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान आईआईटी बी एच यू वाराणसी

स्थापना वर्ष 1919, बनारस इंजीनियरिंग कॉलेज के रूप में स्थापित ,2012 में I.I.T बना।

५) महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ

स्थापना वर्ष 1921

स्वतंत्रता संग्राम के दौरान स्थापित यह एक सार्वजनिक विश्वविद्यालय है जो स्नातक और स्नातकोत्तर कार्यक्रमों की एक विस्तृत श्रृंखला प्रदान करता है।

६) सेंट्रल हिंदू स्कूल

स्थापना वर्ष 1898

एनी बेसेंट द्वारा स्थापित यह भारत के सबसे पुराने स्कूलों में एक है और माध्यमिक एवं वरिष्ठ माध्यमिक शिक्षा के लिए भू से संबंध है।

७) उदय प्रताप कॉलेज

स्थापना वर्ष 1909

राजा उदय प्रताप सिंह द्वारा स्थापित यह कॉलेज कला विज्ञान और वाणिज्य में स्नातक और स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम प्रदान करता है।

यह डेटा काशी यूनिवर्सिटी की वेबसाइट (10) से लिया गया है, साथ ही संबंधित कॉलेजों की वेबसाइट से लिया गया है एवं सरकारी बजट द्वारा प्रयोग किया गया है।

इसके अतिरिक्त भी अन्य शिक्षण संस्थाएं भी स्थापित की गई और निरंतर स्थापित की जा रही है।

कुल मिलाकर यह दिखाई पड़ता है कि मैकाले मिनट का काशी की शिक्षा पर गहरा और स्थाई प्रभाव पड़ा मैकाले के मिनट के कार्यान्वयन ने धीरे-धीरे अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों और अंततः काशी में कॉलेज की स्थापना की। अंग्रेजी प्रवीणता के कथित आर्थिक और सामाजिक लाभों के साथ-साथ औपनिवेशिक सरकार के संरक्षण ने भारतीय समाज के कुछ वर्गों को इन नए संस्थानों की ओर आकर्षित किया हालांकि यहां परिवर्तन बिना प्रतिरोध के नहीं हुआ।

इसने सीखने के पारंपरिक रूपों को पूरी तरह से विस्थापित नहीं किया लेकिन इसने शैक्षिक परिदृश्य में धीरे-धीरे बदलाव लाया जिससे समाज के विभिन्न वर्गों के लिए नए अवसर और चुनौतियां भी पैदा हुई काशी के लोगों द्वारा प्रदर्शित प्रतिरोध और अनुकूलन उन जटिल तरीकों को उजागर करता है, जिनमें औपनिवेशिक नीतियों ने मौजूदा सांस्कृतिक मापदंडों और मूल्यों के साथ चर्चा की । यह अध्ययन औपनिवेशिक नीतियों के स्थानीय और क्षेत्रीय प्रभावों की जांच करने के महत्व को भी रेखांकित करता है उनके द्वारा प्राप्त विविध प्रतिक्रियाओं और उनके द्वारा छोड़ी गई स्थाई विरासतों को पहचानने की भी कोशिश करता है।

काशी समुदाय के भीतर कुछ लोगों ने अंग्रेजी शिक्षा के बढ़ते प्रभाव को पहचानते हुए अधिक व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाया। उन्होंने बदलते सामाजिक राजनीतिक परिदृश्य के अनुकूल होते हुए अपने सांस्कृतिक मूल्य को सुरक्षित करने के उद्देश्य से मौजूदा संस्थानों में पश्चिमी शिक्षा के तत्वों को शामिल करने की मांग की। इससे संकर संस्थाओं का उदय हुआ जिन्होंने परंपरा और आधुनिकता के बीच की खाई को पढ़ने का प्रयास किया, दूसरे शब्दों में इसे सांस्कृतिक उदारवाद भी कहा जा सकता है।

अंग्रेजी शिक्षा की शुरुआत में भारतीयों का एक नया वर्ग बनाया जो अंग्रेजी में धारा प्रवाह थे एवं पश्चिमी विचारों से परिचित थे। इस नए अभिजात वर्ग ने अक्सर अपने अंग्रेजी कृत तरीकों के लिए आलोचना का सामना करते हुए 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में काशी के बौद्धिक और राजनीतिक परिदृश्य को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। मैकाले मिनट का उद्देश्य अंग्रेजी भाषा और पश्चिमी शिक्षा को बढ़ावा देना था जिसका काशी सहित भारतीय समाज पर दूरगामी प्रभाव पड़ा। (**19)**

मैकाले को उनके स्पष्ट और अलंकारिक लेखन शैली के लिए जाना जाता था जिसने शुरू में उनकी प्रसिद्ध में योगदान दिया। उनकी महत्वाकांक्षा थी कि उन्हें थोसिडिड्डस के समान एक महान कथात्मक इतिहासकार के रूप में पहचाना जाए। उन्होंने 17वीं शताब्दी से 19वीं शताब्दी तक की महत्वपूर्ण घटनाओं को शामिल करते हुए इंग्लैंड का एक व्यापक इतिहास लिखने का लक्ष्य रखा, लेकिन उनकी यह परियोजना अधूरी रही।

भारत में शिक्षा के प्रति मैकाले का दृष्टिकोण सांस्कृतिक साम्राज्यवाद का प्रतीक था क्योंकि यह स्वदेशी संस्तुतियों पर ब्रिटिश मूल्य और ज्ञान प्रणालियों को थोपने का प्रयास करता था। शिक्षा पर उनके 1835 के मिनट में शिक्षा के माध्यम के रूप में अंग्रेजी की वकालत की प्रभावी रूप से देशी भाषाओं और साहित्य को दर किनार कर दिया जिसे उन्होंने ही माना। **(2)** इस बदलाव का उद्देश्य न केवल औपनिवेशिक प्रशासन की सेवा करने के लिए शिक्षित भारतीयों का एक वर्ग बनाना था बल्कि अंग्रेजों के बीच सांस्कृतिक श्रेष्ठ की भावना भी पैदा करना था।(**8)** मैकाले के तहत शैक्षिक नीतियों ने पारंपरिक ज्ञान प्राणियों को कमजोर करते हुए पश्चिमी विज्ञान को बढ़ावा देते हुए भारतीय समाज के परिवर्तन की सुविधा प्रदान की। (15) अंग्रेजी शिक्षा पर ध्यान केंद्रित करने से स्थानीय ज्ञान हाशिए पर आ गया जिससे सांस्कृतिक संबंध टूट गए और स्वदेशी परंपराओं में विश्वास कम हो गया (**8)**

दूसरे दृष्टिकोण से देखा जाए तो मैकाले की नीतियों ने भारत में आधुनिक शिक्षा को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी उन्होंने शिक्षा और पहचान निर्माण में औपनिवेशिक विरासत की जटिलताओं को उजागर करते हुए स्वदेशी संस्कृतियों में प्रतिरोध और रुचि के पुनरुद्धार को भी जन्म दिया।

काशी का एक समृद्ध धार्मिक और संस्कृति के इतिहास से जिसने समय के साथ अपनी पहचान को आकार दिया है। प्रीति दश के अनुसार काशी प्राचीन काल से विभिन्न धार्मिक मान्यताओं और संस्कृतियों से जुड़ा हुआ है शहर के कई नाम है जिसमें आनंदकानन(आनंद का जंगल),महासंसन(महान शमशान), और अविमुक्त(कुछ ऐसा जिसे छोड़ा नहीं जा सकता) शामिल है जो इसके विविध सांस्कृतिक महत्व को दर्शाते हैं। (**4)**

प्रश्न उठता है कि कैसे क्षेत्रीय पहचान काशी की सांस्कृतिक उदारता में समूह के अंदर और समूह से बाहर के समर्थन की धारणाओं को आकर देती है। काशी की सांस्कृतिक उदारता में इन ग्रुप और आउट ग्रुप समर्थन के सवालों को सीधे संबोधित नहीं करता है यह शहर की जटिल सांस्कृतिक पहचान और बदलती परिस्थितियों के अनुकूल होने की इसकी क्षमता को उजागर करता है।

अलीन गैब्रेलियक(1) ने यह माना है कि व्यक्ति उन लोगों को सहायता प्रदान करने की अधिक संभावना रखते है जिन्हें उनके समूहों के रूप में माना जाता है। क्षेत्रीय पहचान इस निर्णय लेने की प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण कारक के रूप में कार्य करती है। इस बात से भी इनकार नहीं किया जा सकता की मदद करने वालों की भावनात्मक अभिव्यक्ति सामाजिक दूरी से भी प्रभावित होती है। क्षेत्रीय संस्कृति की विभिन्नता के कारण सामाजिक दूरी बढ़ती है,जिससे अधिक दूरी के कारण उदारता काम हो जाती है।मजबूत क्षेत्रीय पहचान समूह में विशिष्टता की धारणा को बढ़ाती है जिससे बाहरी समूह की तुलना में अपने स्वयं के समूहों के बारे में अधिक अनुकूल दृष्टिकोण होता है (**23)** सकारात्मक विशिष्टता का यह उच्चारण अपनापन की भावना को बढ़ाता हर व्यक्तियों को दूसरों पर अपने क्षेत्रीय समुदाय का समर्थन करने के लिए प्रेरित करता है। काशी में भी इसे अलग स्थितियां नहीं थी।

क्षेत्रीय पहचान का विकास सामाजिक सांस्कृतिक कारकों से प्रभावित होता है जो बाहरी समूह के प्रति उदारता को बढ़ावा दे सकता है अथवा उसमें बाधा डाल सकता है (**9**) काशी की सांस्कृतिक प्रथाएं गुल्ला गोची परंपराओं के

समान पारस्परिकता और साझाकरण पर जोर देती है ,जो सामुदायिक बंधनों और सामूहिक कल्याण को बढ़ावा देती है।(20) काशी की सांस्कृतिक उदारता इसकी धार्मिक और सांप्रदायिक प्रथाओं में गहराई से निहित है यह पहचाना आवश्यक है कि ऐसी परंपराओं को आधुनिकता और वैश्वीकरण की चुनौतियों का भी सामना करना पड़ सकता है जो उनकी निरंतर और प्रमाणिकता को खतरे में डाल सकते हैं। किंतु इस बात से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि काशी हिंदू धर्म के पवित्र शहर के रूप में सम्मानित है जिसे अक्सर अविमुक्त कहा जाता है जो शाश्वत मुक्ति का प्रतीक है (4)जिसकी उदारता में ही उसका अस्तित्व निहित है। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता अंग्रेजी शिक्षा और मैकाले ने निश्चित रूप से काशी की शिक्षा और समाज को प्रभावित किया किंतु काशी की मौलिकता उसकी संस्कृति, सांस्कृतिक सद्भाव, उसकी पहचान को नष्ट नहीं किया जा सका। आज भी काशी बाबा की नगरी के रूप में विश्व विख्यात है। इंग्लिश भाषा ने निश्चित रूप से अनेक संस्कृतियों के बीच संवाद को सरल बनाया। जिससे काशी ने विश्व को सिखाया भी और विश्व से सीख भी, गंगा की निर्मल धारा के समान काशी में ज्ञान का निरंतर प्रवाह आज भी प्रवाहमय है। पुराणों में वर्णित है कि भगवान शिव ने पार्वती जी को काशी नगरी में ही दीक्षा दी थी और स्वयं पार्वती जी ने काशी में भगवान संग बसने की इच्छा प्रकट की एवं विश्व के कल्याण की प्रार्थना अभिव्यक्त की इसके पश्चात काशी 'विश्वनाथ' की संज्ञा से स्वयं को सुशोभित कर आज भारत के लिए विश्व गुरु का एक उपमान बना है।

निष्कर्ष:

अंततः स्पष्ट होता है कि काशी में मैकाले के मिनट्स का प्रभाव शिक्षा प्रणाली ,सामाजिक संरचना और सांस्कृतिक पहचान पर गहरा और स्थाई रहा है। मैकाले के शिक्षा सुधारो ने अंग्रेजी भाषा और पश्चिमी विचारधारा को केंद्र में लाकर एक नई शैक्षिक व्यवस्था का निर्माण किया जिसने पारंपरिक शिक्षा के मूल्यों को हाशिए में ला दिया। किंतु इस बात से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि शिक्षा प्रणाली के माध्यम से एक नया बौद्धिक वर्ग तैयार हुआ जिसे आधुनिक विज्ञान ,गणित और अंग्रेजी साहित्य में दक्षता प्राप्त की और आगे चलकर स्वतंत्रता संग्राम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।। हालांकि इस बदलाव ने भारतीय भाषाओं और सांस्कृतिक मूल्यों की उपेक्षा की ,जिसके कारण सामाजिक और सांस्कृतिक विभाजन गहराने लगे ।अंग्रेजी शिक्षा ने स्थानीय संस्कृति को चुनौती दी, जिससे कई लोग अपने सांस्कृतिक और धार्मिक मूल्यों को बनाए रखने के लिए संघर्षरत रहे। मैकाले मिनट का प्रभाव न केवल काशी बल्कि पूरे भारतीय समाज पर पड़ा ,इसने शिक्षा के क्षेत्र में आधुनिकता के द्वार तो खोल लेकिन साथ ही सांस्कृतिक अस्मिता और पारंपरिक शिक्षण पद्धतियों को प्रभावित किया। निश्चित रूप से मैकाले का उद्देश्य काशी का विकास तो नहीं था ना ही भारत का विकास था। सामाजिक सुधारो के माध्यम से इस बौद्धिक वर्ग ने भारत की रूढ़िवादिता को तोड़ने का प्रयास किया किंतु इस सत्य पर भी शोध होना आवश्यक है कि यह सामाजिक सुधार क्या उस समय की परिस्थितियों के लिए आवश्यक थे, जब भारत दासता की बेड़ियों में जकड़ा था। भारतीयों के आत्मविश्वास का प्रतीक उसकी प्राच्य संस्कृति थी जिस पर सवाल उठाया गया था, मैकाले ने संस्कृत और अरबी भाषा का तो विरोध किया किंतु फारसी भाषा पर कोई प्रश्न नहीं उठाया। मैकाले ने भारत में तर्क के विकास पर तो जोर दिया, किंतु विकास के संरचनात्मक ढांचे पर जोर नहीं दिया। मैकाले ने एक ऐसे समाज की स्थापना पर जोर दिया जो पश्चिमी विचारधाराओं के समर्थन का प्रतीक हो ना की विकास का प्रतीक।कुल मिलाकर यह स्पष्ट होता है कि मैकाले ने भारत में एक ऐसी आयातित शिक्षा प्रणाली की नींव रखी थी , जिसका लाभ ब्रिटेन के खजाने में जुड़ रहा था। शोध का विषय यह होना चाहिए कि क्या आज हम उस आयातित शिक्षा प्रणाली का भारतीय सांचे में पुन निर्माण करने में सक्षम हो पाए हैं? शिक्षा के माध्यम से धन के निर्गमन को हम पुनः अपनी ओर मोड़ने में कितने सक्षम हुए हैं। जहां तक काशी का प्रश्न है मैकाले मिनट का निश्चित रूप से वहां पर भी प्रभाव पड़ा किंतु काशी की सांस्कृतिक,वैचारिक,और धार्मिक जड़ों को हिलाने में वह भी असफल रहा किंतु निश्चित रूप से काशी की शिक्षा में कुछ उपागमों को अवश्य जोड़ा गया जिसमें आधुनिकता परिलक्षित होती है ।

Reference:

1. Alin Gavreliuc, Dana Gavreliuc, Alin Semenescu (2021) “Beyond the facade of generosity -Regional stereotype within the same national culture influence prosocial behaviors” Plos one 16(5) e0250125,2021
2. Alissa Caton (2011)” Indian in colour, British in Taste: William Bentinck, Thomas Macaulay, and the Indian Education Debate,1834-1835, Voces Novae 3(1),16,2011(google scholar)
3. Anuradha Singh, (2021) “The Pattern of bone Technology in ancient Kashi (1300 BC to 300 AD) Indian historical review, 48(2),306-330.https://doi.org/10.1177/03769836211052105), (Nov 2021),306-330
4. Bervig, (2023)” Dynamic of Economic -Cultural Transformation in Kashi During the Mediaeval Period. International Journal For Multidisciplinary Research, doi:10.36948/iifmr. 2023. v05i03.3231)
5. Black, A, Thomas, S, & Gandhi, L(2001) “Introduction : ‘Mother Country ‘(pp.1-6) Palgrave Macmillan UK https://doi.org/10.1057/9780230599277_1),2001,1-6
6. Elmer, H, Cutts. (1953) “The background of Macaulay's minute. The American Historical Review, doi:10.1086/AHR/58.4.824,1953,
7. G, J, V, Prasad (2006) “A Minutes Stretching into Centuries: Macaulay, English, and India. Nineteenth Century Prose,.2006
8. Hareet Kumar Meena (2015) “Educational structure and the process of colonization in colonial India” American International Journal of Research in Humanities, Arts and Social science 11(1),2015,85-91.
9. Irina, Tsvetkiva, Evgenia, V, Zhelnina, Tatiana, N, Ivanova, Natalia, B, Gorbacheva (2019) Factors of Regional Identity as a Dynamic Structure.doi:10.1108/978-1-78769-993-920191029,2019
10. Kashi University web site
11. K Majini Jes Bella (2024), Education System In Mediaeval Period-Challenges and Opportunities In Mediaeval Education, International journal of Multidisciplinary Research in Arts, Science and Technology,2(4),.https://doi.org/10.61778/ijmrast.v2i4.54)2024,41-47
12. Kenneth Ballhatchet (1990) “The importance of Macaulay” Journal of Royal Asiatic Society 122(1), 1990, 91-94
13. Kumar (2023) (Buddhist education system in ancient India: An Introduction. (Shodhkosh: Journal of Visual and Performing Arts,4(2).https://dou.org/10.29121/shodhkosh.v4.i2.2023.2399),2023,
14. Lava, Deo, Awasthi (2013) Importation of ideologies: from Macaulay minutes to wood commission.” Journal of Educational Research, doi:10.3126/JER.V110.7948,2013
15. Mahesh Kumar Muchhal, Arun Kumar. (2015) “Climax of the Controversy Role of Lord T.B. Macaulay in the Educational History of India. International Journal of Research,2015
16. Mahesh KM, Sharma KRS, PS Aithal २०२३, international general of philosophy and language1-17, https://doi.org/10.48992/ijpl.2583.9934.0009)
17. Parimala, V, Rao (2019) “Beyond Macaulay: Education in India,1780-1860(book),2019
18. Preety Shah (2024),” Dynamics of economic -Cultural Transformation in Kashi During the Mediaeval Period “International Journal of multidisciplinary research ,5(3). https://doi.org/10.36948/ IJFMR.2024. v05i03.3231)), 2024
19. Robert Phillipson, Ahmad Kabel (2024),” Linguistic imperialism in English medium higher education”, The Routledge Handbook of English Medium Instruction in Higher Education,63-77.,2024
20. Sharon, Y, Fuller (,2021),” Indigenous Ontologies: Gullah Geechee Traditions and Cultural Practice of Abundance. Human Ecology, doi:10.1007/S10745-021-00215-2),2021
21. S. Mansi, K, V, Raju (2020) Cultural Influence on Health, Traditions and Ecology.doi:10.1007/978-3-030-18517-6_4,2020
22. Stephen, Evans (2002) “Macaulay’s Minutes' Revisited: Colonial Language Policy in Nineteenth century India” Journal of Multilingual and Multicultural Development, doi:10.1080/01434630208666469,2002
23. Simon et al,1995 “On being more than just a part of the whole: Regional identity and social distinctiveness” European Journal of Social Psychology, doi:10.100/EJSP.2420250306)

राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम में बनारस की भूमिका

सुधीर कुमार*

सारांश

बनारस का महत्व केवल सांस्कृतिक , धार्मिक और शैक्षिक दृष्टि से ही नहीं है, बल्कि यह नगर भारत के स्वतंत्रता संग्राम में भी अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाला केंद्र भी रहा है । 1857 की पहली क्रांति के समय बनारस में विद्रोही सैनिकों और स्थानीय लोगों ने ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध विद्रोह का बिगुल फूंका था । इसके पश्चात राष्ट्रीय आंदोलन के विभिन्न चरणों जैसे असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन और भारत छोड़ो आंदोलन आदि में भी बनारस की सक्रिय भागीदारी रही । यह नगर क्रांतिकारी गतिविधियों , गुप्त सभाओं और राष्ट्रवादी विचारों के प्रसार का केंद्र बना । उसी दौर में स्थापित बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय और काशी विद्यापीठ न केवल शिक्षा का केंद्र था , बल्कि स्वतंत्रता संग्राम के विचारों को गढ़ने और युवाओं को राष्ट्रभक्ति के लिए प्रेरित करने का माध्यम भी बना । इस आंदोलन में पंडित मदन मोहन मालवीय, बाल गंगाधर तिलक, महात्मा गांधी जैसे महान नेताओं का आगमन बनारस में हुआ और यहां की जनता ने उनका समर्थन किया । स्थानीय समाचार पत्रों , साहित्य और सांस्कृतिक आयोजनों के माध्यम से जनजागरण का वातावरण तैयार किया गया । इस प्रकार बनारस भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का एक ऐसा जीवंत केंद्र रहा, जहां से न केवल विद्रोह की चिंगारी उठी , बल्कि आत्मबलिदान और राष्ट्रभक्ति की भावना भी निरंतर पुष्ट होती रही । बनारस का महत्व केवल सांस्कृतिक एवं सामाजिक दृष्टि से ही नहीं है , अपितु विश्व का सबसे प्राचीन इस शहर ने राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम के दौरान भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी ।

मुख्य शब्द : बनारस, स्वतंत्रता संग्राम, 1857 की क्रांति, भारत छोड़ो आंदोलन , बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय , काशी विद्यापीठ, जनजागरण , क्रांतिकारी आंदोलन , मदन मोहन मालवीय, गुप्त सभाएं , राष्ट्रवाद , असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन , प्रेस और प्रचार , सांस्कृतिक राष्ट्रवाद ।

राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम का बीजारोपण 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही प्रारंभ हो गया था, जब ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने धीरे-धीरे भारत के विभिन्न हिस्सों पर नियंत्रण स्थापित करना शुरू किया। इस प्रक्रिया में बनारस (काशी) न केवल एक ऐतिहासिक सांस्कृतिक केंद्र के रूप में, बल्कि औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध प्रतिरोध के एक महत्वपूर्ण स्थल के रूप में भी उभरा। इस कालखंड में बनारस की भूमिका राष्ट्रीय घटनाओं के समानांतर स्वतंत्रता आंदोलन की जमीन तैयार करने में महत्वपूर्ण रही ।

1770 में काशी के महाराजा बलवंत सिंह के निधन के बाद राजनीतिक परिस्थितियों में बड़ा बदलाव आया। काशी जो पहले अवध सूबे का भाग था, अब नवाब शुजाउद्दौला और अंग्रेजी सत्ता के बीच संघर्ष का केंद्र बन गया। वर्ष 1773 में वारेन हेस्टिंग्स ने स्वयं बनारस आकर स्थिति का अवलोकन किया और चेत सिंह को काशी का उत्तराधिकारी स्वीकार किया। 1777 से 1779 के बीच वारेन हेस्टिंग्स द्वारा चेत सिंह से बार-बार भारी रकम की मांग की गई, जिससे असंतोष गहरा गया। अंततः 1781 में चेत सिंह ने अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और वारेन हेस्टिंग्स की सेना को पराजित किया। इस संघर्ष से यह स्पष्ट हुआ कि अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध विद्रोह का साहस भारतीय रजवाड़ों में अभी जीवित था। चेत सिंह के प्रतिरोध ने 1857 के विद्रोह के लिए प्रेरणा का कार्य किया और अंग्रेजी सत्ता की अजेयता की छवि को धूमिल किया। चेत सिंह पर बनी प्रसिद्ध कहावत – "घोड़े पर हौदा हाथी पर जीन, जल्दी में भाग गए वारेन हेस्टीन", जनमानस में प्रतिरोध की भावना का प्रतीक बन गई।

वर्ष 1799 में लखनऊ के पदच्युत नवाब वजीर अली को बनारस लाकर माधोदास बाग में नजरबंद रखा गया। अंग्रेजों द्वारा उसे कलकत्ता भेजने की योजना के विरुद्ध वजीर अली ने विद्रोह कर अंग्रेज राजनीतिक एजेंट जॉर्ज फ्रेडरिक चेरी की हत्या कर दी। इस घटना से अंग्रेजों के प्रति गहरा असंतोष पुनः उभरकर सामने आया। यद्यपि वजीर अली को बाद में पकड़ा गया, लेकिन इस घटना ने बनारस क्षेत्र में अंग्रेजी शासन की कठोरता और असंतोष के बीच बढ़ती खाई को उजागर कर दिया।

1810 में बनारस में मकानों पर एक नया कर आरोपित किया गया, जिसका जनता ने अहिंसात्मक प्रतिरोध के माध्यम से विरोध किया। जब कर वसूली के लिए अधिकारी आते, तो लोग अपने घरों को खाली छोड़कर घाटों और मैदानों में चले जाते थे। यह

* शोधार्थी, इतिहास विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

रणनीति सविनय अवज्ञा आंदोलन के शुरुआती स्वरूप की तरह थी, जो बाद में महात्मा गांधी के नेतृत्व में राष्ट्रीय स्तर पर विकसित हुई। इस आंदोलन ने अंग्रेजी प्रशासन को झुकने पर मजबूर कर दिया और कर हटाना पड़ा।

1828 में बनारस के अस्सी घाट के निकट मणिकर्णिका तांबे का जन्म हुआ, जो आगे चलकर रानी लक्ष्मीबाई के रूप में 1857 के विद्रोह का प्रमुख चेहरा बनीं। बनारस में उनका प्रारंभिक जीवन स्वतंत्रता और स्वाभिमान की भावनाओं के बीच पला-बढ़ा। उनके व्यक्तित्व में यहां के सांस्कृतिक और राजनीतिक वातावरण की स्पष्ट छाप देखी जा सकती है।

1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में बनारस ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। तीन जून को आजमगढ़ से बनारस लाया जा रहा अंग्रेजी खजाना लूट लिया गया। इसके दो दिन बाद बनारस में व्यापक क्रांति फूट पड़ी और मुगलों के चांद-तारा झंडे फहराए गए। अंग्रेजी सत्ता के प्रतीक चिह्नों को नष्ट कर दिया गया और शहर का अधिकांश भाग अंग्रेजी शासन से मुक्त हो गया। हालांकि, नौ जून को कर्नल नील ने बनारस पर पुनः कब्जा कर लिया और मार्शल लॉ लागू कर दिया। आदिकेशव मंदिर को सेना का मुख्यालय बना दिया गया। विद्रोह को कुचलने के लिए अंग्रेजों ने भारी दमन चक्र चलाया, जिसमें लगभग 500 स्वतंत्रता सेनानियों को फांसी दी गई और अस्थायी फांसीघर तक बनाए गए। यह घटना बनारस को राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास में एक साहसी और बलिदानी केंद्र के रूप में स्थापित करती है।

1885–1920 के बीच स्वतंत्रता संग्राम में बनारस की भूमिका

1885 से 1920 के बीच बनारस ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की दो समानांतर धाराओं , संवैधानिक सुधारों की ओर अग्रसर कांग्रेस आंदोलन तथा सशस्त्र क्रांतिकारी गतिविधियों – दोनों में समान रूप से भागीदारी निभाई । जहां एक ओर रामकली चौधरी , गोखले और तिलक जैसे नेताओं के माध्यम से बनारस कांग्रेस आंदोलन का गवाह बना , वहीं दूसरी ओर रासबिहारी बोस, शचीन्द्रनाथ सान्याल और चंद्रशेखर आजाद जैसे क्रांतिकारियों के माध्यम से इसने स्वतंत्रता संग्राम की गुप्त क्रांति को शक्ति प्रदान की । बनारस का यह द्वैध योगदान भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में उसकी विशिष्ट और अमिट छवि को स्थापित करता है ।

1885 में बंबई (अब मुंबई) में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन का आयोजन हुआ , जिसमें बनारस का प्रतिनिधित्व रामकली चौधरी ने किया । रामकली चौधरी केवल प्रथम अधिवेशन तक ही सीमित नहीं रहे , बल्कि कांग्रेस के प्रारंभिक चारों अधिवेशनों में बनारस की ओर से सक्रिय भागीदारी निभाई । इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रारंभ से ही बनारस की राजनीतिक चेतना राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्य धारा से जुड़ी रही थी। दूसरी तरफ , 1905 में बनारस ने कांग्रेस के एक महत्वपूर्ण अधिवेशन की मेजबानी की , जिसकी अध्यक्षता गोपालकृष्ण गोखले ने की । यह वही समय था जब बंग-भंग के विरोध में पूरे देश में असंतोष उभर रहा था और कांग्रेस के भीतर गरम दल और नरम दल के बीच मतभेद भी तीव्र हो रहे थे । बनारस अधिवेशन के दौरान प्रिंस ऑफ वेल्स के स्वागत से जुड़ा प्रस्ताव कांग्रेस के मंच पर आया । गरम दल ने इसका विरोध किया, परंतु गोखले के संयम और तिलक के सहयोग से कांग्रेस के भीतर संतुलन साधा गया । इस प्रसंग ने बनारस को कांग्रेस के आंतरिक विमर्श और संघर्ष का भी साक्षी बनाया ।

जहां एक ओर बनारस संवैधानिक मार्ग से स्वतंत्रता की आकांक्षा को स्वर दे रहा था , वहीं दूसरी ओर यह गुप्त क्रांतिकारी गतिविधियों का भी एक महत्त्वपूर्ण केंद्र बन गया था। सेडिशन इंक्वायरी कमिटी (1918) की रिपोर्ट में स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि बनारस की जटिल और संकरी गलियों वाली भौगोलिक बनावट ने गुप्त संगठनों के लिए आदर्श परिस्थितियाँ उपलब्ध कराईं । इस शहर में क्रांतिकारी आंदोलनों का जाल सहजता से फैल सकता था । रासबिहारी बोस, जो लॉर्ड हार्डिंग पर बम फेंकने के अभियोग में वांछित थे और जिन पर ₹7500 का इनाम घोषित था, 1914 में बनारस पहुंचे । बनारस ने उन्हें शरण ही नहीं दी, बल्कि क्रांतिकारी योजनाओं को आकार देने का आधार भी प्रदान किया । वहीं 1916 में शचीन्द्रनाथ सान्याल, जो 'बनारस षड्यंत्र' के प्रमुख अभियुक्त थे, गिरफ्तार कर लिए गए और बाद में उन्हें आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई । शचीन्द्रनाथ सान्याल न केवल क्रांतिकारी संगठन 'गदर पार्टी' और 'हिंदुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' के साथ सक्रिय थे, बल्कि उन्होंने बनारस को क्रांतिकारी गतिविधियों का प्रमुख केंद्र भी बनाया ।

यही नहीं , काकोरी षड्यंत्र (1925) में भी बनारस की महत्वपूर्ण भूमिका रही । इस षड्यंत्र से जुड़े अनेक प्रमुख क्रांतिकारी – जैसे चंद्रशेखर आजाद, जिन्होंने बनारस में ही अपनी प्रारंभिक शिक्षा और क्रांतिकारी जीवन की शुरुआत की थी, तथा राजेंद्रनाथ

लाहिड़ी, जो मूलतः बनारस के निवासी थे – स्वतंत्रता आंदोलन में शामिल रहे । भूपेंद्रनाथ सान्याल का योगदान भी बनारस से जुड़ा हुआ था , जो क्रांतिकारी चेतना को धार देने में सहायक बने । प्रथम विश्व युद्ध के काल में जब देश में राजनीतिक शून्यता थी उसे समय एनी बेसेंट और गोपाल कृष्ण गोखले ने होम रूल लीग आंदोलन शुरू किया था । एनी बेसेंट का बनारस से गहरा संबंध था । अतः एनी बेसेंट की गिरफ्तारी जून , 1917 में बनारस में जबरदस्त सार्वजनिक सभाएं देखने को मिली थी । वहीं रोलेट एक्ट के विरोध में भगवान दास तथा शिव प्रसाद गुप्त ने सभा का संचालन किया था और बनारस में हड़ताल देखने को मिली थी ।

1920 – 1942 के बीच स्वतंत्रता संग्राम में बनारस की भूमिका

1920 से 1942 के मध्य बनारस ने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के प्रत्येक चरण – असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन और भारत छोड़ो आंदोलन में न केवल सक्रिय भागीदारी निभाई , बल्कि राष्ट्रीय चेतना को भी धार दी । 1 अगस्त , 1920 को महात्मा गांधी ने अंग्रेजी शासन के विरुद्ध असहयोग आंदोलन का शुभारंभ किया । बनारस ने इस आंदोलन में अपनी उल्लेखनीय भागीदारी दर्ज कराई । अक्टूबर 1920 में गांधी जी असहयोग आंदोलन के आह्वान के लिए बनारस आए थे । बीएचयू के संस्थापक मदन मोहन मालवीय जी शिक्षा संस्थानों के बहिष्कार के विरोधी थे । बावजूद इसके सैकड़ो छात्रों ने अध्यापक जे.बी. कृपलानी के नेतृत्व में विश्वविद्यालय छोड़ दिया था । इस दौरान जेपी कृपलानी ने ईश्वरगंगी ने गांधी आश्रम की स्थापना की थी । जनवरी 1921 में बनारस के सरकारी संस्कृत कॉलेज के छात्रों ने परीक्षाओं के बहिष्कार का आह्वान किया , जो असहयोग आंदोलन की स्थानीय प्रतिक्रिया थी । महात्मा गांधी ने आंदोलन को व्यापक बनाने हेतु कांग्रेस की सदस्यता बढ़ाने का आह्वान किया था । बनारस ने इस दिशा में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया , जहां लगभग 45 हजार नए सदस्य बनाए गए । असहयोग आंदोलन के दौरान बनारस के टाउन हॉल में अनेक जनसभाएं आयोजित की गईं , जहां विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार का आह्वान किया जाता था । 30 सितंबर , 1921 को टाउन हॉल में आयोजित एक सभा में पंडित भगवान दास ने विदेशी वस्त्रों की होली जलाकर स्वदेशी आंदोलन को नई ऊर्जा प्रदान की । इसी अवधि में प्रिंस ऑफ वेल्स के भारत आगमन का विरोध भी बनारस में व्यापक स्तर पर हुआ । बहिष्कार का प्रचार करने के आरोप में जे. बी. कृपलानी और पंडित कमलापति त्रिपाठी सहित कई नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया । इन गिरफ्तारियों से शहर में सन्नाटा छा गया था । बनारस हिंदू विश्वविद्यालय (बीएचयू) में प्रिंस ऑफ वेल्स को डी.लिट. की उपाधि प्रदान करने के आयोजन के समय छात्रों के बहिष्कार के कारण प्रशासन को चपरासियों को छात्र बनाकर सभा स्थल भरना पड़ा था ।

असहयोग आंदोलन के दौरान बनारस में कई रचनात्मक कार्य भी संपन्न हुए । राष्ट्रीय शिक्षा को बढ़ावा देने के उद्देश्य से 1921 में काशी विद्यापीठ की स्थापना की गई , जो स्वदेशी शिक्षा के केंद्र के रूप में विकसित हुआ । इसी समय शिवप्रसाद गुप्त के प्रयासों से दैनिक समाचार पत्र 'आज' का प्रकाशन आरंभ हुआ, जिसमें प्रेमचंद और संपूर्णानंद जैसे साहित्यकारों और पत्रकारों ने योगदान दिया । जे. बी. कृपलानी ने विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य त्यागकर बनारस में गांधी आश्रम की स्थापना कर स्वदेशी आंदोलन को और मजबूती दी । हालांकि, पांच फरवरी , 1922 को चौरी-चौरा कांड की घटना के बाद महात्मा गांधी ने 12 फरवरी , 1922 को असहयोग आंदोलन को स्थगित करने का निर्णय लिया ।

महात्मा गांधी के नेतृत्व में अगला बड़ा जनांदोलन 12 मार्च , 1930 को दांडी यात्रा के साथ शुरू हुआ , जिसे नमक सत्याग्रह के नाम से जाना जाता है । गांधीजी के आह्वान पर बनारस ने भी ब्रिटिश कानूनों को चुनौती दी । 8 अप्रैल , 1930 को बनारस के सोनिया क्षेत्र में नमक कानून का उल्लंघन किया गया, जहाँ स्थानीय लोगों ने नमक बनाया और उसे बाजार में बेचा । इस आंदोलन का नेतृत्व संपूर्णानंद ने किया , जिन्होंने लोगों से नमक बनाने और ब्रिटिश कानून को तोड़ने का आह्वान किया । परिणामस्वरूप संपूर्णानंद को गिरफ्तार कर लिया गया । महात्मा गांधी के नेतृत्व में स्वतंत्रता संग्राम का अंतिम और निर्णायक चरण आठ अगस्त , 1942 को भारत छोड़ो आंदोलन के रूप में प्रारंभ हुआ । आंदोलन के आरंभ के साथ ही शीर्ष राष्ट्रीय नेताओं की गिरफ्तारी हुई , जिसकी गूंज बनारस में भी सुनाई दी । शीर्ष कांग्रेसी नेताओं की गिरफ्तारी के बाद बनारस में भारत छोड़ो आंदोलन का नेतृत्व बीएचयू और काशी विद्यापीठ के छात्रों ने किया था । नौ अगस्त , 1942 को बनारस में खेदन लाल , संपूर्णानंद , तारापद भट्टाचार्य और गोविंद मालवीय जैसे प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया । प्रशासन ने बनारस स्थित कांग्रेस कार्यालय पर भी कब्जा कर लिया । काशी विद्यापीठ और बनारस हिंदू विश्वविद्यालय पर भी सरकारी नियंत्रण स्थापित कर दिया गया ।

पंडित कमलापति त्रिपाठी को बथुबई से लौटते समय नैनी (इलाहाबाद) में गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया । इन दमनात्मक कार्रवाइयों के बावजूद बनारस में आंदोलन की तीव्रता कम नहीं हुई । 27 अगस्त , 1942 तक आंदोलन ने व्यापक रूप धारण कर लिया था । बनारस के लगभग 25 स्थानों पर पुलिस द्वारा गोलीबारी की घटनाएं हुईं , जिससे आंदोलन की तीव्रता और जनाक्रोश का अनुमान लगाया जा सकता है । यही नहीं, हजारीबाग जेल से फरार होने के बाद जय प्रकाश नारायण बनारस आए थे और कुछ दिनों के लिए बीएचयू में ठहरे थे ।

स्वतंत्रता आंदोलन और बनारस की पत्रकारिता

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में पत्रकारिता की भूमिका अत्यंत निर्णायक रही । विशेषकर बनारस जैसे सांस्कृतिक और बौद्धिक नगर ने न केवल राष्ट्रीय चेतना को स्वर प्रदान किया , बल्कि उसे जन-जन तक पहुंचाने का माध्यम भी बना । यहां से प्रकाशित पत्र-पत्रिकाएं औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध वैचारिक प्रतिरोध की अग्रणी वाहक बन गईं । वर्ष 1920 में शिवप्रसाद गुप्त द्वारा स्थापित हिंदी दैनिक 'आज' ने इस दिशा में क्रांतिकारी भूमिका निभाई । यह समाचार-पत्र महात्मा गांधी के असहयोग आंदोलन के साथ-साथ जनता में स्वराज और आत्मबल की भावना का संचार करता रहा । 'आज' ने न केवल स्वतंत्रता संग्राम की गतिविधियों को निर्भीकता से प्रकाशित किया, बल्कि हिंदी भाषा के विकास और प्रसार में भी ऐतिहासिक योगदान दिया । यह पत्र आज भी प्रकाशित हो रहा है , जो इसकी ऐतिहासिक विरासत और पत्रकारिता की प्रतिबद्धता का प्रमाण है ।संपादकीय दृष्टि से भी यह पत्र अत्यंत प्रखर था। 1932 में इसके एक लेख में लिखा गया- "घर में आग लगी हो तो उसे बुझाना ही प्राथमिक कर्तव्य होगा , सजाने की चिंता उस समय अनुचित है ।" यह कथन उस कालखंड की राष्ट्रीय प्राथमिकताओं और पत्रकारिता की सजगता को उजागर करता है ।

ब्रिटिश शासन द्वारा जब प्रेस ऑर्डिनेंस लागू कर कई समाचार-पत्रों पर प्रतिबंध लगाया गया , तब बनारस के राष्ट्रवादी पत्रकारों ने गुप्त पत्रिकाओं के माध्यम से प्रतिरोध की परंपरा को जीवित रखा। इसी क्रम में 'रणभेरी' नामक गुप्त पत्रिका का प्रकाशन आरंभ हुआ, जो ब्रिटिश दमन के समक्ष निर्भीकता का प्रतीक बन गई । इसके प्रकाशन को रोकने हेतु कई प्रयास हुए , किंतु यह सतत छपती रही और औपनिवेशिक सत्ता को वैचारिक चुनौती देती रही । इसके अतिरिक्त, बनारस से प्रकाशित अन्य पत्रिकाएं जैसे – रणडंका , रण-चण्डी , रेडफ्लेम और ज्वालामुखी – ने भी जनचेतना के विस्तार और क्रांतिकारी विचारों के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । ये पत्र-पत्रिकाएं केवल समाचार का माध्यम नहीं थीं, बल्कि वे एक वैचारिक युद्धभूमि थीं , जहां शब्दों से सत्ता को चुनौती दी जाती थी। इस प्रकार , बनारस की पत्रकारिता ने न केवल स्वतंत्रता संग्राम को बौद्धिक आधार दिया , बल्कि भारतीय समाज में प्रतिरोध, आत्म-सम्मान और भाषा-संवेदना का भी विकास किया । ये पत्र-पत्रिकाएं आज भी हमारी स्वतंत्रता की कहानी की सजीव गाथा हैं ।

स्वतंत्रता संग्राम में बीएचयू की भूमिका

बनारस हिंदू विश्वविद्यालय (बीएचयू) की स्थापना 1916 में महामना पंडित मदन मोहन मालवीय के नेतृत्व में हुई थी । इस विश्वविद्यालय की आधारशिला केवल उच्च शिक्षा के प्रसार तक सीमित नहीं थी , बल्कि इसका उद्देश्य राष्ट्र के नवनिर्माण के लिए ऐसे जागरूक नागरिकों को तैयार करना भी था , जो स्वतंत्रता , आत्मसम्मान और सामाजिक जिम्मेदारी के मूल्यों में विश्वास रखते हों । स्थापना के समय भारत अंग्रेजी शासन के विरुद्ध स्वतंत्रता संग्राम की आग में जल रहा था । ऐसे समय में बीएचयू केवल शिक्षा का केंद्र न रहकर एक विचारधारा का प्रतीक बन गया। विश्वविद्यालय के शिक्षक और छात्र राष्ट्रवादी आंदोलनों में बढ़-चढ़कर भाग लेने लगे । 1920-22 के असहयोग आंदोलन में प्रो. जे.बी. कृपलानी के मार्गदर्शन में कई विद्यार्थियों ने अपनी पढ़ाई बीच में छोड़कर गांधी जी के आंदोलन में सक्रिय योगदान दिया ।

क्रांतिकारी गतिविधियों में भी बीएचयू की भूमिका उल्लेखनीय रही । विश्वविद्यालय के छात्रावासों में क्रांतिकारियों की गुप्त बैठकें होती थीं , जिनमें बंगाल और उत्तर प्रदेश के प्रमुख क्रांतिकारी नेता शामिल होते थे । 1930 के सविनय अवज्ञा आंदोलन के समय महामना मालवीय स्वयं आंदोलन में सम्मिलित हुए । बीएचयू के छात्रों के जत्थे अन्य जिलों में भी भेजे गए ताकि आंदोलन को व्यापक रूप दिया जा सके । 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान विश्वविद्यालय का वातावरण पूरी तरह विद्रोही हो उठा । नौ अगस्त की शाम प्रो. यू.ए. असरानी, डॉ. के.एन. गैरोला और प्रो. राधेश्याम के नेतृत्व में एक विशाल जुलूस टाउन हॉल

तक गया, जिसमें "भारत छोड़ो" और "करो या मरो" के नारे गूंजे । सभा के बाद लौटते समय छात्रों ने दुकानों और सिनेमा हॉलों को बंद कराया । आंदोलन का मुख्य संचालन बीएचयू के बिरला छात्रावास में प्रो. राधेश्याम के आवास पर होता था , जबकि लंका क्षेत्र में बाबू शिवप्रसाद गुप्त के मकान को नगर के छात्रों के लिए भर्ती केंद्र बनाया गया था । अंग्रेजी प्रशासन ने इन गतिविधियों को गंभीरता से लिया । डॉ. गैरोला, प्रो. राधेश्याम और उस समय छात्र रहे राजनारायण को फरार घोषित कर दिया गया । विश्वविद्यालय एक प्रकार से क्रांतिकारियों का गढ़ बन गया, जहां मुख्य द्वार से लेकर छात्रावास तक विद्यार्थियों की निगरानी रहती थी । संदिग्ध व्यक्तियों को पकड़कर छात्रावास के कमरों में रखा जाता था । वायसराय ने आरोप लगाया कि पूर्वी उत्तर प्रदेश में हुई तोड़फोड़ के लिए बीएचयू के शिक्षक और छात्र विशेष रूप से जिम्मेदार हैं। प्रशासन ने विश्वविद्यालय को अस्पताल में बदलने की चेतावनी दी । दबाव में आकर कुलपति ने डॉ. गैरोला और प्रो. राधेश्याम की सेवाएं समाप्त कर दीं और कई छात्रों को निष्कासित कर दिया । अंततः विश्वविद्यालय पर सेना ने नियंत्रण स्थापित कर लिया । इस प्रकार, बीएचयू केवल शिक्षा का केंद्र नहीं रहा, बल्कि स्वतंत्रता संग्राम का सक्रिय मोर्चा भी बन गया । यहां की दीवारों ने नारे सुने, छात्रावासों ने रणनीतियां बनते देखीं और कक्षाओं ने आजादी की अलख जगाई । यह विश्वविद्यालय भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के उन प्रखर अध्यायों में से एक है, जिसे इतिहास सदैव गर्व से याद रखेगा ।

स्वतंत्रता संग्राम में काशी विद्यापीठ की भूमिका

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में शिक्षा को केवल ज्ञानार्जन का माध्यम न मानकर , उसे स्वतंत्रता के लिए संघर्ष की रणनीति का एक सशक्त साधन माना गया । इसी विचारधारा से अनुप्राणित होकर 10 फरवरी , 1921 को काशी (वाराणसी) में काशी विद्यापीठ की स्थापना की गई । यह संस्था महात्मा गांधी के असहयोग आंदोलन की पृष्ठभूमि में राष्ट्रीय शिक्षा के प्रसार और आत्मनिर्भरता के विकास हेतु एक वैकल्पिक शैक्षिक ढांचे के रूप में सामने आई । काशी विद्यापीठ की स्थापना का उद्देश्य ब्रिटिश नियंत्रित शिक्षा प्रणाली से भिन्न एक ऐसी शिक्षण व्यवस्था विकसित करना था , जो भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों , स्वदेशी चेतना और राष्ट्रीय स्वाभिमान पर आधारित हो । यहां अध्ययन करने वाले विद्यार्थी केवल ज्ञानार्जन तक सीमित नहीं थे, वे स्वाधीनता आंदोलन के सक्रिय कार्यकर्ता भी बने । काशी विद्यापीठ के छात्रों और शिक्षकों ने न केवल असहयोग आंदोलन , बल्कि सविनय अवज्ञा आंदोलन और भारत छोड़ो आंदोलन में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई । काशी विद्यापीठ द्वारा संचालित कुमार विद्यालय में अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों में चंद्रशेखर आजाद जैसे क्रांतिकारी भी शामिल थे , जिन्होंने सशस्त्र क्रांतिकारी आंदोलन को सैद्धांतिक दिशा और साहसी नेतृत्व प्रदान किया । इस संस्थान ने विद्यार्थियों में केवल अकादमिक चेतना नहीं , बल्कि देशभक्ति , बलिदान और सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना भी विकसित की । काशी विद्यापीठ को राष्ट्रीय आंदोलन का बौद्धिक केंद्र बनाने में जिन महापुरुषों का योगदान उल्लेखनीय रहा , उनमें डा. भगवान दास, आचार्य नरेंद्र देव , जे. बी. कृपलानी , डॉ. संपूर्णानंद तथा मुंशी प्रेमचंद जैसे मनीषियों के नाम प्रमुख हैं । ये न केवल शिक्षा के माध्यम से स्वराज की भावना को पुष्ट कर रहे थे , बल्कि प्रत्यक्ष रूप से आंदोलनों का नेतृत्व भी कर रहे थे । काशी विद्यापीठ की भूमिका को केवल एक शैक्षणिक संस्थान के रूप में सीमित करके नहीं देखा जा सकता ; यह भारत के स्वतंत्रता संग्राम का एक जीवंत और गतिशील केंद्र था, जिसने राष्ट्र को क्रांतिकारी विचार , नेतृत्व और मूल्य-निष्ठ शिक्षा प्रदान की ।

निष्कर्ष

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि बनारस राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम का एक महत्त्वपूर्ण केंद्र रहा , जिसने विभिन्न चरणों में राजनीतिक चेतना , जनांदोलन और क्रांतिकारी गतिविधियों को सशक्त आधार प्रदान किया। इस क्षेत्र ने केवल संघर्ष की भूमि के रूप में नहीं , अपितु एक वैचारिक और सांस्कृतिक प्रेरणा स्रोत के रूप में भी कार्य किया । बनारस की जनता, उसके शैक्षणिक संस्थान , पत्रकारिता, धार्मिक-सांस्कृतिक संगठन तथा क्रांतिकारी गतिविधियाँ – सभी ने स्वतंत्रता संग्राम की विविध धाराओं को संगठित और गति प्रदान की । इतिहास के आलोचनात्मक अध्ययन से यह तथ्य पुष्ट होता है कि बनारस ने न केवल राष्ट्रीय आंदोलन के स्वरूप को आकार देने में योगदान दिया, बल्कि यहां के योगदान ने भारतीय राष्ट्रवाद को जन-आधारित , समावेशी और सशक्त बनाया । अतः यह उपयुक्त प्रतीत होता है कि बनारस के स्वतंत्रता संग्राम में योगदान का मूल्यांकन व्यापक भारतीय इतिहास की धारा में किया जाए, ताकि स्थानीय आंदोलनों की महत्ता को समुचित स्थान मिल सके ।

संदर्भ ग्रंथ

1. सिंह, ठाकुर प्रसाद , "स्वतंत्रता आंदोलन और बनारस" , विश्वविद्यालय प्रकाशन , वाराणसी , 1990 ।
2. सिंह , राघवेन्द्र प्रसाद , " वाराणसी और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस 1947-74 , नाॅदर्न बुक सेंटर , नई दिल्ली ।
3. शर्मा विश्वनाथ भारत का राजनीतिक उत्थान और काशी आज वाराणसी 1952
4. राष्ट्रीय आंदोलन का प्रमुख केंद्र काशी आज वाराणसी 23 नवंबर 1952 पेज 7
5. त्रिपाठी , कमलापति , "कांग्रेस के इतिहास में काशी का स्थान" , बनारस , 1935
6. हांडा , राजेंद्रलाल , "देसी रियासतों में स्वाधीनता संग्राम का इतिहास" , स्टलिंग पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड , 1969
7. सुमन, रामनाथ, उत्तर प्रदेश में महात्मा गान्धी , लखनऊ, 1969
8. पाण्डेय, बलराम, काशी राज्य और कांग्रेस का इतिहास, बनारस, 1948
9. वर्मा, संपूर्णानंद, चेतसिंह और काशी का विद्रोह, पिलग्रिम्स पब्लिशिंग, वाराणसी, 2005
10. https://indianculture.gov.in/varanasi/historiccity-freedom-Movement (20 अप्रैल, 2025 को अंतिम बार देखी गई)
11. https://indianculture.gov.in/digital-district-repository/district-repository/banaras-hindu-university-and-its-role-freedom (20 अप्रैल, 2025 को अंतिम बार देखी गई)
12. https://amritmahotsav.nic.in/district-reopsitory-detail.htm?16842 (20 अप्रैल, 2025 को अंतिम बार देखी गई)

काशी की दैनिक धार्मिक प्रथाएँः सामाजिक समरसता का ऐतिहासिक अध्ययन

सूरज नाथ*

परिचय

काशी, जिसे वाराणसी या बनारस भी कहा जाता है, दुनिया के सबसे पुराने बसे हुए शहरों में से एक है और भारत के धार्मिक और सांस्कृतिक वातावरण में एक अनूठी भूमिका निभाता है। 'वाराणसी को आमतौर पर भारत का सबसे पवित्र शहर माना जाता है, विशेष रूप से हिंदू धर्म के संबंध में यह सबसे पवित्र शहर है।'[1] परन्तु, वैदिक साक्ष्यों के आधार पर इसके अन्य पहलुओं की भी पुष्टि होती है। 'वैदिक और बौद्ध साहित्य में कहा गया है धर्म के साथ-साथ काशी और वाराणसी भारत के प्रमुख व्यापारिक और सांस्कृतिक स्थल के रूप में भी महत्त्व रखते थे।'[2] इसे अक्सर भारत की आध्यात्मिक राजधानी कहा जाता है, और इसका अच्छा कारण है: तीन हजार वर्षों से अधिक समय से, यह अध्ययन, भक्ति और अनुष्ठान का मुख्य केंद्र रही है। काशी, जो पवित्र गंगा नदी के किनारे स्थित है, भारत की सभ्यतागत निरंतरता का जीवित प्रमाण है, जो प्राचीन रीति-रिवाजों को आधुनिक जीवन के साथ जोड़ती है।

यह शहर केवल एक भौगोलिक स्थान नहीं है; यह एक पवित्र ब्रह्मांड है, जहाँ हर गंगा घाट, सड़क और मंदिर एक बड़े धार्मिक और आध्यात्मिक माहौल में योगदान करते है। अनुष्ठान जीवन की दैनिक लय में गहरे रूप से घुलमिल जाते हैं, न कि केवल दुर्लभ धार्मिक अनुष्ठान तक सीमित होते हैं। गंगा में प्रातः काल स्नान से लेकर दशाश्वमेध घाट पर विस्तृत गंगा आरती तक, ये परंपराएँ विविध प्रकार के लोगों को शामिल करती हैं और धार्मिक तथा सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति करती हैं।

काशी में अनुष्ठान एक जीवित परंपरा है, जो लोगों को उनके समुदाय और एक साझा समय, स्थान और उद्देश्य से जोड़ती है। ये अनुष्ठान अक्सर सार्वजनिक और सहभागी होते हैं, जिसके परिणामस्वरूप समावेशी वातावरण बनता है, जिसमें जाति, वर्ग, और यहां तक कि धार्मिक सीमाओं का समझौता किया जाता है, यदि पूरी तरह से समाप्त नहीं किया जाता। इसके परिणामस्वरूप, काशी का अनुष्ठानिक जीवन एक महत्वपूर्ण दृष्टिकोण प्रदान करता है, जिसके माध्यम से भारत में सामाजिक शांति और सांस्कृतिक लचीलेपन की गतिशीलता का अन्वेषण किया जा सकता है।

यह अध्ययन काशी में प्रतिदिन होने वाली अनुष्ठानिक गतिविधियों और सामाजिक सौहार्द के व्यापक उद्देश्य के बीच जटिल संबंध की जांच करता है। इन गतिविधियों के माध्यम से यह समझने का प्रयास जाता है कि ये गतिविधियाँ सांस्कृतिक मूल्यों के हस्तांतरण, सामाजिक एकता को बनाए रखने और व्यक्तिगत भेदों से परे एक सामूहिक पहचान को बढ़ावा देने के रूप में कैसे कार्य करती हैं। यह उन समस्याओं की भी पड़ताल करता है, जिनका इन परंपराओं को आधुनिकीकरण, वाणिज्यीकरण और पर्यावरणीय गिरावट के परिणामस्वरूप सामना करना पड़ता है, साथ ही इनके संरक्षण और पुनःजीवित करने के लिए सिफारिशें भी प्रस्तुत करता है।

सांस्कृतिक समृद्धि

वाराणसी, जिसे अक्सर भारत की सांस्कृतिक राजधानी कहा जाता है, एक ऐसा शहर है, जो धार्मिक उत्साह, ऐतिहासिक गहराई और कलात्मक अभिव्यक्ति के का एक अनूठा संगम प्रस्तुत करता है। गंगा नदी के तट पर स्थित यह प्राचीन नगर एक जीवंत संग्रहालय की तरह है, जहाँ अतीत और वर्तमान एक सुसंगत निरंतरता में सह-अस्तित्व रखते हैं। वाराणसी की सांस्कृतिक समृद्धि उसके संगीत, नृत्य, शिल्प, त्योहारों और शैक्षणिक संस्थानों में प्रकट होती है, जिससे यह भारत की विशाल और विविध सांस्कृतिक विरासत का एक सूक्ष्म रूप बन जाता है। काशी की सांस्कृतिक समृद्धि का विस्तारपूर्वक वर्णन निम्न प्रकार से है:-

संगीत और नृत्यः

* शोध छात्र, इतिहास विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी Email- yadavsurajnath95@bhu.ac.in

वाराणसी सदियों से भारतीय शास्त्रीय संगीत और नृत्य का एक महत्वपूर्ण केंद्र रहा है। यह शहर कई प्रसिद्ध संगीतकारों और नृत्यकारों की जन्मस्थली है, जिन्होंने भारतीय शास्त्रीय कलाओं में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। वाराणसी बनारस घराने का केंद्र है, जो भारतीय शास्त्रीय संगीत के छह प्रमुख घरानों में से एक माना जाता है। यह घराना सितार और तबला वादन की अपनी विशिष्ट शैली के साथ-साथ गायन के लिए भी प्रसिद्ध है। मंदिरों और घाटों पर पारंपरिक संगीत प्रस्तुतियाँ अक्सर आयोजित की जाती हैं, जो श्रोताओं को आत्मा को स्पर्श करने वाला अनुभव प्रदान करती हैं।

हस्तशिल्प और बुनाई:

बनारसी रेशमी साड़ी, वाराणसी की बुनाई कला की प्रतीक, अपनी बेजोड़ सुंदरता और जटिल डिजाइनों के लिए पूरे विश्व में प्रसिद्ध है। ये साड़ियाँ बारीक बुने हुए रेशम से बनाई जाती हैं और उन पर सुंदर नक़्क़ाशी की जाती है, जिससे ये एक कीमती धरोहर और भारतीय परंपरा का प्रतीक बन जाती हैं। वाराणसी में रेशम बुनाई की कला केवल एक शिल्प नहीं, बल्कि एक विरासत है जो पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही है, और यह शहर की अपनी सांस्कृतिक विरासत को संजोकर रखने की प्रतिबद्धता को दर्शाती है।

त्योहार:

वाराणसी का सांस्कृतिक परिदृश्य इसके जीवंत त्योहारों से चिह्नित होता है, जिन्हें अत्यंत उत्साह और आध्यात्मिक गहनता के साथ मनाया जाता है। देव दीपावली की भव्यता, जब घाटों को हजारों दीपों से आलोकित किया जाता है, से लेकर प्रतिदिन संपन्न होने वाली पवित्र गंगा आरती तक, ये सभी उत्सव शहर की गहन धार्मिक और सांस्कृतिक परंपराओं को दर्शाते हैं। अन्य प्रमुख उत्सवों में महाशिवरात्रि शामिल है, जो भगवान शिव को समर्पित है, और होली, रंगों का त्योहार, जो वाराणसी की गलियों को संगीत, नृत्य और सामूहिक उल्लास से जीवंत कर देता है।

शैक्षिक विरासत:

'राष्ट्रीय परिदृश्य में वाराणसी एक विशेष सांस्कृतिक और राजनीतिक प्रासंगिकता रखता है: इसे ज्ञान और शिक्षा के केंद्र के रूप में जाना जाता है, संभवतः पारंपरिक शिक्षा के संबंध में यह सबसे प्रतिष्ठित है, और यह भारत के महान तीर्थ स्थलों में से एक है।'[3] काशी हिंदू विश्वविद्यालय (बीएचयू), जिसकी स्थापना पंडित मदन मोहन मालवीय ने 1916 में की थी, वाराणसी की शिक्षा और सांस्कृतिक संरक्षण के प्रति प्रतिबद्धता का एक जीवंत प्रमाण है। बीएचयू एशिया के सबसे बड़े आवासीय विश्वविद्यालयों में से एक है, जिसका विशाल परिसर कला, विज्ञान और आध्यात्मिक अध्ययन सहित विभिन्न क्षेत्रों में पाठ्यक्रम प्रदान करता है। यह विश्वविद्यालय सांस्कृतिक गतिविधियों का भी एक प्रमुख केंद्र है, जहाँ सेमिनार, कार्यशालाएँ और प्रदर्शनियाँ आयोजित की जाती हैं, जो वाराणसी की बौद्धिक और सांस्कृतिक जीवंतता में योगदान करती हैं।

पारंपरिक भोजन:

वाराणसी का पाक-परिदृश्य इसकी संस्कृति जितना ही विविध है, जो पारंपरिक व्यंजनों की एक ऐसी श्रृंखला प्रस्तुत करता है जो स्वाद को मंत्रमुग्ध कर देती है। शहर की गलियाँ चाट, लस्सी, कचौरी और जलेबी, रबड़ी जैसे मिठाइयों के विक्रेताओं से सजी होती हैं, जो इस क्षेत्र की समृद्ध खाद्य परंपरा को दर्शाती हैं। प्रत्येक व्यंजन वाराणसी की सांस्कृतिक समरसता और यहाँ के लोगों के दैनिक जीवन की कहानी बयाँ करता है।

काशी में दैनिक अनुष्ठानों का वर्णनात्मक अवलोकन

काशी का दैनिक धार्मिक जीवन एक निरंतर प्रवाहित होने वाली आध्यात्मिक गतिविधियों की श्रृंखला है, जो भोर से पहले शुरू होती है और देर रात तक चलती रहती है। ये अनुष्ठान एक पवित्र लय का निर्माण करते हैं, जो शहर की समय-संरचना और सामाजिक व्यवस्था को संगठित करता है। वाराणसी और घाट सिर्फ़ पवित्र अनुष्ठान करने की जगह नहीं हैं। 'बल्कि यह वो जगह भी हैं जहाँ रोज़मर्रा की गतिविधियाँ होती हैं, जहाँ लोग कपड़े धोते हैं, दांत साफ करते हैं, क्रिकेट खेलते हैं, काम करते हैं, बस मौज-मस्ती करते हैं और चाय का लुफ्त उठाते हैं।'[4]

दिन की शुरुआत गंगा में पवित्र स्नान से होती है। हजारों श्रद्धालु और यात्री इस स्नान के द्वारा पापों से मुक्ति और आत्मा की शुद्धि का विश्वास रखते हैं। अस्सी और दशाश्वमेध घाट भजन, प्रार्थना और गंगा लहरी के पाठ से गूंज उठते हैं। इसके बाद लोग मंदिरों की ओर प्रस्थान करते हैं, विशेष रूप से काशी विश्वनाथ मंदिर की ओर। यहाँ भक्त फूल, दूध, बेलपत्र और मंत्रों के साथ पूजा करते हैं। यह अनुष्ठान केवल व्यक्तिगत आस्था नहीं, बल्कि सामुदायिक एकता को भी प्रकट करते हैं। दिन भर छोटे मंदिरों, घरों की वेदियों, और सड़क किनारे के देवस्थलों पर पूजा होती रहती है। रामायण और महाभारत पर आधारित कथाएँ सुनाई जाती हैं, जो नैतिक और धार्मिक शिक्षा देती हैं।

मणिकर्णिका और हरिश्चंद्र घाटों पर अंतिम संस्कार की क्रियाएँ दिन-रात चलती रहती हैं। यहां मरना और यहीं दाह संस्कार होना मोक्ष प्राप्ति का माध्यम माना जाता है। यहां मृत्यु का सार्वजनिक अनुभव जीवन की अस्थिरता और आध्यात्मिकता को गहराई से दर्शाता है।[5]

दशाश्वमेध घाट पर "गंगा आरती", "देव दीपावली", "छठ पूजा", "गंगा दशहरा" जैसे कई अन्य अनुष्ठान और प्रार्थनाएँ की जाती हैं। गंगा आरती, दशाश्वमेध घाट पर ब्राह्मण पुजारियों द्वारा दिन में दो बार देवी गंगा को श्रद्धा अर्पित की जाती है। जबकि, हर मंगलवार को विशेष आरती की जाती है। 'यह भगवान शिव, गंगा नदी, सूर्य (सूर्य), अग्नि (अग्नि) और पूरे ब्रह्मांड को श्रद्धांजलि देने का एक अनुष्ठान है।'[6] यह प्रक्रिया पुजारी सामूहिक पोशाक में दीपक, शंख, घंटियाँ और मंत्रों के साथ पूजा करते हैं। यह दृश्य जनसमूह को एक आध्यात्मिक एकता में बाँधता है। इन सब के साथ-साथ, घरों में भी आरती, दीयों का जलाना और गीता पाठ जैसे अनुष्ठान होते हैं, जो पीढ़ियों में धार्मिक परंपरा के हस्तांतरण का माध्यम बनते हैं।

गंगा तट अनेक त्योहारों का केंद्र है, जिनमें देव दीपावली प्रमुख है। इसके अतिरिक्त सारनाथ, जहाँ बुद्ध ने पहला उपदेश दिया, बौद्ध श्रद्धालुओं के लिए महत्वपूर्ण तीर्थ स्थल है। काशी में जैन मंदिर भी हैं और मुस्लिम समुदाय की नमाज जैसे अनुष्ठान सार्वजनिक स्थानों में भी होते हैं, जिससे वे साझा सांस्कृतिक अनुभूति का हिस्सा बनते हैं। ये अनुष्ठान स्थानीय अर्थव्यवस्था को भी गति देते हैं, क्योंकि पुजारी, नाविक, संगीतकार, और विक्रेता सभी इसमें भाग लेते हैं।

दैनिक अनुष्ठानों की सामाजिक समरसता में भूमिका

काशी के धार्मिक स्थल - घाट, मंदिर, मस्जिदें, दरगाहें - शहर की भौगोलिक बनावट में गहराई से जुड़े हैं। ये स्थान धार्मिक होते हुए भी किसी एक समुदाय तक सीमित नहीं हैं। वाराणसी के अधिकांश घाट उत्सवों और अनुष्ठानों के लिए सक्रिय स्थान हैं, जो ऐतिहासिक अतीत से चली आ रही परंपरा का निर्वहन करते है।[7] काशी के पवित्र स्थल व्यक्तियों के बीच धार्मिक सहिष्णुता की स्थापना में योगदान करते हैं। दूसरे शब्दों में 'धार्मिक और पवित्र स्थलों का अवलोकन करके, विभिन्न विश्वास, संस्कृति और समाज के लोगों को एक ऐसा अवसर प्राप्त हो सकता है, जिसके माध्यम से वे कई धार्मिक परंपराओं को समझ सकते हैं।'[8]

सामूहिक सहभागिता और साझा पहचान:

हर सुबह वाराणसी के घाटों पर तीर्थयात्री और स्थानीय निवासी स्नान करते हैं, प्रार्थनाएँ अर्पित करते हैं, और गंगा में पुष्प अर्पण बहाते हैं।[9] यह सामूहिक सहभागिता–जहाँ शरीर, प्रार्थनाएँ और संकल्प एकत्र होते हैं–समुदाय की एक सजीव अनुभूति उत्पन्न करती है। घाटों पर भीड़ होती है, वातावरण में धूप की खुशबू, मंत्रों की ध्वनि, और पूजा सामग्रियों की दृश्यात्मक छटा भर जाती है। ऐसे साझा अनुभव सामाजिक सीमाओं को धुंधला कर देते हैं, जिससे विभिन्न पृष्ठभूमियों के लोग एक साथ भाग लेते हैं और सामूहिक पहचान को सुदृढ़ करते हैं।

परंपरा और निरंतरता:

दैनिक अनुष्ठान एक तेजी से बदलती दुनिया में निरंतरता की भावना प्रदान करते हैं। इन प्रथाओं की नियमितता और पूर्वानुमेयता– जैसे प्रातःकालीन स्नान, मंदिर दर्शन, और संध्या आरती–विशेष रूप से अस्थिरता के समय में स्थिरता और सांत्वना प्रदान करती है। ये वर्तमान पीढ़ी को उनके पूर्वजों और काशी की शाश्वत आध्यात्मिक विरासत से जोड़ती हैं, जिससे उन्हें एक गहरी जुड़ाव और अपनापन महसूस होता है।

सामाजिक बंधन के रूप में अनुष्ठान

पूजा (उपासना) और अन्य दैनिक अनुष्ठानों का कार्य सामाजिक एकता के लिए एक महत्वपूर्ण माध्यम के रूप में कार्य करता है। ये नियमित रूप से लोगों को आपस में मिलने, अभिवादन करने और आध्यात्मिक तथा व्यावहारिक मामलों में एक-दूसरे की सहायता करने के अवसर प्रदान करते हैं। ये प्रथाएं विश्वास और पारस्परिक सम्मान को पोषित करती हैं, जिससे वे काशी की सामाजिक संरचना की आधारशिला बन जाती हैं।

समावेशिता और सहिष्णुता:

काशी की दैनिक प्रथाएँ सभी के लिए खुली हैं, चाहे वे किसी भी जाति, धर्म या सामाजिक स्थिति से हों। इन अनुष्ठानों का समावेशी स्वभाव–जहाँ हर कोई स्नान करने, प्रार्थना करने या समारोहों में भाग लेने के लिए स्वागत योग्य होता है–सहिष्णुता और समझ को बढ़ावा देता है। यह समावेशिता शहर के हिंदू-मुस्लिम एकीकरण और सामंजस्यपूर्ण सह-अस्तित्व के मॉडल द्वारा प्रदर्शित होती है, जहाँ विभिन्न धर्मों के लोग आपसी सम्मान और सहयोग में एक साथ आते हैं। काशी सिर्फ हिन्दू धर्म का ही केंद्र नहीं रहा है, बल्कि सभी धर्मों ने काशी को आत्मसात किया है। इसी विशेषता के कारण 'काशी में रहने वाले व्यक्ति को न सिर्फ अपने धर्म बल्कि अन्य धर्मों, मानदंडों और मूल्यों के बारे में ज्ञान रखने से उनके जीवन में बदलाव लाने में मदद मिलती है, और उनमें नैतिकता और आचार-विचार के गुण भी विकसित होते हैं।'[10]

भावनात्मक और मानसिक कल्याण:

दैनिक अनुष्ठानों में भाग लेना भावनात्मक शांति और मानसिक आराम प्रदान करता है। मंत्रों की लयबद्ध ध्वनि, धूप की खुशबू, और समारोहों की दृश्यात्मक सुंदरता एक शांतिपूर्ण और ध्यानपूर्ण वातावरण उत्पन्न करती है। शांति और भक्ति का यह सामूहिक अनुभव व्यक्तिगत और सामूहिक कल्याण में योगदान करता है, और सामाजिक बंधनों को और भी मजबूत करता है।

निष्कर्ष

काशी (वाराणसी) शहर, जो दुनिया के सबसे पुराने लगातार बसे हुए शहरी केंद्रों में से एक है, इस बात का जीवित प्रमाण है कि कैसे अनुष्ठानिक प्रथाएँ सामाजिक सौहार्द को बढ़ावा दे सकती हैं और उसे बनाए रख सकती हैं। दैनिक अनुष्ठानों का जटिल जाल–जो घरों, घाटों और मंदिरों में किया जाता है, केवल एक आध्यात्मिक दिनचर्या से कहीं अधिक है; यह एक गतिशील ढांचा है जो सामाजिक जीवन को संगठित करता है, सामूहिक मूल्यों की पुष्टि करता है, और आपसी रिश्तों को पोषित करता है। ये अनुष्ठान, जो विभिन्न जाति, वर्ग और पेशेवर समूहों के व्यक्तियों द्वारा किए जाते हैं, साझा लय और स्थानों का निर्माण करते हैं, जहाँ लोग एकत्र होते हैं, बातचीत करते हैं, और शांति से सह-अस्तित्व करते हैं।

प्रातःकालीन गंगा आरती और नदी के किनारे स्नान से लेकर संध्या दीप अर्पण और संकरी गलियों में जुलूस तक, ये दैनिक क्रियाएँ निरंतरता, पहचान और समुदाय की भागीदारी के तंत्र के रूप में कार्य करती हैं। जैसे कि एकादशी व्रत, मणिकर्णिका घाट पर मृत्यु संस्कार, और देव दीपावली के दौरान उत्सव जुलूस–ये सभी सामूहिक महत्व से परिपूरित होते हैं। ये ऐसे क्षण प्रस्तुत करते हैं, जहाँ सामाजिक भेद-भाव को हल्का किया जाता है और सामूहिक जुड़ाव को पुनः पुष्टि की जाती है। इन अनुष्ठानों में भागीदारी आपसी पहचान और सम्मान को बढ़ावा देती है, और धार्मिक विविधता और जनसंख्या घनत्व से भरे इस शहर में सामाजिक एकता को मजबूत करती है।

इसके अतिरिक्त, इन प्रथाओं का पीढ़ी दर पीढ़ी संचरण आध्यात्मिक ज्ञान और सामाजिक मानदंडों की अंतरपीढ़ी निरंतरता सुनिश्चित करता है। बुजुर्ग युवा पीढ़ी को प्रदर्शन और कहानी कहने के माध्यम से मार्गदर्शन करते हैं, जिससे अनुष्ठान सांस्कृतिक शिक्षा के वाहन बन जाते हैं। साथ ही, इन प्रथाओं की अनुकूलता उन्हें आधुनिक चुनौतियों का सामना करने की अनुमति देती है–चाहे वह पर्यावरण-अवधान अनुष्ठान हो, अंतरधार्मिक सहयोग हो, या डिजिटल भागीदारी–जो इन्हें समकालीन समाज में प्रासंगिक बनाए रखते हैं।

महत्वपूर्ण बात यह है कि काशी में अनुष्ठानों की भूमिका केवल हिंदू बहुसंख्या तक सीमित नहीं है। इस शहर में जैन, बौद्ध, मुस्लिम और ईसाई समुदायों को भी स्थान दिया गया है, जिनकी अपनी प्रथाएँ साझा शहरी और आध्यात्मिक परिदृश्य में एक-दूसरे से मेल खाती हैं। यह विविधता, जो अक्सर संघर्ष का स्रोत बन सकती है, शहर के अनुष्ठानिक जीवन के माध्यम से सुलझाई जाती है। सार्वजनिक और अर्द्ध-सार्वजनिक स्थानों में दैनिक प्रथाएँ संवाद, सहिष्णुता और वार्ता के अनौपचारिक मंच के रूप में कार्य करती हैं।

अंत में, काशी के दैनिक अनुष्ठान केवल पूजा के पृथक कृत्य नहीं हैं। ये एक जीवित परंपरा हैं, जो व्यक्तियों को पवित्र, एक-दूसरे से और शहर से जोड़ती हैं। ये प्रथाएँ सांस्कृतिक अभिवाहन के रूप में कार्य करती हैं, जो व्यक्तिगत भक्ति और सामूहिक सौहार्द के बीच नाजुक संतुलन बनाए रखती हैं। एक ऐसे संसार में, जहाँ विखंडन और सामाजिक विभाजन बढ़ रहा है, काशी का अनुष्ठानिक जीवन यह दर्शाता है कि निरंतरता, अनुकूलता और साझा आध्यात्मिक प्रथा कैसे एक अधिक सामंजस्यपूर्ण और एकजुट समाज को बढ़ावा दे सकती है।

सन्दर्भ सूची

1. क्रिस्टियन ज़रा (2011), सेक्रेड जौर्नेस एंड प्रोफाने ट्रैवेलर्स: रिप्रजेंटेशन एंड स्पाटिअल प्रैक्टिस इन वाराणसी (इंडिया), प. 21.
2. मोतीचंद्र (1962), काशी का इतिहास, हिंदी ग्रन्थ रत्नाकर प्रा. लि., 31.
3. क्रिस्टियन ज़रा (2011), 22.
4. क्रिस्टियन ज़रा (2011), 22.
5. एडविन ग्रीव्स (1909), काशी: द सिटी इल्लुस्त्रियस और बनारस, इल्लाहाबाद: द इंडियन प्रेस, 50.
6. राधिका कपूर (2018), सिग्नीफिकेन्स ऑफ़ कल्चर एंड रिलिजन इन द सिटी ऑफ़ बनारस.
7. आइकोनिक रिवर्फ्रौंट ऑफ़ द हिस्टोरिक सिटी ऑफ़ वाराणसी. **https://whc.unesco.org/en/tentativelists/6526/**
8. सेमिल Kutlutürk (2013), सिग्नीफिकेन्स ऑफ़ वाराणसी इन टर्म्स ऑफ़ इंडियन रेलगिओंस, IOSR-JHSS, वॉल. 1(2), 39.
9. इ.बी. हवेल (1905), बनारस द सेक्रेड सिटी, लंदन: ब्लैकी & सन्स लि., 100.
10. राधिका कपूर (2018), सिग्नीफिकेन्स ऑफ़ कल्चर एंड रिलिजन इन द सिटी ऑफ़ बनारस.

काशी की सांस्कृतिक धरोहर के संवर्धन में अहिल्याबाई होलकर का योगदानः एक ऐतिहासिक अध्ययन

ट्विंकल सिंह*

डॉ० मीरा त्रिपाठी**

सार :

काशी, जिसे भारतीय संस्कृति का महत्वपूर्ण केंद्र माना जाता है, न केवल धार्मिक आस्था का प्रतीक है, बल्कि यह ज्ञान और कलात्मकता का भी प्रमुख स्थल है। यहाँ की गंगा नदी के तट पर स्थित घाट और प्राचीन मंदिर इस नगर की समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर को दर्शाते हैं। काशी, जिसे महाजनपदकाल से भारतीय सभ्यता का हृदय माना जाता है, अपनी धार्मिक और सांस्कृतिक विरासत के लिए विख्यात रही है। युगों-युगों तक, यह नगर भारतीय संस्कृति, धर्म, और शिक्षा का केंद्र रहा है। 18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जब काशी अपने प्राचीन वैभव को खो रही थी, तब महारानी अहिल्याबाई होलकर ने इसे एक नई सांस्कृतिक दिशा दी।

हमारा यह शोध-पत्र "काशी की सांस्कृतिक धरोहर के संवर्धन में अहिल्याबाई होलकर का योगदान : एक ऐतिहासिक अध्ययन" के माध्यम से काशी के धार्मिक और सांस्कृतिक पुनर्जागरण में महारानी अहिल्याबाई होलकर के अभूतपूर्व योगदान का विश्लेषण करता है।

अहिल्याबाई ने काशी के प्रमुख धार्मिक स्थलों जैसे काशी विश्वनाथ मंदिर, विभिन्न घाटों, धर्मशालाओं और कुंडों का न केवल पुनर्निर्माण कराया, बल्कि इन स्थानों को एक बार पुनः आध्यात्मिक और सांस्कृतिक गतिविधियों का केंद्र बनाया। उनका योगदान केवल संरचनात्मक पुनर्निर्माण तक सीमित नहीं था; उनके कार्यों ने भारतीय समाज में धार्मिक सहिष्णुता, सामाजिक एकता और सांस्कृतिक अभ्युत्थान का एक सशक्त उदाहरण प्रस्तुत किया। उनके द्वारा किया गया पुनर्निर्माण काशी के सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन को पुनर्जीवित करने तथा एक नई चेतना का संचार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

इस शोध पत्र का उद्देश्य ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से यह विश्लेषण करना है कि कैसे अहिल्याबाई होलकर ने काशी की खोई हुई सांस्कृतिक गरिमा को पुनर्स्थापित किया। उनके द्वारा किए गए कार्यों का प्रभाव काशी की धार्मिक पहचान पर किस प्रकार स्थायी रूप से अंकित हो गया, यह इस अध्ययन का केंद्रीय विषय है। अध्ययन के माध्यम से यह भी समझने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार उनके योगदान ने न केवल काशी के सांस्कृतिक परिदृश्य को विकसित किया, बल्कि भारतीय सांस्कृतिक इतिहास को भी एक नए उन्नत स्तर पर पहुँचाया।

मुख्य शब्द : काशी, सांस्कृतिक धरोहर, मंदिर पुनर्निर्माण, धार्मिक स्थल, वाराणसी घाट, सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभाव, ऐतिहासिक पुनर्स्थापना, भारतीय संस्कृति, धर्मशाला।

प्रस्तावना:

काशी, जिसे वाराणसी के नाम से भी जाना जाता है, भारतीय संस्कृति और सभ्यता का एक प्रमुख केंद्र है। यह नगर न केवल धार्मिक आस्था का प्रतीक है, बल्कि ज्ञान, कला और संस्कृति का संगम भी है। काशी का इतिहास लगभग 3000 वर्ष पुराना है और यह भारतीय महाजनपदों में से एक के रूप में विकसित हुआ। गंगा नदी के तट पर स्थित, यह स्थल एक अद्वितीय प्राकृतिक और आध्यात्मिक स्थान के रूप में जाना जाता है।

* शोध छात्रा- इतिहास विभाग, महिला महाविद्यालय, किदवई नगर, कानपुर

मोबाइल न ० - 6307560998, **Email -** singh.twinkle456.ts@gmail.com

** असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, महिला महाविद्यालय, किदवई नगर, कानपुर

महाजनपद काल से ही काशी ने भारतीय सभ्यता में एक विशिष्ट स्थान अर्जित किया है। इसे प्राचीन काल में "काशी" कहा जाता था, जिसका अर्थ "प्रकाश" है। यह नगर सदियों से धर्म, शिक्षा, और संस्कृति का प्रमुख केंद्र रहा है, जहाँ अनेक धार्मिक ग्रंथों की रचना की गई। काशी का उल्लेख वेदों, उपनिषदों और पुराणों में भी मिलता है, जो इसकी धार्मिक और सांस्कृतिक महत्ता को उजागर करता है। मौर्य, गुप्त जैसे विभिन्न साम्राज्यों ने भी काशी के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया, जिससे इसकी सांस्कृतिक धरोहर और भी समृद्ध हुई।

काशी की सांस्कृतिक धरोहर अत्यंत समृद्ध और बहुविध है, जो इसके प्राचीन मंदिरों, घाटों और कुंडों में प्रतिबिंबित होती है। यहां के ऐतिहासिक स्थल इस नगरी की सांस्कृतिक पहचान के प्रतीक हैं। काशी विश्वनाथ मंदिर, जो भगवान शिव को समर्पित है, काशी का सबसे प्रमुख धार्मिक स्थल माना जाता है। इसकी धार्मिक और ऐतिहासिक महत्ता के कारण यह विश्वभर से आने वाले श्रद्धालुओं का केंद्र बना हुआ है।

काशी के घाट, विशेष रूप से दशाश्वमेध घाट और मणिकर्णिका घाट, न केवल धार्मिक अनुष्ठानों का स्थल हैं, बल्कि यह स्थान सामाजिक और सांस्कृतिक गतिविधियों का भी केंद्र है। प्रतिदिन हजारों श्रद्धालु यहाँ गंगा स्नान और धार्मिक क्रियाओं के लिए आते हैं, जिससे इन घाटों की जीवन्तता बनी रहती है।

काशी की एक महत्वपूर्ण विशेषता इसकी धार्मिक सहिष्णुता है, जहाँ विभिन्न धर्मों और जातियों के लोग सदियों से मिलजुल कर रहते आ रहे हैं। बौद्ध, जैन, और हिंदू धर्म के अनुयायी यहाँ समान रूप से आस्था प्रकट करते हैं, जिससे यह नगर एक अद्वितीय सांस्कृतिक संगम बन जाता है। यहाँ के विभिन्न धर्मस्थल, जैसे कमच्छा-भेलपुर क्षेत्र का जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ से जुड़ाव, सारनाथ में भगवान बुद्ध का धर्मचक्र प्रवर्तन, और लहरतारा स्थित कबीर मठ, जो संत कबीरदास की जन्मस्थली मानी जाती है [1], इस धार्मिक विविधता के प्रतीक हैं।

काशी में मनाए जाने वाले धार्मिक उत्सव, जैसे प्रसिद्ध कार्तिक मेला, इस सांस्कृतिक और धार्मिक विविधता को एकजुट करते हैं। इन उत्सवों के दौरान विभिन्न समुदायों के लोग एक साथ आते हैं और अपनी सांस्कृतिक पहचान का उत्साहपूर्वक प्रदर्शन करते हैं, जो काशी की सामूहिक एकता और विविधता का जश्न है।

18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में, जब काशी अपने प्राचीन वैभव को खो रही थी, तब इसे पुनर्जीवित करने की आवश्यकता महसूस हुई। उस समय काशी के धार्मिक और सांस्कृतिक स्थलों की अवहेलना हो रही थी, जिससे उनका महत्त्व घटता जा रहा था। इन विपरीत परिस्थितियों में, महारानी अहिल्याबाई होलकर ने काशी के उत्थान के लिए आवश्यक कदम उठाए और धार्मिक स्थलों को पुनः जीवंत करने का कार्य आरंभ किया। उनके प्रयासों ने काशी के धार्मिक और सांस्कृतिक गौरव को पुनर्स्थापित करने में अहम भूमिका निभाई।

अहिल्याबाई होलकर का काशी जीर्णोद्धार एवं निर्माण कार्य में योगदान :

अहिल्याबाई होलकर एक गहरी धार्मिक आस्था वाली महिला थीं, जो बचपन से ही भगवान शिव की भक्त थीं। उनके व्यक्तिगत जीवन पर उनके माता-पिता और मंदिरों का प्रभाव उनके धार्मिक दृष्टिकोण को मजबूत करने में सहायक रहा। उनका मानना था कि धर्म की रक्षा करने पर ही वह फलता-फूलता है। महेश्वर में स्थित उनके घर में एक सुंदर शिव मंदिर था, जिसने उन्हें मंदिरों के जीर्णोद्धार और निर्माण कार्यों के लिए प्रेरित किया। उन्होंने कई पुराने शिव मंदिरों की मरम्मत करवाई और नए मंदिरों का निर्माण कराया।[2] इस प्रकार, अहिल्याबाई का धार्मिक समर्पण उनके कार्यों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है, जिससे उन्होंने धार्मिक स्थलों को सहेजने और पुनर्जीवित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

अहिल्याबाई होलकर, जो मालवा की रानी थीं, ने काशी में धार्मिक स्थलों के पुनर्निर्माण और विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने काशी विश्वनाथ मंदिर का पुनर्निर्माण कराया, जो कि काशी का सबसे प्रमुख धार्मिक स्थल है। उनका यह कार्य न केवल मंदिर की भव्यता को लौटाने में सफल रहा, बल्कि यह काशी की धार्मिक पहचान को भी पुनर्स्थापित करने का माध्यम बना। अहिल्याबाई का यह कार्य धार्मिक सहिष्णुता और सामाजिक

एकता को बढ़ावा देने वाला था, क्योंकि उन्होंने विभिन्न धर्मों के अनुयायियों के लिए इस स्थल को एक साथ आने का अवसर प्रदान किया।

उन्होंने काशी के विभिन्न घाटों, जैसे दशाश्वमेध घाट और मणिकर्णिका घाट, आदि का भी पुनर्निर्माण किया। इन घाटों का धार्मिक और सांस्कृतिक महत्त्व अत्यधिक है। यहाँ श्रद्धालु गंगा स्नान करने आते हैं और विशेष अनुष्ठान करते हैं। इन घाटों के विकास से न केवल धार्मिक गतिविधियाँ पुनर्जीवित हुईं, बल्कि काशी का सामाजिक जीवन भी जीवंत हो उठा।

अहिल्याबाई होलकर ने काशी में धर्मशालाओं और कुंडों का निर्माण भी कराया, जो यात्रियों और तीर्थयात्रियों के लिए ठहरने और पूजा-पाठ करने के लिए स्थान प्रदान करते थे। उनके द्वारा स्थापित धर्मशालाएँ न केवल आवास का साधन बनीं, बल्कि ये सामाजिक एकता और भाईचारे का प्रतीक भी बनीं। इन स्थानों पर लोग एक साथ आकर धार्मिक अनुष्ठान करते थे और सामाजिक संवाद करते थे, जिससे काशी का सामाजिक ताना-बाना और मजबूत हुआ।

अहिल्याबाई का कार्य केवल सांस्कृतिक और धार्मिक स्थलों के पुनर्निर्माण तक सीमित नहीं था; उन्होंने काशी की सामाजिक संरचना को भी प्रभावित किया। उनकी नीति धार्मिक सहिष्णुता और सामाजिक एकता को बढ़ावा देने की थी, जिससे काशी में विभिन्न समुदायों के लोग एक साथ आ सके।

अहिल्याबाई होलकर ने विभिन्न तीर्थस्थलों के साथ - साथ काशी में भी अन्नछत्र की स्थापना करके तीर्थयात्रियों की सुविधा के लिए एक महत्वपूर्ण कदम उठाया। इस हेतु उन्होंने एक रात्रि के भोजन हेतु 3500 रू० काशी के लिए आवंटित किए। इस अन्नछत्र में उन्होंने श्रद्धालुओं के लिए भोजन की व्यवस्था की, जो केवल एक खाद्य स्थान नहीं था, बल्कि यह सामाजिक सेवा का एक अद्भुत उदाहरण बन गया।[3] उनका अन्नछत्र सभी तीर्थयात्रियों के लिए खुला था, चाहे उनकी सामाजिक या आर्थिक पृष्ठभूमि कुछ भी हो। यह उनकी गहरी सहानुभूति को दर्शाता है और यह बताता है कि उन्होंने अपने कार्यों के माध्यम से समाज की भलाई को प्राथमिकता दी।

आज भी, यात्रादिवस पर निजी होल्कर ट्रस्ट द्वारा एक दिवसीय भोजन छत्र का संचालन किया जाता है, जो अहिल्याबाई की परंपरा को जीवित रखता है और उनकी सेवा भावना को प्रदर्शित करता है। इस प्रकार, काशी में स्थापित अन्नछत्र श्रद्धालुओं के लिए एक महत्वपूर्ण आश्रय स्थल बन गया है, जहां वे न केवल धार्मिक अनुभव प्राप्त करते हैं, बल्कि भोजन और आराम की सुविधाओं का भी लाभ उठा सकते हैं।

अहिल्याबाई होलकर की यह पहल काशी की सांस्कृतिक धरोहर को संजोने में सहायक रही और उन्होंने समाज के विभिन्न वर्गों के लिए समान अवसर प्रदान किया, जिससे उनकी सेवा भावना को और भी गहराई मिली। यह उनके दृष्टिकोण का प्रतीक है, जो न केवल भौतिक विकास बल्कि सामाजिक समरसता के प्रति भी समर्पित है।

1. मंदिरों का पुनर्निर्माण

१.काशी विश्वनाथ मंदिर :

राजघाट और अस्सी घाट के संगम के बीच स्थित काशी विश्वनाथ मंदिर, जिसे "काशी विश्वेश्वर या महेश्वर " भी कहा जाता है। काशी में बारह ज्योतिर्लिंगों में से एक, विश्वेश्वर का ज्योतिर्लिंग स्थित है। यह मंदिर भगवान शिव को समर्पित है।[4]17वीं सदी में ,काशी विश्वनाथ मंदिर विध्वंस का शिकार हुआ। मुग़ल सम्राट औरंगज़ेब ने मंदिर को ध्वस्त कर दिया और उसके स्थान पर एक मस्जिद का निर्माण कराया। इस घटना ने काशी के लोगों में गहरा आक्रोश पैदा किया और इस पवित्र स्थल के पुनर्निर्माण की आवश्यकता को उजागर किया। हालांकि 18 वीं सदी के मध्य तक ,कच्छवाहाओं और मराठा सरदारों द्वारा विश्वेश्वर मंदिर की पुनर्स्थापना के प्रयास करे गए परन्तु शासकीय दमन नीतियों के तहत उन्हें इस कार्य में सफलता प्राप्त न हो सकी।[5]

सर्वप्रथम इस मंदिर के पुनर्निर्माण का अधूरा प्रयास मल्हारराव होलकर द्वारा किया गया तत्पश्चात अहिल्याबाई होलकर द्वारा 18वीं सदी में जीर्णोद्धार कार्य को पूर्ण किया गया। उनके द्वारा नए रूप में काशी विश्वनाथ मंदिर को काले पत्थर से निर्मित किया गया। इसमें तीन ऊंची चोटियां और एक साठ फीट ऊंचा चौक

शामिल है। गर्भगृह के अंदर एक प्राचीन शिवलिंग स्थापित है, जिसके सामने जल तत्व और जीवन के प्रतीक चिह्न के रूप में एक वृहद नंदी और कछुए का प्रतीक बनाया गया है।[6]

इस मंदिर की ऊँचाई 51 फीट है और यह पत्थरों से निर्मित एक सुंदर शिखरदार संरचना है। इसके चारों ओर पीतल से बने द्वार स्थापित हैं, जो इसकी भव्यता को और अधिक आकर्षक बनाते हैं। मंदिर का पश्चिमी हिस्सा गुंबद के आकार वाले जगमोहन से अलंकृत है, जो इसकी स्थापत्य कला का एक विशेष उदाहरण प्रस्तुत करता है।[4]इस मंदिर के निर्माण का कार्य पंजाब के महाराजा रणजीत सिंह ने पूरा किया था।[7] रणजीत सिंह ने 1835 ई० में मंदिर के दो शिखरों की छतों को स्वर्णमंडित करवाया।[8]

काशी विश्वनाथ मंदिर का घण्टा नेपाली राजाओं द्वारा प्रदान किया गया है, जो इस मंदिर की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विरासत को और भी समृद्ध बनाता है।[9]

अहिल्याबाई का यह योगदान केवल एक मंदिर का पुनर्निर्माण नहीं था; यह काशी के सांस्कृतिक जीवन को भी पुनर्जीवित करने में सहायक था। अहिल्याबाई होलकर की सेवा और नेतृत्व के कारण, काशी विश्वनाथ मंदिर आज भी श्रद्धालुओं का एक प्रमुख केन्द्र है और उनकी महानता का प्रतीक बना हुआ है।

२.श्रीक्षेत्री श्रीमनकानी मंदिर :

श्रीक्षेत्री श्रीमनकानी मंदिर काशी में एक प्रमुख तीर्थ स्थल है, जो भगवान शिव को समर्पित है। इसे आमतौर पर *श्री मनकाना* या *मनकर्णिका* के नाम से जाना जाता है। यह मंदिर मणिकर्णिका घाट के निकट स्थित है, जो काशी का एक महत्वपूर्ण घाट है, जहाँ अंतिम संस्कार की परंपरा का पालन किया जाता है।

इस मंदिर का पुनर्निर्माण अहिल्याबाई होलकर द्वारा किया गया था, जिन्होंने काशी की धार्मिक धरोहर को संजोने के लिए कई महत्वपूर्ण कार्य किए।[10] श्रीक्षेत्री श्रीमनकानी मंदिर की वास्तुकला भारतीय स्थापत्य कला का एक अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत करती है। मंदिर की भव्य संरचना और उत्कृष्ट शिल्प कला श्रद्धालुओं को आकर्षित करती है। इसकी ऊंची छतें और विस्तृत स्तंभ इसे और भी प्रभावशाली बनाते हैं।

मंदिर के आंतरिक भाग में शिवलिंग स्थापित है, जो भक्तों के लिए पूजा का केंद्र है। मंदिर की दीवारों पर की गई नक्काशी, पारंपरिक भारतीय कला का प्रमाण है, जो इसे और भी अद्वितीय बनाती है।

३. तारकेश्वर मंदिर :

अहिल्याबाई होलकर ने 18वीं शताब्दी में काशी में कई मंदिरों का पुनर्निर्माण और निर्माण किया, जिसमें तारकेश्वर मंदिर भी शामिल है। तारकेश्वर मंदिर को विशेष रूप से शिव की उपासना के लिए जाना जाता है। यहाँ की मान्यता है कि इस मंदिर में पूजा करने से भक्तों की सभी इच्छाएँ पूर्ण होती हैं। यह मंदिर भक्तों को आस्था और श्रद्धा का अनुभव कराता है, और यहाँ पर विभिन्न धार्मिक उत्सवों का आयोजन किया जाता है, जिसमें बड़ी संख्या में श्रद्धालु भाग लेते हैं। ऐसा उल्लेख मिलता है कि मणिकर्णिका घाट पर स्थित श्री तारकेश्वर मंदिर के निर्माण लागत लगभग 10,000 रुपये मानी जाती है।[11]

४. दंडपाणेश्वर मंदिर :

दंडपाणेश्वर मंदिर काशी के महत्वपूर्ण धार्मिक स्थलों में से एक है। यह मंदिर विश्वनाथ मंदिर के पश्चिम में स्थित है और इसका शिखर पूर्वमुखी है। इस मंदिर का निर्माण भी अहिल्याबाई होलकर ने करवाया था।[4] इसकी संरचना और शिखर वास्तुकला विशेष ध्यान आकर्षित करते हैं, जो इसे काशी के अन्य प्रमुख मंदिरों से अलग पहचान दिलाते हैं। दंडपाणेश्वर मंदिर शिव को समर्पित है, और इसका नाम भगवान शिव के एक रूप "दंडपाणि" से लिया गया है, जिसका अर्थ है 'दंडधारी' या 'अधिकार का प्रतीक धारण करने वाले'।

2.घाटों का पुनर्निर्माण

१.मणिकर्णिका घाट:

मणिकर्णिका घाट, काशी (वाराणसी) के सबसे पवित्र घाटों में से एक है और इसका ऐतिहासिक एवं धार्मिक महत्व अत्यधिक है। इसका नाम ऊपर स्थित मणिकर्णिका कुण्ड के कारण पड़ा। इस घाट का पुनर्निर्माण अहिल्याबाई होलकर के संरक्षण में हुआ, जिसका कार्य 1791 में पूर्ण हुआ।[4] अहिल्याबाई ने इस प्रयास के लिए व्यक्तिगत रूप से 25 हजार रुपए का योगदान दिया और परियोजना की देखरेख के लिए कुशल कारीगरों को नियुक्त किया।[12] घाट की वास्तुकला में सुधार के तहत इसके पत्थर के मंचों और प्राचीरों को मजबूती प्रदान की गई, जो उस युग की बारीक कारीगरी को दर्शाती है। अहिल्याबाई का योगदान न केवल मणिकर्णिका घाट की भौतिक संरचना को सुदृढ़ करता है, बल्कि इसके धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व को भी बढ़ाता है।धार्मिक महत्व के कारण यहाँ लोग मोक्ष की प्राप्ति के उद्देश्य से अंतिम संस्कार करने आते हैं।इस घाट पर एक मराठी शिलालेख भी प्राप्त हुआ है, जिससे अहिल्याबाई द्वारा घाट के निर्माण की पुष्टि होती है।

"श्री मद्धोल करो पाख्यः ख्यातो राज्यन्य दर्पदा।
मल्लारिराव नामाभूत खण्डेरावस्तू तत्सुतः ।।१।।
विलासी गुणि कल्पदुः शूरवीरो मिशासितः ।
तत्पत्नी पुण्यचरिता कुलद्वय-विभूषिता ।। २ ।।
अहिल्याच्या तथा काश्यमिषु लोकेषु कीर्तये।
बद्धे घट्ट १ सुसोपान : २ मणिकर्ष्या सुविस्तृत ।।३।।"[13]

२. दशाश्वमेध घाट :

डॉ० काशी प्रसाद जयसवाल के अनुसार दशाश्वमेध घाट का नाम संस्कृत शब्द "दश" (दस) और "अस्वमेध" (अश्वमेध यज्ञ) से आया है, जिसका अर्थ है कि यहां दस अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया गया था। दशाश्वमेध घाट, जो काशी के सबसे प्रसिद्ध घाटों में से एक है, का पुनर्निर्माण अहिल्याबाई होलकर के प्रयासों से हुआ।[12] यह घाट गंगा नदी के किनारे स्थित है।यहाँ प्रतिदिन भव्य गंगा आरती का आयोजन किया जाता है, जो कि एक दिव्य और आध्यात्मिक अनुभव प्रदान करता है।

अहिल्याबाई होलकर के पुनर्निर्माण कार्य ने दशाश्वमेध घाट को एक अद्वितीय रूप दिया, जो आज भी श्रद्धालुओं और पर्यटकों के लिए आकर्षण का केंद्र बना हुआ है। उनकी सेवा भावना और समर्पण ने इस पवित्र स्थान को संजोया और इसे काशी की सांस्कृतिक धरोहर का एक अभिन्न हिस्सा बना दिया। आरती के समय घाट पर लाखों श्रद्धालुओं की भीड़ उमड़ती है, जो गंगा की पूजा अर्चना करते हैं और आस्था के साथ दीयों को प्रवाहित करते हैं। इस अद्भुत दृश्य को देखने के लिए पर्यटक दूर-दूर से आते हैं, जिससे यह घाट न केवल धार्मिक, बल्कि पर्यटन के दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण बनता है। अतः दशाश्वमेध घाट न केवल एक तीर्थ स्थल है, बल्कि यह काशी के धार्मिक और सामाजिक जीवन का भी प्रतीक है, जहाँ पर श्रद्धा, भक्ति और संस्कृति का अद्भुत संगम होता है।

३.नया घाट :

काशी में अहिल्याबाई होलकर द्वारा निर्मित एक महत्वपूर्ण घाट है, जिसे 'नया घाट' के नाम से जाना जाता है। इसका उद्देश्य तीर्थयात्रियों और श्रद्धालुओं के लिए सुविधाजनक स्थान प्रदान करना था, जहाँ वे अपने धार्मिक अनुष्ठान संपन्न कर सकें।[14]

४. अहिल्या घाट :

अहिल्या घाट, जिसे पूर्व में केवल्यगिरि घाट के नाम से जाना जाता था, काशी के प्रतिष्ठित तीर्थ स्थलों में से एक है। 1778 ई. में इंदौर की महारानी अहिल्याबाई होल्कर ने इस घाट का पुनर्निर्माण कर इसे पक्का बनवाया।

इस परिवर्तन के बाद इसे अहिल्या घाट के नाम से जाना जाने लगा, जो महारानी के योगदान का प्रतीक बन गया।[15] यह प्रकरण अहिल्याबाई होल्कर की धार्मिक रुचि और संरक्षण के प्रति उनकी निष्ठा को प्रदर्शित करता है।

3.धर्मशाला निर्माण

१.उत्तरी काशी में धर्मशाला निर्माण :

अहिल्याबाई होलकर ने काशी के पवित्र तीर्थ स्थल पर तीर्थयात्रियों की सुविधा के लिए एक धर्मशाला का निर्माण किया। यह धर्मशाला 32 हाथ लंबी और 13 हाथ चौड़ी है, जिससे इसमें एक साथ कई यात्रियों के ठहरने की व्यवस्था हो सके। उनकी इस पहल ने तीर्थयात्रियों के लिए आवास की एक महत्वपूर्ण सुविधा प्रदान की, जो उनकी यात्रा को सरल और सुविधाजनक बनाती है। वर्तमान में ये जर्जर अवस्था में है।[16]

4. कुंड निर्माण

१.लोलार्क कुंड :

लोलार्क कुण्ड वाराणसी का एक ऐतिहासिक और धार्मिक महत्व वाला स्थल है, जिसका उल्लेख *स्कंद पुराण* में मिलता है। प्राचीन कथा के अनुसार, भगवान शिव ने राजा दिवोदास का काशी से मोहभंग करने के लिए भगवान सूर्य को यहाँ भेजा था। हालांकि, भगवान सूर्य इस कार्य में सफल नहीं हो सके, परंतु वह स्वयं काशी के पवित्र वातावरण से इतने प्रभावित हो गए कि उनका मन यहाँ स्थिर हो गया, और उनका नाम 'लोलार्क' पड़ा, जिसका अर्थ है 'चलायमान हृदय वाला'। इस घटना की स्मृति में भदैनी क्षेत्र में स्थित लोलार्क कुण्ड की स्थापना की गई, जो तुलसी घाट के निकट स्थित है।

इस पवित्र कुण्ड का निर्माण अहिल्याबाई होलकर और कूचबिहार के राजा द्वारा करवाया गया था। कुण्ड की गोलाई पांच फुट है और इसके एक ओर 40 पत्थरों की सीढ़ियाँ हैं, जो श्रद्धालुओं को नीचे कुण्ड के पवित्र जल तक पहुंचने में सहायता करती हैं। कुण्ड के चारों ओर एक भव्य मेहराब भी बनाई गई है, जो इसकी स्थापत्य कला की अद्वितीयता को दर्शाती है। यहाँ आने वाले तीर्थयात्री इस जल में स्नान करते हैं, जो धार्मिक दृष्टि से अत्यंत शुभ माना जाता है।

कुण्ड की सीढ़ियों पर लोलार्क देवता की मूर्ति स्थापित है, जो भगवान सूर्य के रूप का प्रतीक है। कुण्ड के दक्षिण में लोकेश्वर का मंदिर स्थित है, जो इस स्थल के धार्मिक महत्व को और भी बढ़ाता है। लोलार्क कुण्ड न केवल अपनी पौराणिक कथाओं के लिए प्रसिद्ध है, बल्कि अहिल्याबाई होलकर जैसी ऐतिहासिक हस्तियों के संरक्षण से यह वाराणसी की धार्मिक विरासत का एक विशिष्ट उदाहरण बन गया है।[14]

निष्कर्ष:

अहिल्याबाई होलकर के कार्यों ने न केवल काशी के धार्मिक स्थलों को पुनर्जीवित किया, बल्कि इसे एक बार फिर से सांस्कृतिक और आध्यात्मिक गतिविधियों का केंद्र बनाने में सहायता प्रदान की । उनके योगदान ने काशी को पुनर्स्थापित करने के साथ-साथ इसे एक नई दिशा भी दी, जिससे यह भारतीय सांस्कृतिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर सका।

काशी का ऐतिहासिक और सांस्कृतिक पक्ष न केवल इसके धार्मिक महत्व को दर्शाता है, बल्कि यह भारतीय संस्कृति की गहरी जड़ों को भी प्रकट करता है। काशी की जीवंतता, सांस्कृतिक विविधता और धार्मिक सहिष्णुता इसे एक अद्वितीय स्थल बनाती है, जो सदियों से लोगों को आकर्षित करती आ रही है।

आने वाले समय में, यह आवश्यक है कि हम काशी की इस सांस्कृतिक धरोहर का संरक्षण करें और इसे आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखें। काशी अपनी धरोहरों, परंपराओं और आध्यात्मिकता के साथ आगे बढ़ रहा है, और भविष्य में भी भारतीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण केंद्र बना रहेगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची:

1. Singh, R. P. B. (2017, July 18). Banaras, the cultural capital of India: Visioning cultural heritage and planning (p. 7). Special lecture presented at the International Summer School on Cultural Landscape & Sustainable Urban Regeneration, FEFU Vladivostok, Russia.
2. Sharma, H. (1967). Ahilyabai (pp. 58-60). National Book Trust, New Delhi.
3. ठाकुर, वा. वा. (1945). होलकरशाहीच्या इतिहासाची साधने: भाग २ (१७९७-१८२६) (पृष्ठ २६८-२६९). होलकर गवर्नमेंट प्रेस, इंदौर।
4. पांडे, राजेंद्र. (2021). वीरांगना अहिल्याबाई होलकर (पृष्ठ 116-117). डायमंड पॉकेट बुक्स प्रा. लि., नई दिल्ली।
5. Desai, M. (2017). Banaras Reconstructed: Architecture and sacred space in a Hindu holy city (p. 81). Orient Blackswan Pvt. Ltd.
6. ठाकुर, वा. वा. (1945). होलकरशाहीच्या इतिहासाची साधने: भाग २ (१७९७-१८२६) (पृष्ठ १८). होलकर गवर्नमेंट प्रेस, इंदौर।
7. जोशी, महादेवशास्त्री. (1964). भारतीय संस्कृति कोश: खंड 2 (पृष्ठ 312). भारतीय संस्कृति कोश मंडल, पुणे।
8. Rana, P. B., & Singh, P. S. (2022). The Kashi Vishwanatha, Varanasi City, India: Construction,Destruction,and Resurrection to Heritagisation. International Journal of Architecture and Engineering, 9(1), 23.
9. पाटिल, विक्रम नारायण. (2006). अहिल्याबाई होलकर यांचे नेतृत्व - एक राजकीय अभ्यास (पृष्ठ १५३). शिवाजी विद्यापीठ, कोल्हापुर।
10. .गावड़े, शं. बा. (1923). देवस्थान क्लासीफिकेशन लिस्ट, होलकर स्टेट (पृष्ठ ३०७)।
11. गावड़े, शं. बा. (1923). देवस्थान क्लासीफिकेशन लिस्ट, होलकर स्टेट (पृष्ठ ३०४)।
12. पारसनीस, द. बा. (1911). महेश्वर दरबारची बातमीपत्रे: भाग १ (पृष्ठ ८६). तुकाराम जावजी यांनी, निर्णय सागर छापखाना, मुंबई।
13. शास्त्री, अवधूत. (1975). धर्मभास्कर: देवी अहिल्याबाई विशेषांक (पृष्ठ 199)।
14. पांडे, राजेंद्र. (2021). वीरांगना अहिल्याबाई होलकर (पृष्ठ 118). डायमंड पॉकेट बुक्स प्रा. लि., नई दिल्ली।
15. Mishra, S. (2016). Heritage Enrichment of Kashi: Maratha's contribution. Review of Research, 6(1), p.2.
16. गावड़े, शं. बा. (1923). देवस्थान क्लासीफिकेशन लिस्ट, होलकर स्टेट (पृष्ठ ३०५)।

वर्तमान समय में काशी का धार्मिक पर्यटनः विकास, चुनौतियाँ और सम्भावनाएं

वत्सल श्रीवस्तव*

सारांश

यह शोध पत्र आधुनिक समय में काशी के धार्मिक पर्यटन में विकास चुनौतियाँ और सम्भावनाओं का गहन विश्लेषण करेगी। काशी जिसे वर्तमान समय में बनारस के नाम से जाना जाता है अपने सांस्कृतिक, आध्यात्मिक और पारम्परिक दृष्टिकोण से पूरे विश्व भर में विख्यात है। हर साल यहाँ करोड़ों तीर्थयात्री श्रद्धापूर्वक आते हैं जिससे बनारस के साथ-साथ पूरे भारत की अर्थव्यवस्था में काफी वृद्धि होती है। पर्यटन के माध्यम से लाखों लोगों को रोजगार के अवसर भी मिलते हैं। इस शोध पत्र में काशी के धार्मिक पर्यटन में विकास जिसमें बुनियादी स्तर की योजनाएं, अवसंरचना, यातायात, सडकें तथा सरकार द्वारा चलाई गई योजनाओं को बताया गया है। इसके अलावा मन्दिरों के सौंदर्यीकरण, उनके विकास तथा उनके रखरखाव को भी बताया गया है इसके अलावा धार्मिक पर्यटन में होने वाली चुनौतियाँ जैसे कि भीड़, पर्यावरण सांस्कृतिक जगहों की सुरक्षा इत्यादि। इसके अलावा भविष्य में होने वाली सम्भावनाओं को बताया गया है।

की वर्ड: विकास, काशी, मन्दिर, धार्मिक ,योजनाएं, पर्यटन, घाट, गंगा , वाराणसी, अध्यात्म ।

प्रस्तावना

प्राचीन काल से ही बनारस (काशी) शिक्षा एवं अध्यात्म का केंद्र रहा है यह भारत के सबसे प्राचीन स्थानों में से एक है। धार्मिक दृष्टिकोण से हिंदुओं के लिए यह शहर काफी प्रमुख माना जाता है। प्राचीन काल से ही काशी में महर्षि अगस्त्य, धन्वंतरि, गौतम बुद्ध, संत कबीर, अघोराचार्य, रानी लक्ष्मीबाई, पाणिनी इत्यादि का निवास स्थल रहा है। गंगा के किनारे बसा बनारस शहर हजारों वर्षों से लोगों की मनोकामना को पूर्ण करते आया है। अनेकों तीर्थ यात्री मोक्ष प्राप्ति के उद्देश्य से काशी शहर आते हैं और अपना जीवन मृत्यु तक यही व्यतीत करते हैं। धार्मिक पर्यटन के उद्देश्य से काशी मंदिरों और सांस्कृतिक स्थान से भरा हुआ है। काशी को आनंदन, अविमुक्त क्षेत्र, आनंद कानन, वाराणसी इत्यादि नाम से भी परिचित किया गया है। बुदध एवं जैन धर्म के लिए भी बनारस शहर काफी महत्वपूर्ण रहा है। जैन धर्म के कुल तीर्थंकरों में से चार तीर्थांकरों का जन्म बनारस में ही हुआ है। इसके अलावा जैन धर्म के कई प्रसिद्ध मंदिर बनारस शहर में स्थित हैं। बौद्ध धर्म का प्रसिद्ध स्थान सारनाथ भी बनारस शहर में स्थित है। काशी शहर में इसी महत्व को देखते हुए यहाँ के धार्मिक पर्यटन के उद्देश्य से भारत सरकार, उत्तर प्रदेश सरकार तथा संस्कृति मंत्रालय ने समय-समय पर कई योजनाओं का शुभारंभ भी किया है।

काशी के धार्मिक पर्यटक स्थल

1. **काशी विश्वनाथ मंदिर** : भारत के 12 ज्योतिर्लिंगों में से एक मंदिर काशी विश्वनाथ मंदिर बनारस में स्थित है। यह मंदिर भगवान शिव को समर्पित है। यह भारत के प्रमुख मंदिरों में से एक है। हर साल लाखों पर्यटक केवल काशी विश्वनाथ मंदिर पर्यटन के दृष्टिकोण से आते हैं। वर्तमान में सरकार द्वारा चलाई गई योजनाओं से इस मंदिर की भव्यता और बढ़ गई है।
2. **काल भैरव मंदिर** : काल भैरव मंदिर भी बनारस के प्रमुख मंदिरों में से एक है। इस मंदिर को बनारस का संरक्षक देवता कहा जाता है। बनारस में एक धार्मिक मान्यता काफी प्रचलित है कि इस शहर में कोई भी शुभ काम करने से पहले 'काशी कोतवाल' यानी बाबा काल भैरव की पूजा की जाती है।
3. **गंगा के घाट** : बनारस में काशी के गंगा घाट इसकी सुंदरता में चार चांद लगाते हैं। बनारस में मणिकर्णिका घाट, अस्सी घाट, दशाश्वमेध घाट, पंचगंगा घाट, केशव घाट इत्यादि घाट स्थित है तथा सब की एक अलग धार्मिक मान्यता है जो यहाँ के धार्मिक पर्यटन को और अधिक दिखलाती है।

* **शोधार्थी (पत्रकारिता एवं जन संचार), उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय प्रयागराज।**

4. **सारनाथ** : बौद्ध धर्म के लोगों के लिए सारनाथ एक ऐतिहासिक जगह है। सारनाथ में ही भगवान बुद्ध ने पहली बार उपदेश दिया था जिस धर्मचक्र परिवर्तन कहा गया था। महाबोधि सोसाइटी मंदिर, धामेख स्तूप, चौखंडी स्तूप, बुद्ध संग्रहालय इत्यादि प्रमुख स्थान है। सारनाथ बुद्ध धर्म के अनुयायियों का एक प्रमुख स्थल है। लेकिन हिंदू धर्म के लोग भी बुद्ध धर्म से प्रभावित होकर इस धार्मिक पर्यटक स्थल पर घूमने जाते हैं।
5. **पार्श्वनाथ मंदिर** : जैन धर्म के 23वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ को कहा जाता है। उन्हीं के नाम से यह मंदिर बनारस शहर में स्थित है। भगवान पार्श्वनाथ की जन्म स्थली बनारस को ही माना जाता है। इसके अलावा जैन धर्म के लोगों के लिए शीतलनाथ जी मंदिर का भी विशेष स्थान है जो जैन धर्म के लोगों के लिए शिक्षा एवं मार्ग प्रशस्ति का काम करता है।
6. **संकटमोचन मंदिर** : भगवान हनुमान को समर्पित यह मंदिर बनारस शहर ही स्थित है। धार्मिक पर्यटन के महत्य के कारण इस मंदिर पर हमेशा भीड़ रहती है। पर्यटन की दृष्टिकोण से यह मंदिर भी अपना विशेष महत्व रखता है।

इसके अलावा काशी में सभी धर्म से संबंधित अनेकों मंदिर एवं धार्मिक स्थान स्थित है जो काशी की भव्यता और यहाँ की संस्कृति को पूरे विश्व में रखता है।

संबंधित साहित्य सर्वेक्षण

1. सिंह. का (2016) '**काशी का अस्सी**' काशीनाथ सिंह द्वारा लिखा गया एक महाकाव्य उपन्यास है। जिसमें काशी के जीवन और काशी के समय काल को बताया गया है। काशी के जीवन केंद्र को बताया गया है लेकिन वैश्वीकरण के बाद में जो समस्याएं आई हैं उसका भी विवरण दिया गया है।
2. बापट,श् (2024) '**काशीयात्रा'** यह किताब काशी की यात्रा को बताता है जिसमें प्रत्येक स्थान का विवरण भी दिया गया है तथा हिंदू धर्म के लिए काशी का महत्व भी बताया गया है। इसके अलावा हिंदू धर्म के सभी संप्रदायों के बारे में बताया है।
3. शशिकला डॉ० (2023) '**काशी से बनारस : धार्मिक पर्यटन की दृष्टि**' यह शोध पत्र काशी में अध्यात्म, भक्ति, संगीत, कला, साहित्य, संस्कृति, शिल्प, शिक्षा इत्यादि को बताती है। चाहे काशी हो या चाहे बनारस यहाँ का धार्मिक पर्यटन हमेशा विख्यात रहा है।
4. पटि. अ. हुसैन, म (2023) '**पीपल्स पर्सपेक्टिव ऑन हेरिटेज कंजर्वेशन ऐंड टूरिज्म डेवलपमेंट अ केस स्टडी ऑफ वाराणसी'** यह शोध पत्र वाराणसी लोगों का अपनी संस्कृ ति की सुरक्षा और पर्यटन के विकास से संबंधित है। सांस्कृतिक धरोहर हमेशा से पर्यटन विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

उद्देश्य : इस शोध पत्र का प्रमुख उद्देश्य काशी में धार्मिक पर्यटन के विकास, उत्पन्न चुनौतियों और संभावनाओं का विश्लेषण करना है।

क्रियाविधि : इस शोध पत्र शोधार्थी द्वारा गुणात्मक शोध पद्धति का प्रयोग किया जाएगा।

डाटा संग्रहण : प्रस्तुत शोध पत्र में शोधार्थी द्वारा द्वितीयक स्रोत का प्रयोग कर आंकड़ों का संग्रह किया है।

काशी के धार्मिक पर्यटन में विकास

1. **सड़कों का विकास** : काशी के धार्मिक पर्यटन के मद्देनजर सड़कों का विकास बहुत अच्छी तरीके से किया गया है। बनारस में सडकों के चौडीकरण के साथ-साथ बनारस को जोड़ने वाले कई एक्सप्रेसवे का भी निर्माण किया गया है। जिसमें प्रमुख बनारस कोलकाता एक्सप्रेस वे है, यह 610 किलोमीटर का एक्सप्रेस वे रांची के रास्ते बनारस को कोलकाता से जोड़ता है। इसके अलावा पूर्वांचल एक्सप्रेसवे, 340 किलोमीटर का यह एक्सप्रेसवे निर्मित हो चुका है जिससे दिल्ली से बनारस तक की दूरी 10 घंटे से कम समय में पूरी

हो सकती है। इसके अलावा प्रयागराज बाईपास एक्सप्रेस वे भी निर्मित है जिसमें प्रयागराज से बनारस तक बहुत कम समय में पहुंचा जा सकता है।

2. **परिवहन सुविधा**: काशी में धार्मिक पर्यटन को सुधारने के लिए पर्यटन सुविधा को और अच्छा किया जा रहा है। कई बड़े शहरों से बनारस के लिए अनेकों बस सुविधा शुरू की गई है ताकि बनारस आसानी से पहुंचा जा सके। इसके अलावा बनारस में ही परिवहन की सुविधा को सुधारा जा रहा है। फरवरी 2024 में ही काशी दर्शन नामक नई परिवहन शुरू की गई जिसमें रु० 500 देकर वह काशी विश्वनाथ, काल भैरव, नमो घाट, सारनाथ, संकट मोचन, दुर्गा मंदिर और मानस मंदिर जैसी कई जगहों का एक ही इलेक्ट्रिक बस सेवा में सवार होकर भ्रमण कर सकते हैं।
3. **गंगा घाट का पुनर्विकास** : बनारस में गंगा घाट के पुनर्विकास के लिए 2020 से ही अनेकों अभियान शुरू किए गए हैं। जिसमे दशाश्वमेध घाट के पुनर्विकास की आधारशिला रखी गई थी। जिसमें नमो घाट का भी निर्माण किया गया था। इसके अलावा अस्सी घाट, राजेंद्र प्रसाद घाट, राजघाट, केदार घाट, पंचगंगा घाट और शिवाला घाट पर फ्लोटिंग रूम का भी निर्माण किया गया। इसके अलावा जुलाई 2023 में 17.56 करोड़ की लागत से मणिकर्णिका घाट के पुनर्विकास और जीर्णोद्धार की प्लानिंग तथा घाट और आसपास के ऐतिहासिक भवनों और मंदिरों का पुनर्विकास भी सुनिश्चित किया गया था। इसके कारण धार्मिक पर्यटन को बढ़ावा मिल रहा है।
4. **स्वच्छता अभियान** : काशी में स्वच्छता को देखते हुए अनेकों कार्य किया जा रहे हैं। वाराणसी के नगर निगम रिपोर्ट के अनुसार काशी में 56 सामुदायिक शौचालय, 182 सार्वजनिक शौचालय, 3 गुलाबी शौचालय, 1 तृतीय लिंग के लिए शौचालय और 417 सीट वाला मूत्रालय का निर्माण किया गया है। इसके अलावा बनारस के घाटों पर स्वच्छता अभियान चलाया जा रहा है ताकि घाटों को प्लास्टिक मुक्त बनाया जा सके। स्वच्छ सर्वेक्षण 2023 में गंगा टाउन स्वच्छ सर्वेक्षण में वाराणसी को पहला स्थान मिला है।
5. **इको टूरिज्म का विकास** : इको टूरिज्म या पारिस्थितिकी पर्यटन ऐसा पर्यटन है जिसमें पर्यटन के साथ-साथ वहां के प्राकृतिक वातावरण, वन्य जीव, जैव विविधता वाले क्षेत्र इत्यादि का ध्यान दिया जा सकता है उसको नुकसान न पहुँचाया जा सकता है। काशी को टूरिज्म हब के तौर पर विकसित किया जा रहा है। वर्ष 2022 में ही काशी के उंदी गाँव में 78 एकड़ में वाराणसी विकास प्राधिकरण द्वारा लगभग 20 करोड़ से ईको पर्यटन सुविधाओं को विकसित किये जाने की परियोजना लाई गई थी। इसके अलावा नमो घाट को इको टूरिज्म के तर्ज पर ही विकसित गया है। इसके अलावा वर्ष 2023 में काशी को टूरिज्म हब के तौर पर विकसित करने पर विचार भी लाया गया था।
6. **डिजिटल सुविधाओं का विकास** : काशी को धार्मिक पर्यटन के तौर पर विकसित करने के लिए ऑनलाइन सुविधाएं भी शुरू की गई थी। काशी घूमने वालों के लिए ऑनलाइन बुकिंग और परिवहन से लेकर मंदिर दर्शन तक, गंगा नदी में घूमने के लिए क्रूज सर्विस के लिए ऑनलाइन बुकिंग, इसके अलावा काशी में जगह-जगह जाने के लिए ऑनलाइन जानकारी उपलब्ध होना यह सब संभव हो पाया है डिजिटल सुविधाओं के विकास के कारण।

काशी के धार्मिक पर्यटन के विकास में सरकारी योजनाएं

1. **काशी विश्वनाथ कॉरिडोर योजना** : इस परियोजना का उद्घाटन 2021 में हुआ था। इसमें काशी विश्वनाथ मंदिर से गंगा नदी तक कॉरिडोर का निर्माण किया गया था। जिससे श्रद्धालुओं को दर्शन करने में आसानी हो सके। इस परियोजना के अंतर्गत श्रद्धालुओं को सभी प्रकार की सुविधाएं जैसे शौचालय, खानपान, आसानी से उपलब्धता इत्यादि चीज प्रदान की गई। इस कॉरिडोर का प्रमुख उद्देश्य श्रद्धालुओं को भीड़भाड़

से दूर रखना तथा पर्यटकों को एकदम सुखद अनुभव कराना था। उन्हें किसी प्रकार की समस्या का सामना न करना पड़े।

2. **नमामि गंगे परियोजना** : नमामि गंगे परियोजना की शुरुआत वर्ष 2014 में हो शुरू हुई थी। उसके बाद से ही बनारस की गंगा नदी को साफ करने का प्रयास शुरू किया गया था। वर्ष 2023 की रिपोर्ट के अनुसार यह बात सही साबित हुई थी कि नमामि गंगा परियोजना के बाद गंगा नदी में प्रदूषण को कम किया गया है। नमामि गंगे परियोजना का प्रमुख उद्देश्य बनारस के साथ-साथ अन्य स्थानों पर भी गंगा नदी से प्रदूषण को साफ कर देना क्योंकि गंगा नदी हिंदू धर्म की सबसे प्रमुख नदी मानी जाती है।
3. **स्मार्ट सिटी मिशन** : स्मार्ट सिटी मिशन के तहत बनारस को वर्ष 2016 में इस योजना में सम्मिलित किया गया था। स्मार्ट सिटी योजना का प्रमुख उद्देश्य लोगों की लाइफ स्टाइल को अच्छा बनाना उन्हें सभी प्रकार की सुविधा उपलब्ध कराना, लोगों की आय में बढ़ोतरी करना इत्यादि है। वर्ष 2017 से ही बनारस को स्मार्ट सिटी मिशन के तहत काम शुरू हो गया था। वर्ष 2023 की रिपोर्ट के अनुसार बनारस में अब तक 10 अरब से ज्यादा रुपए के प्रोजेक्ट पूरे हो चुके हैं। इसमें लाइव प्रसारण, इलेक्ट्रिक बसों के लिए चार्जिंग स्टेशन, शहर में कई जगह पर फ्री वाई फाई सुविधा, दशाश्वमेध घाट पर पर्यटक सुविधा और मार्केट काम्प्लेक्स इत्यादि सम्मिलित है।
4. **काशी रोपवे योजना** : इस परियोजना की शुरुआत वर्ष 2023 में किया गया था। इस परियोजना में 644.49 करोड़ रुपये का बजट आवंटित किया गया। इस परियोजना के बन जाने के बाद लोगों को काशी विश्वनाथ मंदिर एवं दशाश्वमेध घाट पहुँचना आसान हो जाएगा। इस परियोजना का कार्य अभी प्रगति पर है। एक बार यह परियोजना बन जाने के बाद लाखों श्रद्धालुओं को फायदा मिलेगा।

काशी के धार्मिक पर्यटन में चुनौतियाँ

1. **प्रदूषण रोकने की चुनौती** : काशी के धार्मिक पर्यटन में सबसे बड़ी चुनौती प्रदूषण रोकने की होनी चाहिए क्योंकि जब तीर्थ यात्रियों की संख्या बढ़ती जाती है तो ऐसे में जगह-जगह कूड़ा कचरा भी फैलने लगता है। गंगा नदी में कचरा फैलने के कारण लोगों को स्नान करने में भी समस्या आती है। ऐसे में प्रदूषण रोकने के लिए विभिन्न अभियान चलाना चाहिए तथा लोगों को इसके बारे में जागरूक करना चाहिए।
2. **तीर्थ यात्रियों के सुरक्षा की चुनौती** : धार्मिक पर्यटन की दृष्टिकोण से जब तीर्थ यात्री काशी घूमने आते हैं तो यहाँ के प्रशासन की जिम्मेवारी उनके सुरक्षा की होनी चाहिए। हम अक्सर सुनते रहते हैं कि कुछ तीर्थ यात्रियों के साथ कुछ घटनाएं हो जाती हैं। ऐसे में यहाँ की प्रशासन को तीर्थ यात्रियों के सुरक्षा के लिए काफी सावधानी देनी चाहिए।यहाँ के पुलिस फोर्स एवं अन्य सुरक्षा बलों को ध्यान देना चाहिए कि लोगों को किसी भी प्रकार की कठिनाई का सामना न करना पड़े।
3. **भीड़ कंट्रोल करने की चुनौती** : काशी एक धार्मिक स्थान होने के कारण यहाँ पर हमेशा भीड़ लगी रहती है। लाखों श्रद्धालुओं के भीड़ हमेशा काशी में रहती है। ऐसे में भीड़ कंट्रोल करने की जिम्मेवारी प्रशासन की होनी चाहिए। प्रमुख त्यौहार एवं उत्सवों पर यह ध्यान दिया जाना चाहिए अत्यधिक भीड़ होने के कारण कोई भी दुर्घटना न होने पाए।
4. **सांस्कृतिक धरोहरों के संरक्षण की चुनौती** : काशी में कई प्राचीन ऐतिहासिक धार्मिक धरोहर एवं स्मारक है। अक्सर लोग अपनी खुशी के कारण इन स्थानों को नुकसान पहुँचा देते हैं उनको तोड़फोड़ देते हैं। जिससे इन धरोहरों के इतिहास पर खतरा मंडरा जाता है। ऐसे में हमें काशी के सांस्कृतिक धरोहरों को संरक्षित करना चाहिए हमें यह ध्यान देना चाहिए कोई भी व्यक्ति किसी भी प्रकार की नुकसानी ना पहचाने पाए।

5. **महिला सुरक्षा की चुनौती** : वर्तमान समय में महिलाओं के सुरक्षा की चुनौती सबसे बड़ी चुनौती भर कर आई है। ऐसे में महिलाओं की सुरक्षा पर ध्यान देना सबसे प्रमुख कर्तव्य है। कोई भी महिला या महिला तीर्थ यात्री अपने आप को सुरक्षित महसूस करें हमें इस प्रकार का वातावरण तैयार करना होगा। क्योंकि जहां नारियों का सम्मान होता है वहीं देवताओं का निवास होता है।
6. **छोटे व्यापारियों के आय में वृद्धि की चुनौती** : काशी में धार्मिक पर्यटन के कारण यहाँ के लोकल बिजनेस के आय में काफी सहयोग मिलता है। लेकिन कुछ व्यापारी ऐसे होते हैं जिनको इनका लाभ नहीं मिल पाता है। ऐसे में सभी व्यापारियों को लाभ हो सके, उनकी आय में वृद्धि हो सके यह भी देखना सबसे बड़ी चुनौती होगी। सभी व्यापारियों को उनके आय के अनुसार लाभ का वितरण हो सके।

काशी के धार्मिक पर्यटन से भविष्य की संभावनाएं

1. **रोजगार वृद्धि की प्रबल संभावना** : काशी में धार्मिक पर्यटन के कारण भविष्य में रोजगार में वृद्धि होने की अपार संभावना है। क्योंकि जैसे-जैसे काशी में धार्मिक पर्यटन बढ़ रहा है वैसे-वैसे काशी का नाम पूरे भारत में और अधिक विख्यात हो रहा है। काशी में बड़ी-बड़ी कंपनियां भी स्थापित होने जा रही हैं इसके अलावा एक क्रिकेट स्टेडियम का भी निर्माण काशी में हो रहा है। ऐसे में भविष्य में रोजगार मिलने की सुनहरी संभावना लोगों के पास रहेगी।
2. **अनुसंधान की संभावना** : भविष्य में काशी में धार्मिक उद्देश्य से अनेकों अनुसंधान होने की भी संभावना है। अनुसंधान का एक अलग मतलब शोध होता है। जैसे-जैसे काशी में धार्मिक पर्यटन बढ़ रहा है वैसे-वैसे यहाँ के इतिहास, यहाँ के मंदिर सभी का मूल्य भी बढ़ रहा है। ऐसे में यहाँ के प्रत्येक क्षेत्र पर भविष्य में अनुसंधान होने की संभावना है।
3. **अंतरराष्ट्रीय धार्मिक पर्यटन की संभावना** : काशी में राष्ट्रीय धार्मिक पर्यटन तो बहुत उच्च स्तर पर है लेकिन भविष्य में अंतरराष्ट्रीय एयरपोर्ट बन जाने के बाद यहाँ पर विदेशों से लोग मंदिरों का दर्शन करने आएंगे। जिससे यहाँ के लोगों के आय के साथ-साथ राष्ट्रीय आय में भी वृद्धि होगी।
4. **अंतरराष्ट्रीय निवेश की संभावना** : काशी में बड़े स्तर पर स्मार्ट सिटी योजना के तहत कार्यकाल पर शुरू हो चुका है। ऐसे में भविष्य में बड़ी-बड़ी विदेशी कंपनियां भी अपना मार्केट यहाँ स्थापित करेंगे। जिससे काशी में हर क्षेत्र में काफी निवेश किया जाएगा जिसमें धार्मिक पहलु भी एक होगा।
5. **काशी के सौंदर्गीकरण की संभावना** : स्मार्ट सिटी योजना के अंतर्गत काशी में धार्मिक पर्यटन के कारण यहाँ के मंदिरों के साथ-साथ पूरे शहर को साफ एवं स्वच्छ किया जा रहा है पूरे शहर को नए तरीके से स्थापित करने का प्रयास किया जा रहा है। ऐसे में भविष्य में हमारी काशी एक नए तरीके से लोगों के सामने प्रस्तुत रहेगी।

निष्कर्ष

काशी हमेशा से धार्मिक दृष्टिकोण का एक केंद्र रहा है। सदियों से यहाँ पर्यटन व्यापक स्तर पर होता रहा है। लेकिन धार्मिक पर्यटन की दृष्टिकोण से काशी का स्थान सबसे ऊपर है। पर्यटन के साथ-साथ सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक सभी क्षेत्रों में काशी सदैव आगे रही है। समय के साथ-साथ काशी में लगातार विकास किया जा रहा है। ऐसे में कुछ चुनौतियां सामने आएंगी जिनका निपटारा करना हमारी प्रमुख जिम्मेदारी रहेगी तथा भविष्य में हमें ध्यान देना होगा कैसे हम अपनी काशी को और अधिक बेहतरीन बना सकते हैं। काशी धार्मिक पर्यटन के साथ-साथ यहाँ की संस्कृति, यहाँ के समुदाय, यहाँ के परंपरा, यहाँ के इतिहास सभी चीजों से रूबरू कराती है। सभी चीजों से जुड़ने का मौका देती है। सभी धर्मों का केंद्र काशी सामाजिक समरसता का केंद्र है। ऐसे में प्रशासन अपनी जिम्मेदारी निभा रहा है लेकिन हम खुद के स्तर पर भी काशी के धार्मिक पर्यटन के विकास में अपनी भूमिका निभा सकते हैं।

सन्दर्भ सूची

1. Singh, K. (2006): Kashi Ka Aasi, राजकमल प्रकाशन
2. शशिकला, डॉ० (2023, April 15) शोध आलेख काशी से बनारस धार्मिक पर्यटन की दृष्टि से, अपनी माटी प्रकाशन https:www.apnimaati.com/2023/03/blog-21.html?m=1
3. Singh, S. V. (2023, September 15) : Contemporary precedents in Pilgrimage tourism: A Case study of Shri Kashi Vishwanath Temple Corridor.
4. वर्मा, एस. के. (2007) काशी कभी न छोड़िए. Prabhat Prakashan.
5. Kejariwal, O.P., & Division, B.P. (2010): काशी नगरी एक, रूप अनेक, Publication Division, Ministry of Information And Broadcasting, https://ci.nii.ac.jp/ncid/BB08720387
6. Sharma, R. (2021, April 11): Piligrimage Tourism Satisfaction with Reference to Prayagraj and Varanasi An Empirical Study.https://turcomat.org/index.php/turkbilmat/article/view/2141
7. Devi, U. (2018). संस्कृत सहित्य के प्रमुख ग्रन्थों में काशी. Shodhshauryam International Scientific Refereed Research Journal, 1(1), 12–17. https://doi.org/10.32628/sisrrj113
8. Yaduvanshi, K. (2024). बनारस-ए-इश्क. ARTIST PRESS PUBLICATION HOUSE.
9. Singh, E. R. (2022). Kavita mein banaras. Rajkamal Prakashan.
10. Vineet, V. (2021). Batakahi banaras ki. Sarv Bhasha Trust.
11. Kumar, P., & Kumari, M. (2024). विकसित भारत@2047. Shodh Sari-An International Multidisciplinary Journal, 03(02), 253–259. https://doi.org/10.59231/sari7701
12. Gössling, S., Scott, D., & Hall, C. M. (2020). Pandemics, tourism and global change: a rapid assessment of COVID-19. Journal of Sustainable Tourism, 29(1), 1–20. https://doi.org/10.1080/09669582.2020.1758708
13. Theobald, W. F. (2012). Global Tourism. Routledge.
14. रावत,त. (2007). पर्यावरण, पर्यटन, एवं लोक संस्कृति: पर्वतीय क्षेत्र का विशेष संदर्भ.
15. Mamoria, C., & Singh, K. (2021). पर्यटन का भूगोल Paryatan ka Bhugol (Geography Of Tourism) – SBPD Publications. SBPD Publications.

मध्यकालीन विदेशी यात्रियों के वृत्तांतों में काशी का चित्रण

विकास कुमार*

शोध सारांश

भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही काशी धर्म, राजनीति, संस्कृति, शिक्षा और अध्यात्म का केन्द्र बिन्दु रही है। काशी को सम्पूर्ण विश्व में सबसे प्राचीनतम स्थल होने का गौरव भी प्राप्त है। इसकी प्राचीनता के प्रमाण हमें वैदिक साहित्य, पुराणों, महाकाव्यों, बौद्ध एवं जैन साहित्यों से प्राप्त होते हैं। काशी का सर्वप्रथम उल्लेख अथर्ववेद की पिप्पलाद शाखा में मिलता है। अपनी बहुआयामी संस्कृति एवं क्षेत्र विस्तार के कारण प्रारम्भ से ही काशी को अनेक नामों से वर्णित किया गया है। काशी खण्ड में काशी को वाराणसी, अवमुक्त आनन्द कानन, रूद्रवास, महाश्मशान इत्यादि के यथार्थ के रूप में दर्शाया गया है परन्तु वाराणसी और बनारस काशी के सर्वाधिक लोकप्रिय पर्याय के रूप में प्रसिद्ध है। मध्यकाल और आधुनिक काल में काशी का वर्णन हमें मुख्य रूप से प्रमुख ऐतिहासिक स्रोतों में बनारस के रूप में मिलता है।

मध्यकालीन प्रमुख ऐतिहासिक स्रोतों में इतिहासकारों द्वारा बनारस का विवरण दिया गया है। आरम्भिक तुर्क आक्रमणों के समय बैहाकी, इब्नेअसीर, हसन निजामीं एवं मुगल शासन की स्थापना के बाद अबुलफज्ल, बदांयूनी जैसे समकालिक लेखकों ने अपने ग्रन्थों में बनारस का उल्लेख किया है।

काशी सदियों से ही भारतवर्ष में आने वाले विदेशी यात्रियों के लिए आकर्षण एवं जिज्ञासा का केन्द्र रही है। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक अनेक विदेशी यात्रियों जैसे ह्वेनसांग, अलबरूनी, राल्फ फिच, पीटरमुण्डी, बर्नियर, ट्रैवर्नियर, अलेक्जेण्डर हैमिल्टन, जोसेफ टेफेन थेलर, जार्ज फास्टर, इमा राबर्ट्स इत्यादि ने काशी का आँखों देखा चित्रण अपने वृत्तांतों में किया है।

प्रस्तुत शोध आलेख का मुख्य उद्देश्य मध्यकालीन विदेशी यात्रियों के वृत्तांतों तों में वर्णित काशी की समकालिक सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक और राजनीतिक स्थिति का आलोचनात्मक परीक्षण करना तथा बनारस के औघड़ संत बाबा श्री कीनाराम के साथ मुगल शासकों के सम्बन्धों एवं मध्यकालीन शासकों की नीतियों का काशी पर क्या प्रभाव पड़ा, उसका विवरण विदेशी यात्रियों के वृत्तांतों तों के माध्यम से उजागर करना है।

सूचक शब्द : काशी, बनारस, मध्यकालीन विदेशी यात्री, मुस्लिम शासकों की नीतियाँ, कीनाराम, गंगा, मन्दिर, शिक्षा, व्यापार, धर्म।

काशी भारतवर्ष का सबसे प्राचीन नगर है। अनेक स्रोतों में काशी को विभिन्न कालखण्डों में इसकी विशेषताओं के कारण अनेक नामों जैसे- वाराणसी, अवमुक्त, आनन्दकानन, रुद्रवास, महाश्मसान इत्यादि से वर्णित किया गया है। "काशी का सबसे प्राचीनतम उल्लेख हमें अथर्ववेद की 'पिप्पलाद शाखा' में मिलता है।"[1] इस प्रकार काशी का इतिहास अति प्राचीन है, जिसका सन्दर्भ उत्तर वैदिक काल तक जाता है। काशी की प्राचीनता के बारे में रेवरेंड एम0ए0 शेरिंग लिखते हैं कि, "कम से कम पच्चीस शताब्दी पहले यह प्रसिद्ध था। जब बेबीलोन निनवेह के साथ वर्चस्व के लिए संघर्ष कर रहा था, जब टायर अपने उपनिवेश स्थापित कर रहा था, जब ऐथेंस अपनी शक्ति बढ़ा रहा था, रोम के प्रसिद्ध होने से पहले अथवा ग्रीस के फारस के साथ संघर्ष से पहले ही.....काशी का महानता के रूप में उदय हो चुका था।"[2] पौराणिक अनुश्रुतियों के अनुसार, "वरणा और असि नाम की नदियों के बीच में बसने के कारण ही इस नगर का नाम वाराणसी पड़ा।"[3] इस मत की पुष्टि प्रसिद्ध इतिहासकार कनिंघम भी करते हैं।

प्रारम्भ से ही काशी अपनी आध्यात्मिक, व्यापारिक, राजनैतिक एवं भौगोलिक स्थिति तथा समृद्धि के कारण भारतीय शासकों, विदेशी आक्रांताओं एवं विदेशी यात्रियों के लिए आकर्षण का केन्द्र बिन्दु रही है।

प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक काल तक अनेक विदेशी यात्रियों जैसे ह्वेनसांग (युवान च्वांग)[4], अलबरूनी[5], राल्फ फिच[6], पीटर मुण्डी[7], ट्रैवर्नियर[8], बर्नियर[9], पेल्सर्ट[10], मनूची[11] इत्यादि ने काशी का आँखों देखा चित्रण अपने वृत्तान्तों में किया है। अतः विदेशी यात्रियों के वृत्तान्त काशी की सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक गतिविधियों की जानकारी के लिए प्रमुख स्रोत है।

मध्यकाल में काशी का उल्लेख हमें अधिकांशतः बनारस के यथार्थ के रूप में प्राप्त होता है। आइन-ए-अकबरी में अबुल फजल ने "बनारस को इलाहाबाद सूबे की नौ सरकारों (जिलों) में रखा है, जिसके अन्तर्गत आठ महल (राजस्व इकाईयाँ) हैं।"[12] अपने वृत्तान्त अर्द्धकथानक में बनारसीदास भी यह वर्णित करते हैं कि "वरूणा और असी नदियाँ, गंगा में मिलती हैं उनके बीच बनारस है, जो दूर-दूर तक जाना जाने वाला शहर है। यह काशीवर की भूमि में स्थित है और इसलिए इसे काशी भी कहा जाता है।"[13]

* शोधछात्र, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
Email : 5898vikaskumar@gmail.com, Mob. : 9792777799; 6387830687

बनारस एक प्रसिद्ध आध्यात्मिक नगरी है जहाँ पर विभिन्न दर्शनों का विकास हुआ है। इन दर्शनों के अन्तर्गत शैव दर्शन बनारस में एक प्रमुख दर्शन के रूप में विकसित हुआ। स्कन्दपुराण में काशी को शैव दर्शन के महत्त्वपूर्ण स्थलों में से एक के रूप में उल्लिखित किया गया है। बनारस में मृत्यु के बाद मोक्ष प्राप्ति की धारणा ने तीर्थ यात्रियों को यहाँ आने के लिए आकर्षित किया। जिससे बनारस मोक्ष नगरी के रूप में प्रसिद्ध हो गया।

सातवीं शताब्दी में बौद्ध दर्शन की ज्ञान प्राप्ति के लिए प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग (युवान च्वांग) ने भारतवर्ष का भ्रमण किया। अपने यात्रा विवरण में उसने बनारस शहर के बारे में विस्तृत रूप से उल्लेख किया है। वह बनारस को "काशी के रूप में वर्णित करता है जिसकी राजधानी 'वरना' या 'बरना' थी। राजधानी पश्चिम की ओर गंगा तक फैली हुयी थी और लगभग अट्ठारह ली0 लम्बी और पाँच या छः ली0 चौड़ी थी।....शहर में निवासियों की संख्या बहुत अधिक थी। उनके पास असीमित सम्पत्ति थी। उनके घर दुर्लभ कीमती वस्तुओं से भरे हुए थे। लोग विनम्र और शिक्षा के प्रति समर्पित थे। उनमें अधिकांश अन्य प्रणालियों में विश्वास करते थे, उनमें से केवल कुछ ही बौद्ध थे.....यहाँ तीस से अधिक बौद्ध मठ थे जिनमें 3000 से अधिक बौद्ध थे, जो सम्मितीय स्कूल के अनुयायी थे। देव मन्दिरों की संख्या 100 से अधिक थी जिनमें अनेक सम्प्रदायों के 10 हजार से अधिक अनुयायी थे। जिनमें से अधिकांशतः शिवभक्त थे। इनमें से कुछ ने अपने बाल काट लिए, दूसरों ने चोटी बना ली और कुछ राख से अपना शरीर ढक लेते थे। वे नश्वर जीवन से मुक्ति पाने के लिए तपस्या कर रहे थे। राजधानी के भीतर 20 देव मन्दिर थे जिनकी छतें नक्काशीदार पत्थर और अलंकृत लकड़ी से बनी थीं। पेड़ों की झाड़ियाँ निरन्तर छाया देती थीं और शुद्ध पानी की धाराएँ बहती थीं। यहाँ लगभग 100 फिट ऊँची तुशी सम्भवतः शिव की प्रतिमा थी।"[14]

ह्वेनसांग के विवरण से पता चलता है कि सातवीं शताब्दी में काशी शिक्षा, अर्थ और धर्म के क्षेत्र में अत्यधिक उन्नत अवस्था में था, परन्तु उसके साथ ही यह भी आभास मिलता है कि इस दौरान बौद्ध दर्शन ह्रास की अवस्था में जबकि शैव दर्शन अत्यधिक विकसित अवस्था में था।

मध्यकाल में भारतवर्ष पर तुर्कों के आक्रमण के कारण उत्तर भारत की राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन आया। इन आक्रमणों का प्रभाव काशी पर भी पड़ा। काशी की सामाजिक, धार्मिक स्थिति के विपरीत प्रारम्भिक मुस्लिम आक्रांताओं ने व्यापक पैमाने पर यहाँ मन्दिरों एवं पवित्र पूजा स्थलों को तोड़ा। महमूद गजनवी के आक्रमण के समय प्रसिद्ध मध्यकालीन विदेशी यात्री अलबरूनी भारत आया। बनारस के बारे में अलबरूनी ने विस्तृत रूप से विवरण प्रदान किया है। अलबरूनी के अनुसार "बनारस उस समय सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भारत का सबसे बड़ा नगर था। उसके लेखन से इस ओर भी इशारा मिलता है कि महमूद के आक्रमणों के बाद बनारस की महत्ता और बढ़ गयी क्योंकि सम्पूर्ण उत्तर भारत से प्राचीन भारतीय संस्कृति के रक्षक और परिवर्द्धक पण्डित भागकर बनारस में बस गये। अलबरूनी बनारस को स्मार्त धर्म के केन्द्र के रूप में वर्णित करता है, जहाँ सम्पूर्ण भारत से साधू-संन्यासी घूमते हुए इस शहर में पहुँचकर मोक्ष के लिए उसी तरह सदा के लिए बस जाते थे जैसे काबा के रहने वाले मक्का में। वह बनारस और कश्मीर को 11वीं सदी में संस्कृत ज्ञान, विज्ञान और शिक्षा के केन्द्र के रूप में उल्लिखित करता है। उसके अनुसार बनारस की पाठशालाओं और पण्डितों में सिद्धमातृका अक्षर चलते थे।"[15] गजनवी के आक्रमण के पश्चात इतिहासकार बैहाकी द्वारा भी बनारस के बारे में यह यह जानकारी प्रदान की गयी कि "12वीं शताब्दी के प्रारम्भ में अहमद नियल्तगीन नामक तुर्क बनारस तक गया था।"[16]

"वर्ष 1194 ई0 में चंदावर के युद्ध में मोहम्मद गोरी ने गहड़वाल शासक जयचन्द को पराजित कर बनारस में मुस्लिम शासन की नींव डाली।"उसने बनारस का इक्तादार जमालुद्दीन को नियुक्त किया जिसने बनारस में अपने नाम का एक मोहल्ला जमालुद्दीन पुरा बसाया। जो आज भी उसके नाम से प्रसिद्ध है।"[17] ऐसा प्रतीत होता है कि बनारस ने शीघ्र ही अपनी स्वतंत्रता के लिए प्रयास किए। क्योंकि "कुतुबुद्दीन ऐबक को पुनः वर्ष 1197-98 ई0 में बनारस पर अधिकार करना पड़ा। ऐबक के बाद इल्तुतमिश ने दोआब में हिन्दुओं के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही प्रारम्भ की जिसमें एक-एक करके उसने बुदायूँ, कन्नौज तथा बनारस पर अधिकार कर लिया।"[18] इल्तुतमिश की उत्तराधिकारी दिल्ली की प्रथम महिला सुल्तान रजिया के शासनकाल में "बनारस में विश्वनाथ मन्दिर के बगल में एक मस्जिद का निर्माण करवाया गया जो अभी भी यथावत है।"[19]

भारत में मुगल शासन की स्थापना के बाद बनारस की स्थिति में कुछ परिवर्तन हुए। " बाबर ने बनारस पर 135 हिजरी में विजय प्राप्त की और जलालुद्दीन खाँ शर्की को कुछ सेना के साथ वहाँ पर नियुक्त कर दिया।"[20] अकबर के शासनकाल में उसकी उदार धार्मिक नीतियों का प्रभाव बनारस पर भी हमें दिखायी पड़ता है। अकबर के शासनकाल में ही राजस्व मंत्री टोडरमल की सहायता से "जगत गुरु नारायण भट्ट ने विश्वनाथ जी के मन्दिर को पुनः बनवाया। इस मन्दिर के निर्माण का व्यय पैंतालीस हजार दीनार मुगल खजाने से दिया गया तथा मन्दिर पाँच वर्षों में बनकर पूरा हुआ। अकबर के ही एक अन्य मंत्री राजा मानसिंह ने बनारस में मान मन्दिर का निर्माण भी करवाया।"[21] बादशाह अकबर के शासन के दौरान ब्रिटिश यात्री राल्फ फिच ने वर्ष 1584 ईस्वी में बनारस की यात्रा की। उसने अपने यात्रा संस्मरण में बनारस का चित्रण विस्तृत रूप से किया है। फिच का यात्रा वर्णन सोलहवीं शताब्दी के बनारस का जीवंत प्रमाण है। राल्फ फिच इलाहाबाद से गंगा के रास्ते नाव से बनारस पहुँचा। फिच के अनुसार "गंगा का पानी बहुत मीठा और सुहाना है। बनारस जो कि एक बहुत बड़ा शहर है, सूती वस्त्रों का बहुत बड़ा भण्डार है। यहाँ पर बहुत बड़ी संख्या में गैर यहूदी (हिन्दू) लोग हैं जो सबसे बड़े मूर्तिपूजक हैं। यहाँ पानी के किनारे बहुत से सुन्दर घर है, उनमें अधिकांशतः पत्थर और लकड़ी से बनी मूर्तियाँ खड़ी हैं। कुछ मूर्तियाँ उनमें से शेर, चीते, बन्दरों की तरह हैं और कुछ

चार भुजाओं और चार हाथों वाले शैतानों की तरह। मूर्तियाँ पैर मोड़कर बैठी हैं, उनमें से कुछ के हाथ में एक चीज है और कुछ के हाथ में दूसरी। सुबह होने से पहले ही पुरुष और स्त्रियाँ नगर से बाहर आते हैं और गंगा में स्नान करते हैं। जहाँ मिट्टी के चबूतरों पर बैठे वृद्ध पुरुष स्नानार्थियों के हाथों में नहाने से पहले दो तीन कुश दे देते हैं जिन्हें नहाने से पहले वे अपनी अंगुलियों के बीच में रख लेते हैं। कुछ लोग माथे पर तिलक लगाने के लिए बैठते हैं.....।"[22]

इस प्रकार राल्फ फिच ने लगभग बनारसी जीवन के विभिन्न अंगों पर प्रकाश डाला है। उसने बनारस के व्यापारिक एवं धार्मिक क्रियाकलापों के साथ ही साथ जलवायु, हिन्दू देवी-देवताओं, हिन्दुओं के अन्तिम संस्कार की क्रिया विधियों, सती तथा विवाह प्रथाओं एवं बनारस के लोगों के पहनावे का भी वर्णन किया है।

अकबर के उत्तराधिकारी मुगल बादशाह जहाँगीर ने भी बनारस के सम्बन्ध में उदार धार्मिक नीति का पालन किया। उसके शासनकाल में बनारस की जानकारी हमें स्वयं बादशाह की आत्मकथा 'तुजुक-ए-जहाँगीरी'[23] एवं बनारसीदास के 'अर्द्धकथानक' से प्राप्त होती है। जहाँगीर ने बनारस में हिन्दुओं की पूजा-अर्चना के सम्बन्ध में बनारस के शेख को शरियत के भीतर आज्ञापत्र भेजा कि "हिन्दू मन्दिरों में जाकर एक प्रकार की पूजा करते हैं। इस कारण कि वास्तव में वे भी उसी खुदा की ओर लौ लगाए हैं। उनको कोई उस कार्य में न रोके। इस प्रकार सदर के अन्य अधिकारी लोग भी उसमें हस्तक्षेप न करें।"[24]

15वीं शताब्दी से ही काशी की धार्मिक स्थिति संकटकाल से गुजर रही थी। "सम्पूर्ण उत्तर भारत का वैदिक धर्म इतना रुढ़िग्रस्त हो गया था कि उसमें किसी तरह के सुधार की ओर लोगों का ध्यान तक नहीं गया था। सत्य तो यह था कि तत्कालीन काशी से लेकर कश्मीर तक वैदिक धर्म ने लोगों की विचार शक्ति को कुचल सा दिया था और सर्वसाधारण के मन में एक विचित्र सी किस्म का सूनापन छा गया। इसी का परिणाम था कि काशी से कश्मीर तक उच्च वर्ग के लोग प्रायः इस्लाम की दुहाई दे रहे थे और निम्न जातियों के लोग तो इस्लाम कबूल करते जा रहे थे।"[25]

इसी प्रकार का विवरण हमें बनारस के सन्दर्भ में गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित विनयपत्रिका से भी प्राप्त होता है। "ब्राह्मण जिनकी पवित्रता वेद सम्मत है उनकी बुद्धि को क्रोध, राग, मोह, अहंकार और लोभ ने निगल लिया है। वे समता, संताप, दया, धर्म आदि को छोड़कर कामी, क्रोधी, मूढ़ और लोभी हो गए हैं। क्षत्रिय भी नित नए पापों की चालें चल रहे हैं। नास्तिकता ने राजनीति, धर्मशास्त्र, श्रद्धा, भक्ति और कुल मर्यादा की प्रतिष्ठा को चौपट कर दिया है। संसार में न तो आश्रम धर्म है और न वर्ण धर्म ही। लोक और वेद दोनों की मर्यादा नष्ट होती जा रही है।.....शांति, सत्य और सुमार्ग शून्य हो गए हैं। दुराचार और छलकपट बढ़ रहा है। सज्जन कष्ट पाते हैं और दुर्जन मौज करते हैं। धर्म के नाम पर लोग पेट पालने लग गए हैं। साधन निष्फल होने लगे हैं और सिद्धियाँ झूठी पड़ गयी हैं।"[26]

अकबर और जहाँगीर की धार्मिक नीति के विपरीत मुगल बादशाह शाहजहाँ अपने शासन के प्रारम्भिक वर्षों में कट्टर मुस्लिम शासक था। प्रारम्भ में शाहजहाँ ने बड़े पैमाने पर मन्दिरों को नष्ट करने की योजना बनायी परन्तु बादशाह को बनारस के एक प्रसिद्ध अघोरी संत 'बाबा कीनाराम' के प्रति श्रद्धा थी।[27] अतः सरभंग महाराज "श्री कीनाराम का निरादर न हो इसके लिए ईस्वी सन् 1632 में शाहजहाँ ने हुक्म दिया कि बनारस एवं अन्यत्र केवल अर्द्ध निर्मित मन्दिर ही गिरा दिए जायें। शाहजहाँ के इस आदेश का विरोध हुआ जिसे यूरोपीय यात्री पीटर मुण्डी ने 3 दिसम्बर, 1632 ई0 को मुगलसराय जाते हुए देखा था।"[28]

शाहजहाँ के शासनकाल में फ्रांसिस्को पेल्सर्ट और पीटर मुण्डी नामक विदेशी यात्रियों ने बनारस की यात्रा की और बनारस का उल्लेख अपने यात्रा संस्मरणों में किया है। पेल्सर्ट ने 17वीं शताब्दी के प्रारम्भिक भाग में गंगा के मध्य मैदानी इलाकों का दौरा किया। इस दौरान उसने बनारस के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ दर्ज कीं। पेल्सर्ट के अनुसार, "बनारस कमरबंद, पगड़ियाँ, हिन्दू महिलाओं के वस्त्र, गंगाजिल (एक विशेष प्रकार का सफेद कपड़ा), हिन्दू घरों में उपयोग किए जाने वाले तांबे के बर्तन, परातें इत्यादि के निर्माण एवं उत्पादन का प्रमुख केन्द्र है।"[29]

पीटर मुण्डी जो एक ब्रिटिश फैक्टर था, ने इंग्लैण्ड से सूरत की यात्रा की। वह वर्ष 1628 ई0 में भारत पहुँचा। अपनी यात्रा के दौरान 3 सितम्बर, 1632 ई0 को वह बनारस पहुँचा। पीटर मुण्डी ने बनारस के बारे में लिखा है कि, "यह ब्राह्मण, क्षत्रिय और बनियों की बस्ती है। उसने बनारस के मन्दिरों का भी उल्लेख किया है जिसके प्रमुख देवता महादेव (शिव) थे। अन्य देवताओं में गणेश जिनकी नाक की जगह पर हांथी की सूंढ़ और छः चेहरों एवं चार भुजाओं वाले देवताओं के बारे में भी वह वर्णन करता है। वह बनारस का वर्णन नश्वर शहर के रूप में करता है एवं बनारस में अन्तिम संस्कार की क्रियाविधियों का भी उसने उल्लेख किया है। उसने बनारस में साधु और फकीरों का जमावड़ा बड़ी मात्रा में देखा। इनमें प्रमुख रूप से हिन्दू, मुस्लिम, जोगी और नागा थे, जिनकी जीविका का मुख्य स्रोत लोगों के द्वारा किया गया दान धर्म था। इनमें कुछ सड़कों पर बैठते थे और कुछ मकबरों इत्यादि में । 3 दिसम्बर, 1632 ई0 को बनारस आते समय वह एक व्यक्ति को पेड़ से लटकता हुआ पाता है। कारण पता करने पर उसे पता चला कि इस व्यक्ति ने शाहजहाँ के मन्दिर तोड़ने के फरमान के विरुद्ध उसके कुछ अधिकारियों को मार गिराया जिसके कारण उसको मारकर पेड़ पर लटका दिया। वह बनारस में महामारी फैलने एवं वर्ष 1632 ई0 में एक हिन्दू मन्दिर में 'काली' स्थापित करने के समारोह का भी उल्लेख करता है। उसने बनारस को पगड़ियों और छोटे रेशमी कपड़ों 'अलचाह' की आपूर्ति का प्रमुख केन्द्र भी बताया है।"[30]

शाहजहाँ के शासनकाल में ही बनारस के औघड़ संत कीनाराम वर्ष 1638 ई0 में भ्रमण के दौरान कांधार पहुँचे। इस समय मुगल बादशाह कांधार अभियान पर था। वह महाराज कीनाराम से कांधार में मिला और महाराज के आशीर्वाद के परिणामस्वरूप बादशाह को कांधार अभियान में सफलता प्राप्त हुयी। तत्पश्चात शाहजहाँ ने "एक ताम्रपत्र पर यह आदेश जारी किया कि काशी के मणिकर्णिका घाट एवं हरिश्चन्द्र घाट के श्मशानों से प्रति मुर्दा पाँच लकड़ी व पाँच पैसे और बनारस जनपद के प्रत्येक ग्राम से एक-एक रुपया की वसूली का अख्तियार बाबा कीनाराम के क्री-कुण्ड स्थल को प्राप्त होगा।"[31] एक अन्य अवसर पर बादशाह शाहजहाँ उत्तर भारत में महाराज कीनाराम से मिले। उस समय प्रजा के धन को अपने निजी ऐशो आराम, अपनी प्रिय पत्नी के श्रृंगार, शौक एवं उसके कब्रों-मकबरों पर व्यय करने और बादशाह के दुर्व्यसनों के लिए महाराज श्री कीनाराम ने शाहजहाँ की बहुत भर्त्सना की। बादशाह ने आवेश में आकर महाराज कीनाराम के प्रति उदण्डता दिखायी जिस पर महाराज ने शाहजहाँ को सम्बोधित करते हुए श्राप दिया, "तुमने साधु अवज्ञा की है तुम बीबी के गुलाम हो तुम्हें अपने कुकृत्यों का फल भोगना होगा तुम अपनी ही औलाद के हाथों दुःख पाओगे।"[32] संत कीनाराम की भविष्यवाणी सच हुयी। शाहजहाँ के पुत्र औरंगजेब ने बादशाह को कैदखाने में डाल दिया और उसके अन्तिम दिन बहुत ही दुःख और दुर्दिन अवस्था में बीते।

17वीं शताब्दी में तीन प्रमुख यूरोपीय यात्रियों जीन बैपटिस्ट ट्रैवर्नियर, निकोलाओ मनूची और फ्रांसिस्को बर्नियर ने भारतवर्ष की यात्रा की। इस समय भारतवर्ष पर मुगल बादशाह शाहजहाँ और औरंगजेब का शासन था। यह वही समय था जब औरंगजेब अपने पिता को गद्दी से उतारकर बादशाह बना। औरंगजेब के बादशाह बनने के बाद उसकी धर्मान्ध नीति का प्रभाव हमें काशी पर भी दिखायी पड़ता है। उसके शासनकाल में विस्तृत पैमाने पर काशी में मन्दिरों को तोड़ा गया।

औरंगजेब के शासनकाल में दो प्रसिद्ध फ्रांसीसी यात्रियों बर्नियर और ट्रैवर्नियर ने ईस्वी सन् 1660 से 1665 के मध्य बनारस की यात्रा की और बनारस का आँखों देखा विवरण प्रस्तुत किया। ट्रैवर्नियर बनारस का उल्लेख ब्राह्मणों द्वारा संरक्षित एवं अधिकृत प्राचीन ग्रन्थों और विज्ञान के विश्वविद्यालय के रूप में करता है।"[33] वह मन्दिरों का उल्लेख भी करता है। उसने अपने विवरण में "बनारस के एक मन्दिर का उल्लेख किया है जो जगन्नाथ मन्दिर के बाद पूरे भारत में सबसे प्रसिद्ध है। यह गंगा के किनारे पर बना है। इस शहर का नाम इस मन्दिर के नाम पर पड़ा है। सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि मन्दिर के द्वार से नदी तक पत्थर की सीढ़ियाँ हैं....मूर्तिपूजक स्नान करने और मन्दिर में प्रार्थना करने तथा प्रसाद चढ़ाने के बाद अपना भोजन खुद बनाते हैं....सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यहाँ के लोग गंगा का पानी पीने की तीव्र इच्छा रखते हैं क्योंकि उन्हें लगता है कि इसको पीने से वे अपने सभी पापों से शुद्ध हो गए हैं। हर दिन बड़ी संख्या में ब्राह्मण नदी के साफ-सुथरे हिस्से में जाकर इस पानी को गोल और छोटे मुँह वाले बर्तनों में भरते देखे जा सकते हैं।..... ट्रैर्विनयर अपने विवरण में गंगा के पानी के विक्रय का भी उल्लेख करता है।"[34] ट्रैर्विनयर ने बनारस की शिक्षा प्रणाली पर भी प्रकाश डाला है। वह बनारस को भारतवर्ष में प्रमुख शिक्षा का केन्द्र बताता है। "उसने बनारस के भवनों, यहाँ की सकरी गलियों, सूती, रेशमी कपड़ों, कारीगरों एवं शहर से लगभग 500 कदम की दूरी पर स्थित एक मस्जिद का विवरण अपने ग्रन्थ में दिया है।"[35]

ट्रैर्विनयर की ही भाँति बर्नियर वर्ष 1660 के आसपास बनारस आया। "उसने गंगा के किनारे बसे बनारस शहर को एक सुन्दर स्थान पर एक अत्यन्त उत्तम और समृद्ध देश के बीच में गैर यहूदियों (हिन्दुओं) के विद्यालय के रूप में पाया। वह बनारस की तुलना एथेंस से करता है, जहाँ ब्राह्मण और अन्य भक्तगण आते हैं। वे ही एकमात्र व्यक्ति हैं जो अध्ययन में अपना मन लगाते हैं। इस शहर में हमारे विश्वविद्यालयों की तरह कोई कॉलेज या नियमित कक्षाएँ नहीं है बल्कि यह प्राचीनकाल के विद्यालयों जैसा है। गुरु शहर के विभिन्न भागों में निजी घरों में तथा मुख्यतः उपनगरों के बगीचों में फैले हुए हैं.....विद्यार्थियों को सबसे पहले संस्कृत सिखायी जाती है, जिसके जानकार केवल पण्डित लोग है। संस्कृत सामान्य हिन्दुस्तानी जबान से बिल्कुल अलग है।.....वह बनारस के पण्डितों के ज्ञान की प्रशंसा करता है।"[36]

मुगल बादशाह औरंगजेब ने अपने शासनकाल के प्रारम्भिक वर्षों में ही सन् 1659 ईस्वी में बनारस का कृतिवासेश्वर मन्दिर तोड़कर उस पर आलमगीरी मस्जिद का निर्माण करवाया। "औरंगजेब ने बनारस में तीन देवस्थलों (विश्वेश्वर, कृतिवासेश्वर तथा बिन्दुमाधव मन्दिर) को तोड़कर उन पर मस्जिदों का निर्माण करवा दिया।"[37] उसने 19 अप्रैल, 1669 ईस्वी को अपने सुबेदारों के नाम यह फरमान जारी किया कि वे अपनी इच्छा से काफिरों के तमाम मन्दिरों और पाठशालाओं को गिरा दें। 2 सितम्बर, 1669 ई0 को बादशाह को सूचना मिली कि बनारस में विश्वनाथ मन्दिर गिरा दिया गया है उस पर ज्ञानवापी मस्जिद उठा दी गयी है। बादशाह की इन हरकतों से महाराज श्री कीनाराम औरंगजेब से बहुत ही क्षुब्ध थे। इसलिए औरंगजेब जब क्षिप्रा नदी के तट पर महाराज श्री कीनाराम से मिला तो उन्होंने उसे बहुत ही फटकारा। इस घटना का उल्लेख बाबा बाजीराम की पाण्डुलिपि में मिलता है।"[38] इसके बावजूद औरंगजेब ने महाराज का सान्निध्य प्राप्त किया और उनके अन्तिम वर्षों में महाराज कीनाराम से बादशाह ने आशीर्वाद की याचना की। महाराज कीनाराम ने बादशाह से कहा कि "धर्म के नाम पर पृथ्वी न रंगे भविष्य आपका कृतज्ञ नहीं होगा। भारत वर्ष के लोग आपको क्रूर शासक के रूप में देखेंगे। भले ही आप अपने निजी परिश्रम से अपनी स्वयं की रोटी चलाते हैं, आपके व्यक्तिगत घृणोत्पादक विचार अशोभनीय हैं। आपकी मृत्यु नजदीक है। आप अपनी कब्र की ओर जाने वाले हैं, खुदा या ईश्वर से आपको क्षमा कैसे मिलेगी? आपके कार्य स्वार्थ से प्रेरित होते हैं और आप लोलुप चित्त हैं, जब आप अपने पिता के नहीं

हुए तो आप इस देश के कैसे हो सकते हैं? आप जिस प्रतिष्ठा एवं इस भारतवर्ष में इस्लाम की गहरी नींव के ख्वाब देख रहे हैं वह आपकी सन्तति के लिए अहितकर है और आपके राज्य की आयु क्षीण कर रहा है। अभी भी बदलिए, बदलाव लाइए। आपका दिल्ली तक पहुँचना कठिन है।"[39] इस प्रत्यक्ष मुलाकात में औरंगजेब ने भेंट में "बाबा कीनाराम को कुछ पैसे अर्पित किए, उसी पैसे से महाराज कीनाराम ने 'विवेकसागर' नामक ग्रन्थ की रचना की जो कि अघोर दर्शन की एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक है।"[40]

इतालवी यात्री निकोलाओ मनूची ने भी औरंगजेब के शासन में बनारस की यात्रा की। वह इलाहाबाद से बनारस सड़क मार्ग द्वारा आया। उसके अनुसार इलाहाबाद से 90 लीग दूर बनारस शहर है जिसके नीचे नदी बहती है। वह अपने यात्रा वृत्तान्त में लिखता है कि इलाहाबाद छोड़कर मैंने बनारस के लिए सड़क मार्ग लिया, मेरे पास एक पासपोर्ट था, जैसा कि सभी यात्रियों का यह रिवाज है। मार्ग समतल और पहाड़ियों से मुक्त था और आठ दिनों में हम बनारस शहर आ गए, जहाँ हम कई दिनों तक रहे। यह शहर छोटा है लेकिन बहुत प्राचीन है। यहाँ एक मन्दिर है जिसमें बहुत ही प्राचीन मूर्ति है। मेरी यात्रा के कुछ साल बाद औरंगजेब ने इस मन्दिर को नष्ट करने का आदेश भेजा। जब उसने सभी मन्दिरों को गिराने का बीड़ा उठाया। बनारस शहर में सोने और चाँदी से बना बहुत सारा कपड़ा बनता है, जिसे यहाँ से सम्पूर्ण मुगल साम्राज्य में वितरित किया जाता है और जिसका दुनिया के कई हिस्सों में निर्यात होता है। बनारस के लिए हिन्दुस्तान में एक कहावत प्रचलित है 'थोरा खाना बनारस में रहना' (थोड़ा खाना पर बनारस में रहना)। वह बनारस का वर्णन एक अच्छी जगह के रूप में करता है। जहाँ जलवायु अच्छी, भूमि उपजाऊ और भोजन सस्ता है।"[41]

मूल्यांकन-

मध्यकालीन विदेशी यात्रियों अलबरूनी, राल्फ फिच, पेल्सर्ट, पीटर मुण्डी, ट्रैर्विनयर बर्नियर एवं मनूची के यात्रा वृत्तान्तों में हमें काशी के बारे में विभिन्न आयामों पर विस्तृत रूप से जानकारियाँ प्राप्त होती हैं। परन्तु विदेशी यात्रियों द्वारा काशी के चित्रण में कुछ अत्युक्तिपूर्ण एवं लाक्षणिक दोष भी हमें दिखायी पड़ते हैं। फिर भी इन यात्रा वृत्तान्तों का सावधानीपूर्वक उपयोग कर हम मध्यकाल में काशी के वस्तुनिष्ठ इतिहास तक पहुँच सकते हैं। 11वीं शताब्दी में अलबरूनी ने काशी का उल्लेख ज्ञान, विज्ञान, शिक्षा एवं स्मार्त धर्म के केन्द्र के साथ ही साथ मोक्ष नगरी तथा भारतवर्ष में सबसे बड़ी उत्कृष्ट सांस्कृतिक नगरी के रूप में किया है। अलबरूनी अपने यात्रा वृत्तान्त में काशी में बौद्ध धर्म की स्थिति पर कोई विस्तृत प्रकाश नहीं डालता जबकि सातवीं सदी में भारत आए चीनी यात्री ह्वेनसांग ने काशी में बौद्ध धर्म का उल्लेख किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि 11वीं शताब्दी तक आते-आते काशी में बौद्ध धर्म अपनी निम्नतम अवस्था में पहुँच चुका था। ब्रिटिश यात्री राल्फ फिच से हमें 16वीं शताब्दी के काशी का चित्रण मिलता है। 16वीं शताब्दी में काशी सूती वस्त्रों के भण्डार, मूर्ति पूजा के प्रमुख केन्द्र और अपनी प्रातः गंगा स्नान की परम्परा एवं मन्दिर स्थापत्य कला के लिए प्रसिद्ध था। राल्फ फिच ने हिन्दू देवी-देवताओं की विभिन्न आकार की प्रतिमाओं का वर्णन किया है, जिन्हें वह शैतानों की प्रतिमाएँ कहता है। इस सन्दर्भ में फिच हिन्दू देवी-देवताओं की प्रतिमाओं, उनके आकार एवं महत्व को समझने में असफल रहा। 17वीं शताब्दी के दौरान पेल्सर्ट ने वस्त्र उत्पादन के केन्द्र के रूप में काशी का उल्लेख किया है। कुछ मुगल बादशाहों की धर्मान्ध नीतियों के कारण काशी में मन्दिरों के गिराये जाने का विवरण पीटर मुण्डी और मनूची ने अपने वृत्तान्तों में विस्तृत रूप से दिया है। बर्नियर ने काशी की शिक्षा प्रणाली पर एवं ट्रैर्विनयर ने गंगा जल की पवित्रता तथा इसके विक्रय का उल्लेख अपने वृत्तान्त में किया है।

इस प्रकार हमें 11वीं शताब्दी से लेकर 17वीं शताब्दी तक काशी की आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, व्यापारिक, धार्मिक और शैक्षणिक परम्पराओं का विस्तृत विवरण इस दौरान आने वाले विदेशी यात्रियों के वृत्तान्तों से प्राप्त होता है।

सन्दर्भ सूची-

1. चन्द्र, डॉ0 मोती 'काशी का इतिहास: वैदिक काल से अर्वाचीन युग तक राजनैतिक-सांस्कृतिक सर्वेक्षण', हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड, बम्बई, 1962, पृ0 3.
2. शेरिंग, एम0ए0 रेवरेंड 'सेक्रेड सिटी ऑफ द हिन्दूज : एन अकाउंट ऑफ बनारस इन एंशियण्ट एण्ड मार्डन टाइम्स', ट्रबनर एण्ड कम्पनी, 60, पैटेनोस्टर, रो 10868, पृ0 7.
3. चन्द्र, डॉ0 मोती 'तदैव', पृ0 2.
4. एम0आर0ए0एस0, थामस वाटर्स (अनुवादक) 'आन युआन च्वांग्स ट्रैवल्स इन इण्डिया (629-645 ईस्वी)', थामस की मृत्यु के बाद सम्पादन (टी0डब्लू0आर0 डेविड्स एण्ड एस0डब्लू0 भसेल), रायल एशियाटिक सोसाइटी, लंदन, 1904.
5. सचाऊ सी0, डॉ0 एडवर्ड (अनुवादक) 'अलबरूनीज इण्डिया' इन टू वॉल्यूम्स, केगनपौल ट्रैच ट्रबनर एण्ड कम्पनी, लंदन, 1910/सन्तराम, वी0 (अनुवादक) 'अलबरूनी का भारत (भाग 1 और 2)', इण्डियन प्रेस, प्रयाग स्रोत ई0 पुस्तकालय।
6. फास्टर, विलियम (सम्पादक) 'अर्ली ट्रैवल्स इन इण्डिया (1583-1619)', हम्फ्री मिलफोर्ड, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, 1921.
7. टेंपल, सर रिचर्ड कार्नेक (सम्पादक) 'द ट्रैवल्स ऑफ पीटर मुण्डी इन यूरोप एण्ड एशिया (1608-1667)', वॉल्यूम II (1628-1634), द हकलेट सोसाइटी, लंदन, 1914.

8. बाल, वी0 (अनुवादक) 'ट्रैवल्स इन इण्डिया बाई जीन बैपटिस्ट ट्रैवर्नियर', इन टू वॉल्यूम्स, वॉल्यूम II, मैकमिलन एण्ड कम्पनी, 1889.
9. कांस्टेबल, आर्चीबाल्ड (अनुवादक) 'ट्रैवल्स इन द मोगुल इंपायर (1656-1668)', बाई फ्रांसिस्को बर्नियर, हम्फ्री मिलफोर्ड, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, 1916.
10. मोरलैण्ड, डब्लू0एच0 एण्ड गेल पी0 (अनुवादक) 'जहाँगीर्स इण्डिया द रिमोन्सट्रेट ऑफ फ्रांसिस्को पेल्सर्ट', कैम्ब्रिज डब्लू0 हेफर एण्ड सन्स लिमिटेड, 1925.
11. इरविन, विलियम (अनुवादक) 'स्टोरिया डो मोगोर (1653-1708)', बाई निकोलाओ मनूची, वॉल्यूम II, जानमरी अल्बमर्ल स्ट्रीट, लंदन, 1907.
12. अल्लमी-ए-फज्ल, अबुल 'आइन-ए-अकबरी', वॉल्यूम II, अनुवादक एच0एस0 जैरेट, रायल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता, 1949, पृ0 96.
13. दास, बनारसी 'अर्द्धकथानक', (अनुवादक) रोहणी चौधरी, पेंगुइन बुक्स, 2009, पृ0 3.
14. एम0आर0ए0एस0, थामस वाटर्स 'ऑन युआन च्वांग्स ट्रैवल्स इन इण्डिया', (सम्पादक) टी0डब्लू0आर0 डेविड्स एण्ड एस0डब्लू0 भसेल, वॉल्यूम II, रायल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता, 1905, पृ0 46-47.
15. चन्द्र, डॉ0 मोती 'तदैव', पृ0 137, 140.
16. पाण्डेय, सचिन्द्र 'मध्यकालीन बनारस का इतिहास (1206-1761 ई0)', शोध प्रबन्ध, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबद, 2002, पृ0 46.
17. पाण्डेय, सचिन्द्र 'तदैव', पृ0 48.
18. शर्मा, अजीत कुमार 'मध्यकालीन तंत्र, अघोर एवं सूफी दर्शन का ऐतिहासिक परिपेक्ष्य में तुलनात्मक अध्ययन (समकालीन बिहार, बंगाल एवं उत्तर प्रदेश के सन्दर्भ में)', इन्दु बुक सर्विसेज प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2020, पृ0 10.
19. पाण्डेय, सचिन्द्र 'तदैव', पृ0 49-50.
20. चन्द्र, डॉ0 मोती 'तदैव', पृ0 203.
21. पाण्डेय, सचिन्द्र 'तदैव', पृ0 78-79.
22. फास्टर, विलियम, (सम्पादक) 'तदैव', पृ0 20-23.
23. तुजुक-ए-जहाँगीरी, (अनुवाद) ब्रजरत्नदास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, प्रथम संस्करण 2014.
24. तुजुक-ए-जहाँगीरी 'तदैव', पृ0 63.
25. शर्मा, अजीत कुमार 'तदैव', पृ0 45.
26. चन्द्र, डॉ0 मोती 'तदैव', पृ0 217-218.
27. बाबा कीनाराम अघोरपंथी सन्यासी थे। इनका मुख्य केन्द्र काशी था। इस सम्प्रदाय के अघोरपंथियों को 'कीनारामी' कहा जाता था।
28. शर्मा, अजीत कुमार 'तदैव', पृ0 46.
29. मोरलैण्ड, डब्लू0एस0 एण्ड पी0 गेल, (अनुवादक) 'तदैव', पृ0 7.
30. टेम्पल, सर रिचर्ड कार्नेक (सम्पादक) 'तदैव', पृ0 122-123, 173-174, 176, 178, 217, 366.
31. शर्मा, अजीत कुमार 'तदैव', पृ0 48, 197
32. शर्मा, अजीत कुमार 'तदैव', पृ0 48-49, 197
33. बाल, वी0 (अनुवादक) 'तदैव', पृ0 182.
34. बाल, वी0 (अनुवादक) 'तदैव', पृ0 230-231.
35. चन्द्र, डॉ0 मोती 'तदैव', पृ0 226-230.
36. कांस्टेबल, आर्चीबाल्ड, (अनुवादक) 'तदैव', पृ0 334-335, 341.
37. पाण्डेय, सचीन्द्र 'तदैव', पृ0 101.
38. शर्मा, अजीत कुमार 'तदैव', पृ0 47.
39. शर्मा, अजीत कुमार 'तदैव', पृ0 49, 199.
40. शर्मा, अजीत कुमार 'तदैव', पृ0 49.
41. शर्मा, अजीत कुमार 'तदैव', पृ0 82-83.

◀◀ ▶▶